माध्यमिक पाठ्यक्रम

वेदाध्ययन–245

पुस्तक–1

विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

ए-24-25, संस्थागत क्षेत्र, सेक्टर–62,

नोएडा-201 309 (उत्तर प्रदेश)

वेबसाइट : www.nios.ac.in, टोल फ्री नं. 18001809393

सलाहकार समिति

प्रो. सरोज शर्मा
अध्यक्ष
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तरप्रदेश

डॉ. राजीव कुमार सिंह
निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, उत्तरप्रदेश

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

समिति अध्यक्ष
डॉ. के. इ. देवनाथन्
कुलपतिः
श्रीवेङ्कटेश्वर वैदिक विश्वविद्यालय
चन्द्रगिरि परिमार्ग अलिपिरि
तिरुपति - 517 502 (आन्ध्रप्रदेश)

समिति उपाध्यक्ष
डॉ. दिलीप पण्डा
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
हिरालाल मजुमदार मेमोरियल कालेज
दक्षिणेश्वर, कलकत्ता - 700 035 (पश्चिम बंगाल)

डॉ. रामनाथ झा
प्रोफेसर (संस्कृत एवं प्राच्य विधा संस्थान)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

डॉ. सन्तोष कुमार शुक्ल
प्रोफेसर (संस्कृत एवं प्राच्य विधा संस्थान)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

आचार्य फूलचन्द
वैदिक गुरुकुल
पतञ्जलि योगपीठ, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

आचार्य प्रद्युम्न
वैदिक गुरुकुल, पतञ्जलि योगपीठ, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

श्री सन्तु कुमार पान
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
विजयनारायण महाविद्यालय
पत्रालय - इटाचुना, मण्डल - हुगली - 712 147 (प. बंगाल)

स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानन्द वेद विद्यालय
बेलुड-मठ, मण्डल हावडा - 711 202 (प. बंगाल)

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा - 201309 (उत्तरप्रदेश)

पाठ्यक्रम-समन्वयक

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा - 201309 (उत्तर प्रदेश)

पाठ लेखक

(पाठ 1, 5, 6, 17-24)
श्री राहुलगाजि
अनुसन्धाता (संस्कृत विभाग)
जादवपुर विश्वविद्यालय
ककोलकाता - 700032 (प. बंगाल)

(पाठः 8)
स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानन्द वेद विद्यालय
बेलुड मठ, मण्डल - हावडा - 711202 (प. बंगाल)

(पाठ 2, 3, 4, 7, 9-15)
श्रीमान् विष्णुपदपाल
अनुसन्धाता (संस्कृताध्ययनविभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय
मण्डल हावडा-711 202 (प.बंगाल)

(पाठः 16)
डॉ. दिलीप पण्डा
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
हिरालाल मजुमदार मेमोरियल कॉलेज फॉर विमिन दक्षिणेश्वर
कोलकाता - 700 035 (पश्चिम बंगाल)

संपादक मण्डल

डॉ. दिलीप पण्डा
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
हिरालाल मजुमदार मेमोरियल कालेज
दक्षिणेश्वर, कलकत्ता - 700 035 (पश्चिम बंगाल)

स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानन्द वेद विद्यालय
बेलुड-मठ, मण्डल हावडा - 711 202 (प. बंगाल)

अनुवादक मण्डल

डॉ. विजेन्द्र सिंह
सहायक प्रोफेसर (संस्कृत)
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या संस्थान,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली-110067

श्री शिवराम
अनुसंधाता,
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली-110067

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा-201309 (उत्तर प्रदेश)

श्री पुनीत त्रिपाठी
वरिष्ठ कार्यकारी अधिकारी
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

रेखाचित्राङ्कन और मुख पृष्ठ चित्रण एवं डीटीपी

स्वामी हररूपानन्द
रामकृष्ण मिशन्,
बेलुर-मठ
मण्डल - हावडा - 711202 (प. बंगाल)

मैसर्स शिवम ग्राफिक्स
431, ऋषि नगर,
रानी बाग, दिल्ली - 110034

आपसे दो बातें ...

अध्यक्षीय सन्देश

प्रिय शिक्षार्थी,

'भारतीय ज्ञान परम्परा' पाठ्यक्रम के अध्ययन के लिए आपका हार्दिक स्वागत है। भारत अति प्राचीन और विशाल देश है। भारत का वैदिक वाङ्मय भी उतना ही प्राचीन, प्रशंसनीय और श्रेष्ठ है। सृष्टिकर्ता भगवान ही भारतीयों के सम्पूर्ण विद्याओं के प्रेरक हैं, ऐसा सिद्धान्त शास्त्रों में प्राप्त होता है। भारत के प्रसिद्ध विद्वान, सामान्य जनमानस तथा अन्य ज्ञानी लोगों के बीच प्राचीन काल में आदान-प्रदान का माध्यम संस्कृत भाषा ही थी ऐसा सभी को ज्ञात है। इतने लम्बे काल में भारत के इतिहास में जो शास्त्र लिखे गए, जो चिन्तन उत्पन्न हुए, जो भाव प्रकट हुए वे सभी संस्कृत भाषा के साहित्यरूपी भण्डार में निबद्ध हैं। इस भण्डार का आकार कितना है, भाव कितने गंभीर हैं, मूल्य कितना अधिक है, इसका निर्धारण करने में कोई भी समर्थ नहीं है। प्राचीन काल में भारतीय क्या-क्या पढ़ते थे, वह निम्न श्लोक के माध्यम से प्रकट करते है -

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः।
पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥ (वायुपुराणम् 61.78)

इस श्लोक में चौदह प्रकार की विद्याएँ बताई गयी हैं। चार वेद (और चार उपवेद), छः वेदाङ्ग, मीमांसा (पूर्वोत्तरमीमांसा), न्याय (आन्वीक्षिकी), पुराण (अट्ठारह मुख्य पुराण और उपपुराण), धर्मशास्त्र (स्मृति) ये चौदह विद्या कहलाते हैं। इसके अलावा अनेक काव्य ग्रंथ और बहुत ही शास्त्र हैं। इन सभी विद्याओं का प्रवाह ज्ञान प्रदान करने वाला, प्रगति करने वाला और वृद्धि करने वाला है जो प्राचीन समय से ही चल रहा है। समाज के कल्याण के लिए भारत में विद्या दान परम्परा के रूप में गुरुकुलों में आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, आयुर्वेद, राजनीति, दण्डनीति, काव्य, काव्य शास्त्र और अन्य बहुत से शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन होता रहा है।

विद्या के शिक्षण के लिए ब्रह्मचारी परिवार को छोड़कर गुरुकुल में ब्रह्मचर्याश्रम को धारण कर जीवन बिताते थे। और इन विद्या में पारंगत होते थे। इन विद्याओं में आज भी कुछ लोग पारंगत है। प्राकृतिक परिवर्तनों, विदेशी आक्रमणों, स्वदेश में हो रही ऊठा-पटक इत्यादि अनेक कारणों से पहले जैसी अध्ययन-अध्यापन की परंपरा अब छूटती जा रही है। इन पाठ्यक्रमों की परीक्षा, प्रमाणपत्र इत्यादि आधुनिक शिक्षण पद्धति के द्वारा कुछ राज्यों/प्रदेशों में होता है, परन्तु बहुत से राज्यों/प्रदेशों में नहीं होता है। अतः इन प्राचीन शास्त्रों का अध्ययन, परीक्षण, और अधिक प्रमाणीकरण का होना आवश्यक है। इसे ध्यान में रखकर यह पाठ्यक्रम राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के द्वारा प्रारम्भ किया गया है। लोगों के कल्याण के लिए जितना ज्ञान आवश्यक है वैसा ज्ञान इन शास्त्रों में निहित है और मनुष्य के सामने प्रकट हो, ऐसा लक्ष्य है। जिसके द्वारा यहाँ पर सुखी हों, सभी निरोगी हों, सभी कल्याण दृष्टि से कल्याणकारी हों, किसी को कोई दुख प्राप्त नहीं हो, कोई किसी को दुःख नहीं दे इस प्रकार अत्यन्त उदार उद्देश्य 'भारतीयज्ञानपरम्परा' इस नाम से इस पाठ्यक्रम की रचना की गई है। विज्ञान शरीरारोग्य का चिन्तन करता है। कला विषय मनोविज्ञान को तथा मनोविज्ञान आध्यात्मिक विज्ञान को मनोरंजन के रूप में सोचते हैं। विज्ञान साधनस्वरूप और सुखोपभोग साध्य है। अतः निःसन्देह रूप से कहा जा सकता है कि कला शाखा विज्ञान से भी श्रेष्ठ है। लोग कला को छोड़कर विज्ञान से सुख नहीं प्राप्त कर सकते हैं परन्तु विज्ञान को छोड़कर कला से सुख को प्राप्त कर सकते हैं।

यह वेदाध्ययन विषय का पाठ्यक्रम छात्रानुकूल ज्ञानवर्धक लक्ष्यसाधक और पुरुषार्थसाधक है ऐसा मेरा मानना है।

इस पाठ्यक्रम के निर्माण में जिन हिताभिलाषी विद्वांन, उपदेष्टा, पाठलेखक, त्रुटिसंशोधक और मुद्रणकर्ता ने साक्षात् या परोक्षरूप से सहायता की, उनको संस्थान पक्ष से हार्दिक कृतज्ञता ज्ञपित करता हूं। रामकृष्णमिशन- विवेकानन्द-विश्वविद्यालय के कुलपति श्रीमान् स्वामी आत्मप्रियानन्द जी का विशेषरूप से धन्यवाद जिनकी आनुकूलता और प्रेरणा के बिना इस कार्य की परिसमाप्ति दुष्कर थी।

इस पाठ्यक्रम के अध्येताओं का विद्या से कल्याण हो, सफल हो, विद्वांन हो, सज्जन हो, देशभक्त हों, समाजसेवक हो ऐसी हमारी हार्दिक इच्छा है।

अध्यक्ष

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

आपसे दो बातें ...

निदेशकीय वाक्

प्रिय पाठक,

'भारतीय ज्ञान परम्परा' पाठ्यक्रम को पढ़ने की इच्छा से उत्साहित भारतीय ज्ञान परम्परा के अनुरागी और उपासकों का हार्दिक स्वागत करता हूँ। अत्यधिक हर्ष का विषय है, की जो गुरुकुलों में पढ़ाया जाने वाला पाठयक्रम हमारे राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के पाठयक्रम में भी सम्मिलित किया गया है। आशा है की लम्बे समय से हमारी प्राचीन संस्कृति से जो दुरी थी वह अब समाप्त हो जाएगी। हिन्दु जैन और बौद्धों के धार्मिक, आध्यात्मिक और काव्यादि वाङ्गमय प्रायः संस्कृत में लिखा हुआ है। सैकड़ों, करोड़ों मनुष्यों के प्रिय विषयों की भूमिका के माध्यम से प्रस्तुत् प्रवेश योग्यता के द्वारा और मन को प्रसन्न करने के लिए माध्यमिक स्तर और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर कुछ विषय सम्मिलित किये गए हैं। जैसे आंग्ल-हिन्दी आदि भाषा ज्ञान के बिना उस भाषा के लिखे गए माध्यमिक स्तरीय ग्रन्थ पढने में और समझ में सक्षम नहीं हो सकते हैं, वैसे ही यहाँ पर प्रारम्भिक संस्कृत तथा हिन्दी भाषा को नहीं जानते तो, इस पाठ्यक्रम को जानने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। अतः प्रारम्भिक संस्कृत के विद्वान् छात्र यहाँ इस पाठ्यक्रम के अध्ययन के अधिकारी हैं ऐसा जानना चाहिए।

गुरुकुलों में अध्ययन करने वाले छात्र आठवीं कक्षा तक जितना संभव हो अपनी परंपरा से अध्ययन करें। नौवीं दसवीं कक्षा और ग्याहरवीं तथा बारहवीं कक्षा तक भारतीय ज्ञान परम्परा के इस पाठ्यक्रम का निष्ठा से नियमित अध्ययन करें। इस पाठ्यक्रम से विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए योग्य होंगे।

संस्कृत के विभिन्न शास्त्रों में किया गया कठिन परिश्रम विद्वान्, प्राध्यापक, शिक्षक, और शिक्षाविद् इस पाठ्यक्रम का प्रारूपरचना में, विषय निर्धारण के लिए विषयपरिमाण निर्धारण में, विषय प्रकट करने का, भाषास्तर निर्णय में और विषयपाठ लिखने में संलग्न हैं। अतः इस पाठ्यक्रम का स्तर उन्नत होना है।

वेदाध्ययन की यह स्वाध्याय सामग्री आपके लिए पर्याप्त, सुबोध, रुचिकर, आनन्दरस को प्रदान करने वाली, सौभाग्य देने वाली, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि पुरूषार्थों के लिए उपयोगी रहेगी, ऐसी हम आशा करते है। इस पाठ्यक्रम का प्रधान लक्ष्य है की भारतीय ज्ञान परम्परा का शैक्षणिक क्षेत्रों में विशिष्ट और योग्य स्थान स्वीकृत होना चाहिए। यह लक्ष्य इस पाठ्यक्रम के माध्यम से पूर्ण होगा, ऐसा हमारा दृढ विश्वास है। पाठक अध्ययनकाल में यदि मानते हैं, की इस अध्ययन सामग्री में, पाठ के सार में, जहाँ संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन संस्कार चाहते हैं, उन सभी के प्रस्ताव का हम स्वागत करते हैं। इस पाठ्यक्रम को फिर भी और अधिक प्रभावी, उपयोगी और सरल बनाने में आपके साथ हम हमेशा तत्पर हैं।

सभी अध्येताओं के अध्ययन में सफलता और जीवन में सफलता के लिए और कृतकृत्य के लिए हमारे आशीर्वचन हैं–

किं बाहुना विस्तरेण।
अस्माकं गौरववाणीं जगति विरलाम् सर्वविद्याया लक्ष्यभूताम् एव उद्धरामि -

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥
दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्।
शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत्॥

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी॥

निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

आपसे दो बातें ...

समन्वयक वचन

प्रिय जिज्ञासु,

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

परम्परा को आधार मानकर यह प्रार्थना है कि हमारा अध्ययन विघ्नों से रहित हो। अज्ञान का नाश करने वाला तेजस्वी हो। द्वेष भावना का नाश करने वाला हो। विद्या लाभ के द्वारा सभी कष्टों का निवारण करने वाला हो।

'भारतीय ज्ञान परम्परा' इस पाठ्यक्रम के अङ्गभूत यह पाठ्यक्रम माध्यमिक कक्षा के लिए निर्धारित किया गया है। इस पाठयक्रम की अध्ययन सामग्री आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मैं परम हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। सरल संस्कृत तथा हिन्दी भाषा को जो जानता है, वह इसके अध्ययन में समर्थ है।

विद्वानों का अभिप्राय और अनुभवों के आधार पर काव्य शास्त्र का फल रस ही है। आनंद रस स्वरूप ही है। सभी प्राणियों का सभी कार्य आनंद और सुखपूर्वक संपन्न हो, यही प्रबल इच्छा है। काव्य के सभी विषय रस में ही स्थित हैं। काव्यों के अनेक प्रकार हैं और काव्य प्रपंच सबसे महान हैं। काव्य बहुत हैं उनमें से विविध काव्याशों का चयन करके इस पाठ्य सामग्री में सम्मिलित किया गया है। इसी प्रकार साहित्य का सामान्य स्वरूप, काव्य का स्वरूप, भेद आदि प्रारंभिक ज्ञान यहाँ दिया गया है। पारंपरिक गुरुकुलों में जिस शिक्षण पद्धति से पाठ दिए जाते थे, उसी पद्धति का अनुसरण कर ये पाठ्यक्रम प्रतिपादित किया गया है।

माध्यमिक कक्षा हेतू निर्धारित साहित्य विषय का यह पाठ्यक्रम अत्यंत उपकारक है। शिक्षार्थी इसके अध्ययन से ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होंगे। इसके अध्ययन से छात्र अन्य काव्यों में प्रवेश के योग्य होंगे। ये पाठ्य सामग्री काव्य और काव्यशास्त्र का श्रद्धा सहित अध्ययन में प्रवेश के लिए और मन को शांति देने वाली है। इस पाठ्यक्रम के आकार पर नहीं जाना चाहिए और न इससे भय होना चाहिए। परंतु गंभीर रूप से अध्ययन करना चाहिए।

सम्पूर्ण पाठ्यपुस्तक दो भागों में विभक्त है।

पाठक पाठों को अच्छी प्रकार से पढ़कर पाठ में आये प्रश्नों के उत्तरों पर स्वयं विचार कर अन्त में दिए हुए प्रश्नों के उत्तरों को देखें, और उन उत्तरों को अपने उत्तरों से मिलाएँ। प्रत्येक पत्र में दिए हुए रिक्त स्थान पर टिप्पणीं करनी चाहिए। पाठ के अन्त में दिए प्रश्नों के उत्तरों का निर्माण करके परीक्षा के लिए तैयार हो जाएँ।

शिक्षार्थी अध्ययन काल में किसी भी कठिनता का अनुभव करते हैं, तो अध्ययन केन्द्र में किसी भी समय जाकर समस्या के समाधान के लिए आचार्य के समीप जाएँ या राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के साथ ई-पत्र द्वारा सम्पर्क करें। वेबसाइट पर भी संपर्क व्यवस्था है। वेबसाइट www.nios.ac.in इस प्रकार से है।

ये पाठ्यविषय आपके ज्ञान को बढाएं, परीक्षा में सफलता को प्राप्त करवाए, आपकी विषय में रुचि बढाए, आपका मनोरथ पूर्ण करे, ऐसी कामना करते है।

अज्ञानान्धकारस्य नाशाय ज्ञानज्योतिषः दर्शनाय च इयं मे हार्दिकी प्रार्थना –

ॐ असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भवत्कल्याणकामी

पाठयक्रम समन्वयक (शैक्षिकम्)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थानम्

अपने पाठ कैसे पढ़ें!

वेदाध्ययन, माध्यमिक स्तर की इस पाठ्य सामग्री को विशेष रूप से आपकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए निर्मित किया गया है। आप स्वतंत्र रूप से स्वयं पढ़ सकें इसलिए इसे एक प्रारूप में ढाला गया है। निम्नलिखित संकत आपको सामग्री का सर्वोत्तम उपयोग करने का तरीका बताएंगे। दिए गए पाठों को कैसे पढ़ना है आइए, जानें–

पाठ का शीर्षक : इसे पढ़ते ही आप अनुमान लगा सकते हैं कि पाठ में क्या दिया जा रहा है। इसे पढ़िए।

भूमिका : यह भाग आपको पूर्व जानकारी से जोड़ेगा और दिए गए पाठ की सामग्री से परिचित कराएगा। इसे ध्यानपूर्वक पढ़िए।

उद्देश्य : प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के बाद आप इस पाठ से उद्देश्यों को प्राप्त करने में समर्थ हो जाएंगे। इन्हें याद कर लीजिए।

पाठगत प्रश्न : इसके एक शब्द अथवा एक वाक्य में पूछे गए प्रश्न हैं तथा कुछ वस्तुनिष्ठ प्रश्न हैं। ये प्रश्न पढ़ी हुई इकाई पर आधारि हैं इनका उत्तर आपको देते रहना है। इसी से आपकी प्रगति की जाँच होगी। ये सवाल हल करते समय आप हाथ में पेंसिल रखिए और जल्दी-जल्दी सवालों के समाधान ढूँढ़ते रहिए और अपने उत्तरों की जाँच पाठ के अंत में दी गई उत्तरमाला से मिलाइए। उत्तर ठीक न होने पर इकाई को पुनः पढ़िए।

आपने क्या सीखा : यह पूरे पाठ का संक्षिप्त रूप है–कहीं यह बिंदुओं के रूप में है, कहीं आरेख के रूप में तो कहीं प्रवाह चार्ट के रूप में। इन मुख्य बिंदुओं का स्मरण कीजिए। यदि आप कुछ अपने मतलब की मिलती-जुलती नई बातें जोड़ना चाहते हैं तो उन्हें भी वहीं बढ़ा सकते हैं।

पाठांत प्रश्न : पाठ के अंत में दिए गए लघु उत्तरीय तथा दीर्घ उत्तरीय प्रश्न हैं। इन्हें आप अलग पृष्ठों पर लिख कर अभ्यास कीजिए। यदि चाहें तो अध्ययन केंद्र पर अपने शिक्षक या किसी उचित व्यक्ति को दिखा भी कते हैं और उन पर नए विचार ले सकते हैं।

उत्तरमाला : आपको पहले ही बताया जा चुका है इसमें पाठगत प्रश्नों और क्रियाकलापों के उत्तर दिए जाते हैं। अपने उत्तरों की जाँच इस सूची से कीजिए।

पुस्तक-1

वैदिक साहित्य का इतिहास

1. वेद विषय में प्रवेश
2. वेदों का काल, पाठ प्रकार और मंत्रों में ऋषि, छन्द और देवता विनियोग
3. वेदों के भाष्यकार
4. वेद भाष्य की पद्धति
5. वैदिक आख्यामाण तथा वेदों के विषय में दार्शनिक विमर्श
6. वैदिक यज्ञ
7. वैदिक देवता

वैदिक सूक्तों का अध्ययन

8. सूर्यसुक्त और सञ्ज्ञान सूक्त
9. पूषन्-सूक्त और उषस्सूक्त
10. वरुण सूक्त
11. यम सूक्त
12. शुनःशेपोपाख्यान-1
13. शुनःशेपोपाख्यान-2
14. शुनःशेपोपाख्यान-3
15. विश्वामित्र नदी संवाद

पुस्तक-2

वैदिकी प्रक्रिया

16. अष्टाध्यायी का प्रथम और द्वितीय अध्याय
17. अष्टाध्यायी का तृतीय (3) अध्याय
18. अष्टाध्यायी का चतुर्थ (4) अध्याय
19. अष्टाध्यायी का चतुर्थ (4) अध्याय
20. अष्टाध्यायी का पंचम और षष्ट (5-6) अध्याय
21. अष्टाध्यायी का षष्ठ और सप्तम (6, 7) अध्याय
22. अष्टाध्यायी सप्तम (7) अध्याय
23. अष्टाध्यायी अष्टम (8) अध्याय
24. अष्टाध्यायी अष्टम (8) अध्याय

वेदाध्ययन - 245

पुस्तक-1

क्रम विषय-सूची	पृष्ठ संख्या

वैदिक साहित्य का इतिहास

1. वेद विषय में प्रवेश 1
2. वेदों का काल, पाठ प्रकार और मंत्रों में ऋषि, छन्द और देवता विनियोग 31
3. वेदों के भाष्यकार 51
4. वेदभाष्य की पद्धति 72
5. वैदिक आख्यान तथा वेदों के विषय में दार्शनिक विमर्श 88
6. वैदिक यज्ञ 105
7. वैदिक देवता 120

वैदिक सूक्तों का अध्ययन

8. सूर्यसुक्त और सञ्ज्ञानसूक्त 137
9. पूषन्सूक्त और उषस्सूक्त 156
10. वरुणसूक्त 182
11. यमसूक्त 204
12. शुनःशेपोपाख्यान-1 222
13. शुनःशेपोपाख्यान-2 239
14. शुनःशेपोपाख्यान-3 260
15. विश्वामित्र-नदी संवाद 280

1

वेद विषय में प्रवेश

प्रस्तावना

भारतीयों के धर्म, आचार, अध्यात्म और वाङ्गय का मूल वेद है। यहाँ सबसे पहले संस्कृत साहित्य क्या है इसका प्रतिपादन करेंगे। उसकी विशेषता और महत्त्व क्या है इन सबका विवेचन इस पाठ में करेंगे। संस्कृत साहित्य के वैदिक वाङ्मय के वैशिष्ट को जगत में कौन नहीं जानता। वैदिक वाङ्मय के विभूति विषय में अतिशयोक्ति नहीं है। यह वाङ्मय बहुत प्राचीन है, सम्पूर्ण पृथिवी से भी इसका परिमाण विशाल है। इसका वैभव अतिशय रहित है, इसके सौन्दर्य गुण का कोई तौल नहीं है। यह वाङ्मय मौलिक और प्राचीन है। यहाँ हमारा हमेशा अभिनिवेश होता है। केवल इतना ही नहीं, अन्य भी बहुत से कारण वैदिक वाङ्मय के अध्ययन में विद्यार्थियों की विशेष रुचि उत्पन्न करते हैं।

संस्कृत साहित्य में वेदों का स्थान सर्वोपरि है। भारतीय दर्शन एवं धर्म का जीवन वेद ही है। वैदिक वाङ्मय अनादि और अपौरुषेय है। यह वाङ्मय मन्त्रब्राह्मणात्मक और वेद के समान आचरण करने वाले सभी शास्त्रों का तात्पर्य है। यह वाङ्मय प्राचीनतम सभी भाषाओं के साहित्यों का मूलभूत है, इस विषय में भाषाओं के तत्त्ववेत्ता विद्वानों को लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। इस वाङ्मय का अध्ययन अत्यावश्यक है, ऐसा भाषाओं के तत्त्ववेत्ता विद्वान अनुभव करते हैं। भारतीयों के लिए वैदिक वाङ्मय का इतिहास अनुपम एवं अक्षय धान के समान है। इस कारण भारतीय विद्वान इस विषय के अध्ययन में आनन्द अनुभव करते हैं।

आर्यों की सभ्यता और संस्कृति वेदों के आधार पर ही है। वेदों को न केवल भारतीय विद्वान अपितु विदेशी विद्वान भी श्रद्धा की दृष्टी से देखते हैं। परम् सत्य के अनुसन्धान कर्ता महर्षियों ने जिस महान तत्त्व का अनुभव किया, उसके बोधयिता विद्वान आज भी पृथ्वी पर विराजमान हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार वेद अपौरुषेय हैं। अतिप्राचीन

काल से ही इष्टप्राप्ति और अनिष्टपरिहार के अलौकिक उपाय उनके द्वारा ही जाने जाते हैं। वेदों में ज्ञान-विज्ञान-धर्म-दर्शन-सदाचार-संस्कृति-नैतिक-सामाजिक-राजनैतिक आदि जीवन के उपयोगी विषयों का सन्निवेश है। जहाँ प्रत्यक्ष और अनुमान का प्रवेश नहीं होता वहाँ भी वेद प्रविष्ट होते हैं। स्मृति पुराणादि वेदानुगामी हैं, इसलिए ही स्मृति पुराण आदि ग्रहण योग्य हैं। ये स्मृति पुराण आदि विश्वकोष हैं, ऐसा विद्वानों का मत है। वेद हमारे श्रेय और प्रेयकर्मों के साधन हैं। प्राचीन धर्म समाज और व्यवहार के विषय में जानने में श्रुति ही समर्थ है। वेद अखिल धर्म के मूलभूत हैं, इसलिए वे हमेशा आदरणीय हैं। स्मृतिकार मनु ने भी कहा है -

'वेदोऽखिलो धर्ममूलम् तथा वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ।' इति।

और भी, महाभाष्यकार पतंजलि ने ब्राह्मण के लिए षडङ्गवेदाध्ययन अनिवार्य है इस कथन का समर्थन करते हुए कहा कि-

'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च।'

वेदों में आध्यात्मिक दर्शन का उत्कृष्ट भण्डार है। किन्तु उनके प्रतिपादन की रीति आधुनिकों की प्रतिपादन शैली से सर्वथा भिन्न है। मानव जीवन का दर्शन वेदों में करना चाहिए। विश्व के साहित्य में वेदों का महत्त्व और वैशिष्ट्य स्पष्ट दिखाई देता है। इस प्रकार आप आगे वेद शब्द का अर्थ और उसके पर्यायवाची शब्दों को जानेंगे। और अन्त में वेद पौरुषेय है या अपौरुषेय इस विषय में सामान्य विचार करेंगे।

अखिल ज्ञानराशि का आधार वेद है। वेदों में प्राचीनतम ऋग्वेद है, यह ही विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है। ऐसा कोई भी ज्ञान नहीं है जो वेदों में न हो। वायुयान से लेकर ब्रह्मविद्या पर्यन्त सारा ज्ञान वेदों में है। परन्तु आज-कल वेदों का वैसा अध्ययन नहीं मिलता है। यहाँ पर तो सामान्य स्थूलांश का स्पर्श किया गया है। वेदादि शब्दों के धातु-प्रत्यय आदि के निर्देश पूर्वक निर्वचन आदि भी यहाँ प्रदर्शित किए गए हैं। यहाँ वेद की विभिन्न शाखाओं का नाम निर्देशपूर्वक तथा वहां विद्यमान मन्त्रों की संख्या भी दी गई है।

वेद में स्वर की महिमा का वर्णन किया गया है। इसलिए स्वर विषय का भी संक्षेप से इस पाठ में वर्णन करेंगे।

उद्देश्य

यह पाठ पढ़ने के बाद आप सक्षम होंगे:

- वेदों का वैशिष्ट्य जान पाने में;
- वेदों का क्या महत्त्व है, समस पाने में;
- वैदिक वाङ्मय क्या होता है, इसे जान पाने में;

- वैदिक वाङ्मय की विभूति क्या है, यह जान पाने में;
- वेद का शब्दार्थ और वेद के पर्यायवाची शब्दों को जान पाने में;
- वेद पौरुषेय है अथवा अपौरुषेय इस विषय में सामान्य विचारों को ग्रहण कर पाने में;
- वेद का लक्षण जान पाने में।

1.1 वेदों का वैशिष्ट्य

अत्यन्त विशिष्ट और व्यापक है वेदों का महत्त्व। वैदिक वाङ्मय के महत्त्व का सामान्यतया वर्णन करने में लोग प्रायः असमर्थ हैं। यहाँ सर्वाङ्गपूर्ण मानवजीवन के उद्देश्यभूत धर्म अर्थ काम मोक्ष नामक चार पुरुषार्थों की भी आलोचना की गयी है। इसलिए वैदिकवाङ्मय में मानवजीवन के सभी उपयोगी विषय अच्छी तरह से विवेचित हैं, यह कथन उचित ही है। यहाँ प्रेय शास्त्र और श्रेय शास्त्र दोनों ही समान भाव से वर्णित हैं। इसलिए यहाँ भोग और मोक्ष की सत्ता का सम्पूर्ण वाङ्मय की अपेक्षा विशिष्ट वर्णन है। यह वैदिकसाहित्य अतिमहत्त्वपूर्ण है। यह सबसे प्राचीन है, ऐसा सब जानते ही हैं। यह व्यापकता और परिमाण में बहुत प्रसिद्ध है। इसका अध्ययन अपरिहार्य और अनिवार्य है। जो द्विज वेद का अध्ययन न करके अन्यत्र श्रम करता है, वह शूद्र होता है ऐसा माना जाता है। जैसे –

'योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥'- मनु

भारतीय विचारधारा का यह दृढ विश्वास है कि वेदतत्त्वज्ञ मनुष्य ही ब्रह्म को जानने में समर्थ होता है। जैसे–

'वेदशास्त्रर्थतत्त्वज्ञो यत्र कुत्रश्रमे वसन्।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते॥'

अपनी विशिष्टता के कारण वैदिकवाङ्मय का महत्त्व प्रतिष्ठित है। वेदों के ज्ञान के बिना जीवन का अन्तिम लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिए वैदिकवाङ्मय का स्थान महत्त्वपूर्ण है। ज्ञान की विमल धारा समस्त जैवमण्डल और सभी दिशाओं में वेदों से ही निकलकर बहती है। वेद न केवल भारतीयों के अपितु पृथिवी में रहने वाली समस्त मानवजातियों के हितसाधन हेतु हैं।

हमारे पूर्वजों ने किस प्रकार से जीवनयापन किया। किन खेलों के द्वारा उन्होंने अपना मनो विनोद किया। उन्होंने किन देवताओं को पूजा। उन्होंने विवाहसम्बन्ध का क्या उद्देश्य निर्धारित किया। और किस विधि के द्वारा वे प्रातः अग्नि में आहुति समर्पित करते थे, इत्यादि विषयों पर हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न होती है, तो उन विषयों का यथार्थ ज्ञान वेदों से ही प्राप्त कर सकते हैं।

टिप्पणी

वेदों का उपादेयत्व और महत्त्व उनकी भाषादृष्टि से भी अधिक देखा जाता है। इस वैदिकभाषा का महान प्रभाव आधुनिक भाषाविज्ञान में भी दृष्टिगोचर होता है। इस वैदिकभाषा ने भाषाविदों के मध्य विस्तृत प्राचीनभाषाविषयक मतभेदों का निराकरण किया। यदि आज कल के भाषाशास्त्र के पण्डित चाहते हैं कि उनके मत का विषय पूर्णतया परिपक्व हो, तो वे वेदों का अध्ययन करें, वेदज्ञान को जानने का प्रयत्न करना चाहिए। वेदों का अध्ययन तथा अनुशीलन करके वे विभिन्न भाषाओं में आये हुए पाइँ-नाइट-फार्चून आदि पदों का मूलरूप तथा उनके रूपान्तरण का सही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। बहुत से प्रयोजनों के साधक होने के कारण वस्तुतः वेद परममहत्त्वभाजक ग्रन्थ हैं।

1.2 वेदों का महत्त्व

ऋषियों ने वेदों को बनाया ऐसा पाश्चात्य पण्डित मानते हैं। वेद शब्दराशि हैं ऐसी पाश्चात्य पण्डितों की आधिभौतिक दृष्टि है। इसलिए वे शब्द राशि समूहात्मक वेद सामान्यग्रन्थ ही है ऐसा मानते हैं। परन्तु वेदमर्मज्ञ भारतीय मेधावी उनको शब्दराशी तथा ऋषिकृत नहीं मानते। भारतीय विद्वानों के मत में ऋषि वैदिक मन्त्रों के द्रष्टा हैं कर्ता नहीं। अलौकिक सामर्थ्यशाली ऋषियों ने अपनी दिव्य प्रतिभा से मन्त्रों के दर्शन किये। उन मन्त्रराशियों का प्रकाश उनकी बुद्धी में आविर्भूत हुआ। 'ऋषति पश्यति इति ऋषिः' इस व्युत्पत्ति से प्राप्त 'ऋषि' इस पद का अर्थ 'मन्त्रद्रष्टा' है। ऋषि शब्द 'इगुपधात् कित्' इस औणादिक सुत्र से इनि प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। और निरुद्र में विद्यमान- 'तद्येनास्तपस्यमानन् ब्रह्मस्वयम्भ्वभ्यानर्षत्।' इत्यादि पङ्क्तियाँ ऋषि के मन्त्रद्रष्टृत्व का समर्थन करती हैं।

प्रधान रूप से वेद दो प्रकार का है- मन्त्ररूप और ब्राह्मणरूप। मन्त्रों का समुदाय ही संहिताशब्द से जाना जाता है। ब्राह्मणरूप वेदभाग तो संहिताभाग का व्याख्यारूप ही है। और यह ब्राह्मणभाग यज्ञ के स्वरुप का बोधक है ऐसा कहा जाता है। ब्राह्मणग्रन्थ भी तीन प्रकार से विभक्त होता है- ब्राह्मण, आरण्यक,और उपनिषत्। यज्ञ के स्वरूप का प्रतिपादक ब्राह्मणभाग है। और अरण्य में पढे गये जो यज्ञ के आध्यात्मिक रूप का विवेचन करते हैं वे वेदभाग आरण्यक कहलाते हैं। उपनिषद् ब्रह्म के स्वरूप के बोधक तथा मोक्ष के साधान हैं, यही भाग वेद का अन्तरूप तथा साररूप होने के कारण वेदान्त कहलाता है। ब्राह्मणभाग गृहस्थों के लिए उपयोगी है, आरण्यकभाग वानप्रस्थों के लिए उपयोगी है, उपनिषद्भाग संन्यस्तों अथवा सन्यासियों के लिए उपयोगी है, यह भी कहा जा सकता है।

पाठगत प्रश्न 1.1

1. द्विज वेद को न पढकर अन्य कर्म करता है तो क्या होता है?
2. कौन ब्रह्म को जानने में समर्थ होता है?

टिप्पणी

3. वेदशास्त्रार्थ....इस कारिका को पूर्ण कीजिए।
4. योऽनधीत्य.....इस कारिका को पूर्ण कीजिए।
5. पाश्चात्य पण्डितों के अनुसार वेदों की रचना किसने की?
6. भारतीय विद्वानों के मतानुसार ऋषि कौन होते हैं?
7. ऋषि शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ क्या है?
8. ऋषि शब्द किस प्रत्यय से निष्पन्न होता है?
9. निरुक्त की कौनसी पङ्क्ति ऋषि शब्द का मन्त्र द्रष्टा अर्थ होता है, इसका समर्थन करती है।
10. वेद के प्रधान विभाग कौन कौन से होते हैं?
11. मन्त्रसमुदाय का दूसरा क्या नाम है?
12. ब्राह्मणरूप वेदभाग कौनसा है?
13. ब्राह्मणग्रन्थ कितनी प्रकार से विभक्त होते हैं। और वे कौन कौन हैं?
14. ब्राह्मण किसका प्रतिपादक है?
15. आरण्यक क्या होता है?
16. उपनिषद् क्या होता है?
17. ब्राह्मणभागों में कौन कौन से भाग किस किसके उपयोग के लिए होते हैं?

1.3 वैदिक वाङ्मय

भारतीय ज्ञान का प्रवाह गङ्गा के प्रवाह की तरह है। और उसके स्रोत वेद ही हैं। वेद के तुल्य दूसरा कोई भी दीप्तपुंज ग्रन्थ नहीं है। वेद की प्रभा से न केवल वेद स्वयं प्रकाशित होता है अपितु उसकी प्रभा से समस्त भारतीयवाङ्मय प्रकाशित होता है। वेद शब्द से जैसे चार मन्त्रों की संहिताओं का ग्रहण होता है वैसे ही वैदिक शब्द से वेदोत्तरकालिक समस्त वैदिकवाङ्मय का बोध होता है। वैदिक शब्द तो वेदविषयक बहुविधा ज्ञान की सामग्री का सूचक तथा द्योतक है। वेदविषयक सामग्री से यहाँ छः वेदाङ्ग-ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषद् आदि का बोध होता है। वेदों से भिन्न होते हुए भी ये वैदिकग्रन्थ वेदोद्धृत ही हैं। वैदिकवाङ्मय के अन्तर्गत ही ये छःवेदाङ्ग आदि ग्रन्थ आते हैं।

यद्यपि साहित्य शब्द वर्तमान में वाङ्मय अर्थ में प्रयुक्त होता है जिस अर्थ में 'लिटरेचर'-शब्द विदेशियों द्वारा प्रयुक्त किया जाता है। तथापि यहाँ वेद शब्द का प्रयोग मन्त्र और ब्राह्मण

टिप्पणी

के निमित्त है। आपस्तम्ब द्वारा कहा गया है- 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'। जिससे यज्ञों का अनुष्ठान निष्पन्न होता है, और देवताओं का स्तुतिविधान जहाँ उल्लिखित है वह मनन करने के कारण मन्त्र कहलाता है। ब्राह्मण पद तो ग्रन्थ विशेष वाचक है। यज्ञों के विविध क्रियाकलापों के प्रतिपादक ग्रन्थ 'ब्राह्मण' कहलाते हैं। 'ब्राह्मण' इस पद का अर्थ- 'वर्धन विस्तार तथा वितान एवं यज्ञ' हैं। ब्राह्मण भी तीन भागों में विभक्त है। पहला भाग 'ब्राह्मण', दूसरा भाग 'आरण्यक', और तीसरा भाग 'उपनिषद्' कहा जाता है।

वेद स्वरूप भेद से तीन प्रकार का होता है- ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद। जहाँ अर्थ के कारण पाद व्यवस्था है उन छन्दोबद्ध मन्त्रों का नाम 'ऋक्' है। ऋचाओं का समूह ही 'ऋग्वेद' है इस पद के द्वारा व्यवहार किया जाता है। 'यजु' शब्द यज्-धातु से उसि प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। जिस वेद में यज्ञ याग आदि क्रियाकलापों वाले मन्त्रों का सन्निवेश है उसे 'यजुर्वेद' कहते हैं। जहाँ गीतिरूप मन्त्र होते हैं वह उपासनाकाण्ड परक वेद 'सामवेद' है। मन्त्र तीन प्रकार के होते हैं इसलिए वेद 'त्रयी' इस नाम से प्रसिद्ध हैं।

मन्त्रों का समूह 'संहिता' इस नाम से जाना जाता है। यज्ञानुष्ठान को दृष्टी में रखकर वेदव्यास ने विभिन्न ऋत्विजों के लिए संहिताओं का सङ्कलन किया। मन्त्रों की संहिताओं का सङ्कलन चार प्रकार से किया गया, इसलिए संहिताः चार हैं। ऋक्संहिता, यजुःसंहिता, सामसंहिता, अथर्वसंहिता। इसलिए वेद चार चार हैं।

अतिव्यापक और विस्तृत है हमारा वैदिकवाङ्मय। और यह सर्वाङ्गपूर्ण है, क्योंकि यहाँ मानव जीवन के उद्देश्यभूत धर्म अर्थ काम मोक्ष ये चार पुरुषार्थ विवेचित हैं। यह वाङ्मय सुप्राचीन, समग्रपृथिवीव्यापि, परिमाण से दुरूछेद्य, सौन्दर्य और उत्कर्ष से अनन्यतुल्य है। महान मौलिक और पुरातन है यह वैदिकवाङ्मय। अतः यहाँ हमारे अभिनिवेश का सर्वथा समर्थन किया जाता है। केवल इतना ही नहीं अपितु अन्य कारणों से भी वैदिकवाङ्मय के अध्ययन में पण्डित जिज्ञासू तथा छात्रों की रूचि उत्पन्न होती है।

पाठगत प्रश्न 1.2

18. वेद विषयक सामग्री शब्द से किसका बोध होता है?
19. साहित्यशब्द वर्तमान में किस अर्थ में प्रयुक्त होता है?
20. वेद के विषय में आपस्तम्ब में क्या कहा गया है?
21. मन्त्र शब्द का क्या अर्थ है?
22. ब्राह्मण शब्द का क्या अर्थ है?
23. वेद स्वरूप भेद से कितने प्रकार का है? और वे कौन कौन से हैं?

टिप्पणी

24. ऋक् क्या है? और ऋग्वेद क्या है?

25. यजुर्वेद क्या है?

26. सामवेद क्या है?

27. वेद का त्रयी नाम किसलिए रखा गया?

28. ऋत्विजों के लिए संहिताओं का सङ्कलन किसने किया।

29. संहिताओं की संख्या बताओ।

30. वैदिकवाङ्मय में हमारा अभिनिवेश कैसे होता है।

1.4 वैदिक वाङ्मय की विभूति

वैदिकवाङ्मय का अध्ययन ऐतिहासिकों की परमप्रीति के लिए कल्पित है। और यह वाङ्मय न केवल विशाल भारत के लोगों की अपितु सहस्रों वर्षों से भी पहले से स्थित यहाँ के इतिहास की आज तक रक्षा कर रहा है, इसके अलावा भी तिब्बत-जापान-चीन-कोरिया आदि देशों में, तथा लङ्काद्वीप-मलयद्वीप, और पश्चिम में रहने वाले लोगों की बौद्धिक-प्रवृत्तियों में भी प्राचीनकाल में इसका बहुत बड़ा प्रभाव और विस्तार था तथा प्रत्येक युग में इस वाङ्मय का प्रभाव परिलक्षित होता है।

पूर्व में तमिल-तेलुगु-मलयालम-कनाडी इन चार भाषा-वर्गों को छोड़कर प्रायः सभी भारतीय भाषाएं वैदिकसंस्कृत से उत्पन्न हुई हैं। पश्चिम में प्रायः सभी यूरोपीय भाषाएं वैदिकसंस्कृत से निकली हुई हैं। सभी धर्मों की उत्पत्ति का परिचय जितना इस साहित्य के आश्रय से प्राप्त होता है, उतना अन्य साहित्य के आश्रय से प्राप्त नहीं होता है।

धर्म और दर्शन इन दोनों के विकास और ज्ञान के लिए वैदिकवाङ्मय का अध्ययन अपरिहार्य है। मैकडोनल महोदय ने कहा कि- 'भारोपीय भाषी भाषित लोगों में केवल भारतीयों के द्वारा ही केवल वैदिकधर्म नामक महान् राष्ट्रीय धर्म, और इसका प्रतिपक्षी बौद्धधर्म नामक महान् सार्वभौमधार्म का निर्माण किया गया।

उपज्ञासमृद्ध वैदिकवाङ्मय अन्य वाङ्मयों से विशेष है। 400 ई.पू. में भारतवर्ष पर यवनों का आक्रमण हुआ। उससे पहले ही आर्यसभ्यता एवं हमारी वैदिकवाङ्मयविभूति प्रौढ़ता को प्राप्त कर चुकी थी। और उसके बाद अन्य कई देशों के आक्रमण होने के कारण संसर्ग दोष उत्पन्न हो गया। मेकडोनल महोदय ने कहा कि-'सभी सनातन साहित्यों के मध्य वैदिकवाङ्मय ने मौलिकता के मूल्य एवं सौन्दर्यगुण में महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त किया। मानव प्रकृति विकाशानुशीलन की प्रधानसाधानता तो वेदों में अन्य वाङ्मयों से निःसंशय उत्कृष्ट ही है'।

भारतीय साहित्य का इतिहास वैदिककाल तथा लौकिक संस्कृतकाल नामक दो कालों में

विभक्त है। पाणिनि से पूर्व का प्रथम काल, तथा बाद का द्वितीय काल गिना जाता है। आदि काल ही वेद, ब्राह्मण, आरण्यकग्रन्थ, उपनिषद्, और कल्प सारस्वत माने जाते हैं। इस वैदिकवाङ्मय मंप आर्यसभ्यता का विलक्षण और निरन्तर गमन देखा जाता है। प्रार्थना, उपासना, मन्त्रजप, जननी के उदर में शरीरग्रहण से लेकर शरीरत्याग पर्यन्त आर्यजीवन को विशेषित करने वाले जो सोलह संस्कार, अरणीयों से हव्यवाह का जनन, श्रौतसूत्र गृह्यसूत्र आदि बहुत सी विधियाँ ईसा के जन्म के पूर्व से आज तक प्रचलित हैं।

यूरोपीय संस्कृति और दर्शनों का जो विकास हुआ उसके ज्ञानार्थ वैदिक वाङ्मय का अध्ययन अवश्य करना चाहिए तथा विण्टरनिट्ज महोदय ने कहा कि–'यदि हमारी स्वसंस्कृति का उपक्रम प्रक्रम समाप्त हो जाए, और यदि हमारी प्राचीन भारोपीय संस्कृति जानने की इच्छा हो तब जहाँ भारोपीय लोगों का वर्षिष्ठ वाङ्मय सुरक्षित हो ऐसा स्थान भारतवर्ष ही होगा, ऐसी हमारी मानना है।

भारतीयों को विशेष रूप से इस वाङ्मय के इतिहास का अध्ययन करना चाहिए। भारतीयों के प्राचीन वाङ्मय और संस्कृति का श्रेष्ठ दर्पण वैदिक वाङ्मय है। और भी आधुनिक हिन्दी-पंजाबी-बंगला-ओडिया-गुजराती-मराठी-राजस्थानी-बिहारी-असमिया आदि उत्तर भारत में बोली जाने वाली सभी भाषाओं की जननी है यह भाषा। दक्षिणभारत में भी जो तमिल-तेलगु-मलयालम-कन्नड़ आदि आधुनिक भाषाएं हैं वे भी वैदिकवाङ्मय से बहुत प्रभावित हैं। जैसे धागे में मोती ग्रंथित होते हैं वैसे ही इसे वैदिकवाङ्मय में सभी भारतीय भाषाएं ग्रंथित हैं। वैदिकवाङ्मय के ज्ञान के बिना आधुनिक भाषाओं का सही प्रकार से ज्ञान असम्भव है।

'मैं कौन हूँ। कहाँ से आया। मुझे सुखप्राप्ति कैसे होगी और दु:ख का निराकरण कैसे होगा।' ये मानवों की अध्यात्म विषयक सनातन जिज्ञासाएं वैदिक वाङ्मय में आलोचित हैं। **अत: वैदिकवाङ्मय का इतिहास संक्षेप से कहा गया।**

पाठगत प्रश्न 1.3

31. वैदिकवाङ्मय का अध्ययन किसलिए अपरिहार्य है?
32. वैदिकसाहित्य का इतिहासकाल कितनी प्रकार से विभक्त है?
33. कौन-सी वैदिकवाङ्मय से भाषा बहुत प्रभावित है?
34. वैदिकवाङ्मय में कैसी जिज्ञासा आलोचित है?

1.5 वेद शब्द का अर्थ

'विद्यन्ते धर्मादय: पुरुषार्था: यैस्ते वेदा:' ऐसा बह्वृक्प्रातिशाख्य में कहा गया है। यदि वेदों के स्वरूप के विषय में मन में जिज्ञासा उत्पन्न होती है तो तद्विषयक ज्ञान वेदों में ही

प्राप्त कर सकते हैं। सायण ने तो 'अपौरुषेयवाक्यं वेद' ऐसा कहा। इष्टप्राप्ते: अनिष्टपरिहारस्य च अलौकिकम् उपायं यो वेदयति स: 'वेद:' **यह भाष्यभूमिका में सायण ने कहा।** उसका प्रमाण भी दिया गया है-

''प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।
एतं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥'' इति।

आम्नाय, आगम, श्रुति, वेद, छन्द ये सब शब्द वेद शब्द के पर्यायवाची हैं। ज्ञानार्थक वेद शब्द विद्-धातू से घञ्प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी के चुरादिप्रकरण में तो चारों अर्थों में विद्-धातु का प्रयोग है। जैसे:-

''सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे।
विन्दते विन्दति प्राप्तौ श्यन्लुक्श्यनम्शेष्विदं क्रमात्।'' इति।

उद्र अर्थों के वाचक होने से विद्-धातु से वेद शब्द निष्पन्न है। सत्तार्थक होने से विद्-धातु से घञ्प्रत्यय होने पर 'वेद' पद का अर्थ होता है- 'विद्यते सत्तां गृह्णाति वस्तु अनेन इति वेद:।' ज्ञानार्थक होने पर विद्-धातु घञ्-प्रत्यय से निष्पन्न 'वेद' पद का अर्थ है- 'विदन्त्येभि: धर्मब्रह्मणी क्रियाज्ञानमयं ब्रह्म वा इति वेद:।' विचारार्थक होने पर विद्-धातु से अच्-प्रत्यय से निष्पन्न वेदशब्द का अर्थ -'विन्ते विचारयति धर्मब्रह्मणी क्रियाज्ञानमयं ब्रह्म वेति वेद' इति। लाभार्थक विद्-धातु से घञ्-प्रत्यय से निष्पन्न 'वेद' शब्द का अर्थ 'विदन्ते स्वरूपं लभन्ते वस्तु अनेनेति वेद:।' ऋग्वेदभाष्यभूमिका में -'विदन्ति जानन्ति, विद्यते भवन्ति, विन्ते विचारयति, विदन्ते लभन्ते सर्वे मनुष्या: सत्त्वविद्यां यैर्येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदा:' इति। आपस्तम्बानुसार- 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधोयम्' इति।

वेद के स्वरूप के विषय में पश्चिमी विद्वान वेदों को ऋषिप्रणीत मानते है। इतना ही, नहीं सांसारिक उन शब्दराशियों को सामान्य ग्रन्थ ही मानते हैं। परिणामस्वरूप जो ऋषि जिस मन्त्रविशेष से सम्बद्ध है वह उसका कर्ता हुआ। ऋग्वेद में भी कर्तृत्वपद का स्पष्टतया उल्लेख प्राप्त होता है- 'इदं ब्रह्मक्रियमाणं नवीय: (ऋ0 7।35।14), 'ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो वसिष्ठा:' (ऋ0 7।37।4), 'ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि' (ऋ0 7।97।9) अनेक मन्त्रों में 'ऋषिप्रणीता एवं वेदमन्त्र: सन्ति' इस कथन का उल्लेख स्पष्टतया प्रतीत होता है। भाषाशास्त्रदृष्टि से मण्डित, आध्यात्मिक भावना से विहीन कतिपय आधुनिक भारतीय पण्डित भी 'ऋषय एव वैदिकमन्त्रणां कर्त्तार: सन्ति' ऐसा मानते हैं और कुछ वेदमर्मज्ञ भारतीय मेधावी उनको ऋषिप्रणीत नहीं मानते हैं। उनका मत यह है कि ऋषि वैदिकमन्त्रों के द्रष्टा है न कि कर्त्ता। असङ्ख्य वैदिक मन्त्रों के अनुशीलन से प्रतीत होता है कि अलौकिक सामर्थ्यशाली ऋषियों ने दिव्य प्रभा से मन्त्रों का दर्शन किया (देखें- ऋ0 7।33,7।13 मन्त्रों में)। कुछ मन्त्रों में मुनि वसिष्ठ द्वारा दिये गये अलौकिक ज्ञान का उल्लेख है (ऋ0 7।87।4, 7।88।4), ऋग्वेद में अनेक जगह वाणी की भव्य स्तुति दृष्टिगोचर होती है। मन्त्रों के प्रकाश का उनकी बुद्धि में आविर्भाव हुआ। जैसे-

टिप्पणी

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम्। ऋ० 10।71।3

ऋषिदृष्ट प्रार्थना के अलौकिक फल का निर्देश भी वेद में ही उपलब्ध है (ऋ० 3।53।12, 7।33।3) मन्त्रों में ही वैदिक वाणी की नित्यता के प्रमाण प्राप्त होते हैं, उन प्रमाणों में 'वाचा विरूपनित्यता' (ऋ० 8।75।6) मुख्य है। 'ऋषि' इस पद की व्युत्पत्ति के आधार पर (ऋषति पश्यति इति ऋषिः) अर्थ ही मन्त्रद्रष्टा है। ये ऋषि शब्द 'इगुपधात् कित्' औणादिक सूत्र से इनि प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ। निरुक्त में च विद्यमान होने से 'तद्येनास्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत्....' इत्यादि पङ्क्तयः ऋषियों का मन्त्रद्रष्टृत्व प्रतिपादित होता है। इसप्रकार ऋषि मन्त्रों के द्रष्टा है न कि कर्त्ता।

'ऋषिर्मन्त्रद्रष्टा। ऋषियों ने गत्यर्थत्व र्जानार्थत्व से मन्त्र को देखा।' ('श्वेतवनवासिरचितवृत्तौ' उणादिसूत्रम् 4।129 देखे) और निरुक्त में भी 'तद्येनांस्तपस्यमानां ब्राह्मस्वयम्भ्वभ्यानर्षत् त ऋषयोऽभवंस्तदृषीणामृषित्वमिति विज्ञायते ऋषिदर्शनात्। मन्त्रान् ददर्श इत्यौपमन्यवः।'

न्यायवैशेषिक के मत में वेद पौरुषेय और नित्य है। परन्तु सांख्य-वेदान्त-मीमांसा के मत में वेद अपौरुषेय है। ये दर्शन उनका नित्यत्व स्वीकार करते हैं। प्रायः स्मृति पुराणों में भी वेद सम्बन्धित उनके जैसी ही भावना प्राप्त होती है, जैसे मीमांसा में प्रकाशित है। मनु वेदों को नित्य और अपौरुषेय मानते हैं। उन्होंने कहा-

'पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः॥' इति

विद्-धातु से घञ्-प्रत्यय करनेपर वेदशब्द निष्पन्न होता है। सामान्यतः यहां विद्-धातु ज्ञानार्थक है। ज्ञायते का अर्थ वेद इस भाव में वेद शब्द की व्युत्पत्ति मानकर वेद शब्द ज्ञानवाची है ऐसा व्यवहार होता है। किन्तु वेद शब्द ग्रन्थवाचक हो तो ''विद्यते ज्ञायते अनेन इति वेदः'' इस प्रकार करण में वेद शब्द की व्युत्पत्ति जाननी चाहिए। जिस ग्रन्थ के द्वारा ज्ञान होता है या जो ज्ञान का साधन है वो ग्रन्थ वेद है। **और न ही अन्य** ज्ञानप्रतिपादक ग्रन्थ वेद है, किन्तु धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति के विषय में अलौकिक ज्ञानराशि के प्रतिपादक ग्रन्थ ही वेद हैं। उसके द्वारा अतीन्द्रियज्ञान प्रतिपादक ग्रन्थ के रूप में वेद शब्द रूढ़ है। विद् धातु के चार अर्थ हैं। और भी विद्-धातु चातुरर्थिक विषय में अन्य एक कारिका-

वेत्ति वेद विद ज्ञाने विन्ते विद विचारणे।
विद्यते विद सत्तायां लाभे विन्दति विन्दते॥ इति

ज्ञानार्थक 'विद ज्ञाने' इति अदादिगणीय विद् धातु से ''विदन्ति जानन्ति एभिः धर्मब्रह्मणी क्रियाज्ञानमयं ब्रह्म वा'' इस व्युत्पत्ति से वेद शब्द उत्पन्न होता है। विचारार्थक से 'विद विचारणे' इति रुधादिक होने से विद् धातु ''विन्ते विचारयति धर्मादिकमनेनेति'' व्युत्पत्ति से वेद शब्द उत्पन्न होता है। सत्तार्थक 'विद सत्तायाम्' दिवादि होने से विद् धातु ''विद्यते सत्तावद् भवति वस्तु अनेनेति'' व्युत्पत्ति से वेद शब्द की उत्पत्ति होती है। लाभार्थक 'विदलृ लाभे' इ तुदादि होने से विद् धातु ''विन्दते विन्दति वा स्वरूपं ब्रह्मणः अनेनेति'' व्युत्पत्ति

से वेदशब्द उत्पन्न होता है। कुछ तो 'विद् चेतानाख्याननिवासेषु' चुरादिगणीय धातु से वेदशब्द निष्पादित मानते है। उनके मत में अर्थसंङ्गति इसप्रकार है - 1. चेत्यते ज्ञायते धर्मब्रह्मतत्त्वं येन स इति 2. आख्यायते महतां चरितज्ञातं येन स इति 3. निवसति सर्वदेवगण: पाठकशरीरे येनेति। और मनु ने कहा "वदोऽखिलोधर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्" इति। सायण ने भी कहा है - 'इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेद' इति।

1.6 वेद शब्द के पर्यायवाची

प्राचीनकाल में गुरुशिष्यों में श्रुतिपरम्परा द्वारा वेदज्ञान धारण कियाजाता था। इसीलिए वेद को श्रुति भी कहते है। उसीको "गुरुमुखोच्चारणनुच्चारणं" वेद ऐसा कहते है।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद ये तीनों वेद त्रयी के नाम से जाने जाते हैं। यद्यपि अथर्ववेद को भी वेद स्वीकार किया गया तो भी इसका सामादि तीनों के अंतर्गत आने वाले यागों के प्रयोग विशेष में अभाव के कारण पृथक् उल्लेख नहीं किया गया। किन्तु इसका वेदत्व अक्षत है। तथा बृहदारण्यकोपनिषद् में भी कहा गया है कि- 'अस्य महतो भूतस्य नि:श्वसितमेतद् ऋग्वेदो यजुर्वेद: सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस'। प्रधान याग सम्बन्धि अभावों में भी अभिचार आदि यागों में शान्ति और पौष्टिक आदि कर्मों में अथर्ववेद के मन्त्र प्रयुक्त होते हैं। पुरुषार्थो में मोक्ष ही इसका मुख्य वर्णन अथर्ववेद में है, और मोक्ष उपाय ही केवल इसका वेदत्व नही है, अपितु "अयमात्मा ब्रह्मेति" महावाक्य माण्डूक्य आदि के आत्म ज्ञान उपदेश का उपनिषदो में इस गुरु के गुरुत्व होने में अन्य वेदो को अलग करता है, ऐसा वेदान्तियों का मत है।

यह सब छोडकर भी आम्नाय, आगम, अनुश्रव छन्द ये वेद के पर्यायवाची हैं। जो सही रूप से जीवन जीने का वर्णन करे वह आम्नाय वेद कहलाता है। प्राचीन काल में पाठक गुरुमुख उच्चारण के पीछे अनुच्चारण द्वारा श्रवण कर और कण्ठस्थ कर वेदाभ्यास किया करते थे। इसलिए ही वेद आम्नाय इस नाम से जाना जाता है।

वेद के अन्य नाम आगम अथवा निगम है। तथा हि वेदार्थ में आगम निगम शब्द का प्रयोग बहुत जगह देखा जाता है। और पतंजलि ने कहा है रक्षा उह आगम लघु असन्देह मुख्य प्रयोजन है। श्रीधारस्वामी ने भागवत व्याख्या में निगम को ही वेद कहा है, वह ही कल्पवृक्ष सभी पुरुषार्थ के उपाय है। स्वाध्याय भी वेद का पर्यायवाची है। और वेदपाठी को स्वाध्याय (वेद) पढ़ना चाहिए। छन्दांसि छादनात् इस व्युत्पति से छन्द-शब्द वेद मन्त्र वाचक है।

पाठगत प्रश्न 1.4

35. बह्वृक्प्रातिशाख्य में क्या कहा गया है?

36. सायण ने भाष्यभूमिका में वेद शब्द के विषय में क्या कहा है?
37. न्याय वैशेषिक के मत में वेद कैसा है?
38. किन के मत में वेद अपौरुषेय हैं?
39. विद्-धातू के चार अर्थ बताओ?
40. विचारार्थक विद्-धातू से क्या रूप बनता है?
41. मनु ने वेद के विषय में क्या कहा है?
42. सायण के मत में वेद का लक्षण बताओ?
43. भाष्यभूमिका में वेद का क्या लक्षण किया गया है?
44. वेद शब्द के पर्यायवाची शब्द बताओ?
45. वेद शब्द किस धातु से बना?
46. वेद शब्द कैसे निष्पन्न होता है?
47. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदि के चुरादिप्रकरण में किन अर्थों में विद्-धातू का प्रयोग किया गया। और वे अर्थ कौन-कौन से हैं?
48. ज्ञानार्थक विद्-धातु से घञ्-प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुए 'वेद' शब्द का क्या अर्थ है?
49. विचारार्थक विद्-धातू से अच्-प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुए वेद शब्द का क्या अर्थ है?
50. वेद ऋषियों द्वारा प्रणीत नहीं हैं ऐसा कौन मानते हैं?
51. ऋषि शब्द का क्या अर्थ है?
52. ऋषि शब्द कैसे निष्पन्न होता है?
53. न्याय और वैशेषिक के मत में वेद कैसे होते हैं?
54. मनु के मत में वेद कैसे हैं?

1.7 वेद पौरुषेय या अपौरुषेय पर विचार

मीमासंक सांख्य वैदान्तिक नैयायिक मत - वेद अपौरुषेय है ऐसा वेदान्ती स्वीकार करते है। मीमांसक भी वेदों के अपौरुषेयत्व को मानते है। अत: कोई भी मरणधर्मा वेद का कर्ता नहीं है। और ईश्वर भी उसका कारक नहीं है। वह स्मर्ता ही है। इसीलिए

आम्नात को इसका महान कर्ता माना क्योंकि ये ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद है। भ्रम-प्रमादादि-पुरुषदोष से रहित होने से वेद अपौरुषेय है। भ्रम प्रमाद विप्रलिप्सा और साधानपटुता ये पुरुषदोष है। प्रत्येक कल्प में परमेश्वर वेद का बार बार उपदेश करता हैं।

इसलिये पराशरसंहिता में कहा है-

''न कश्चिद् वेदकर्तास्ति वेदस्मर्ता चतुर्मुखः।
ब्रह्माद्या ऋषयः सर्वे स्मारका न तु कारकाः॥'' इति

ऋषि भी वेदकर्ता नही है। वे भी तपस्या से वेदमन्त्रों का दर्शनकर लोक व्यवहार को जानकर लोक में प्रचार करते है। इसीलिए कहा है कि-

''युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयम्भुवा॥'' इति

उनका यह अभिप्राय है कि वेद अनादि हैं। उनकी उत्पत्ति कब हुई और, किस प्रकार हुई ये कोई नही जनता है। अनादि होने से वेदों की अनन्तता भी सिद्ध है। अनादि वेद ही अनाद्यनन्त ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं। ब्रह्मविषय में या पारलौकिक विषयों के विषय में, मोक्षादि का वेद ही प्रमाण है। ''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म'' यह श्रुति सृष्टी के कारणरूप का प्रतिपादन करती है। शास्त्रों में नित्यता से ब्रह्मसूत्र ब्रह्म के विषय में ब्रह्मशब्दवाच्यभूत वेद ही प्रमाण हैं ऐसा प्रतिपादन करते हैं। वेद की अपौरुषेयता कहने वाले भी मानते है की सृष्टि के आदि में भगवान् पूर्वकल्प के समान पुनः वेद को बार-बार ब्रह्म को उपदेश देते हैं। मीमांसक ऐसा मानते हैं कि शब्द नित्य है। शब्द का नित्यत्व केवल उच्चारण द्वारा प्रकट होता है न कि निर्मीत होता है। वेदों का शब्दात्मक होने से नित्यत्व है। और नित्यत्व होने से अपौरुषेयत्व है-

सांख्य और वैदान्तिक वेद के संकेत अक्षरों की नित्यता को अस्वीकार करते हुए भी प्रवाह को नित्य मानते है। नैयायिक विद्वान् मानते है कि वेद तो पौरुषेय है, महाभारत आदि वाक्य के समान वेद भी पुरुषबुद्धिपूर्वक रचित है न कि जड़ आदि वेदकर्ता है। वेद भ्रम-प्रमादादि रहित है और ईश्वर भी अतः ईश्वर ही वेदकर्ता है इसीलिए वेद अपौरुषेय है। ईश्वरप्रणीत होने से ही वेद की प्रामाणिकता सिद्ध है। शब्दों के अनित्यत्व से वेदों की भी अनित्यता सिद्ध होतीहै। इस प्रकार वेदों का कर्ता सर्वज्ञ ईश्वर ही है। सर्वज्ञ ईश्वर ही सकल प्रकार से ज्ञान विज्ञान सम्पन्न वेद रचकर ब्राह्मणों को दिया। वेद उसकी सहज निर्दिष्टी है वेद वाक्य का अभिप्राय है कि, जिस प्रकार से जीव विना प्रयास के निःश्वसन करता है, उसके समस्त कार्य ही सहजगतिसे होते हैं। उसी प्रकार सर्वज्ञता से विना प्रयास के ही वेदों कानिर्माण या प्रतिपादन करता है।

आधुनिकमत - अर्वाचीन वैदेशिक प्रभाव से प्रभावित विचारका प्रतिपादन करते हैं कि

टिप्पणी

वेद ऋषिकृत है। वे कहते है कि जिस ऋषि का सम्बन्ध जिस मन्त्र के साथ है वह ही ऋषि उस मन्त्र का प्रणेता है। 'इदं ब्रह्मक्रियमाणं नवीयः', 'ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो वसिष्ठाः' 'ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि' इत्यादि वाक्यों द्वारा प्रतीत होता है कि वेद ऋषिकृत ही है।

किन्तु भारतीय मनीषियों का अभिप्राय है कि ऋषि मन्त्रकर्ता नहीं है, अपितु वे अपौरुषेय वेदमन्त्रों के साक्षात्कर्ता है। मन्त्र द्रष्टृत्व रूप ही उनका ऋषित्व है और वेद अपौरुषेय होने से पौरुषेयकृति में उत्पन्न भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, साधानपटुता दोष से रहित है।

1.8 वेदकालक्षण

आपस्तम्ब ने वेद लक्षण को उल्लिखित करते हुए मन्त्र ब्राह्मण को वेद नाम से जाना जाता है। सायण ने भी ऋग्वेद भाष्य में उदृत वेदलक्षण के बारे में कहा है मन्त्र ब्राह्मण की शब्द राशि ही वेद है। मन्त्र मनन करने से। जिससे कर्म उसके उपकरण देवता आदि का ज्ञान होता है वह मन्त्र है। मन्त्रों के द्वारा हि आध्यात्मिक आधिदैविक आधियाज्ञिक विषय का बोध अच्छी प्रकार से होता है। इसलिए मन्त्रो का मन्त्रत्व है। अथवा जिनके मनन से आपत्तियों से मनुष्य रक्षा को प्राप्त करता है वे मन्त्र है। चारो वेदों की संहिता ही मन्त्र पद वाच्य है। मन्त्र ही संहिता है। वैदिक संहिता छन्दोबद्ध पद रचनात्मक होती है। ब्राह्मण ग्रन्थ तो हमेशा गद्यात्मक ही होते है। वैदिक संहिता एक और अखण्ड है। कहा भी जाता है की कृष्णद्वैपायनव्यास ने ही वेद को चार भागों में विभक्त कर संहिता सामसंहिता, यजुःसंहिता, अथर्वसंहिता नाम दिए।

जिससे प्रसन्न और स्तुति की जाए वह ऋक्। जैमिनि द्वारा ऋग्लक्षणकिया गया है 'तेषामृक् यत्र अर्थवशेन पादव्यवस्था' इति। ऋग्वेद ही सर्वप्रथम रचित हुआ था। अत एव ऋक्मन्त्रों का अभिधान हुआ है। अन्य वेदों का जो विधान है वह शिथिल क्रम में हुआ / ऋग्वेद में जो विधान है वह प्रबल होता है। और भी आम्नात तैत्तिरीयसंहिता में 'यद्वै यज्ञस्य साम्ना यजुषा क्रियते शिथिलं तद्, यदृचा तद् दृढमिश्ति। सामवेद का लक्षण 'गीतिषु सामाख्या' है। सामवेद गीतिपरक मन्त्र हैं। यजु का लक्षण 'शेषे यजुःशब्द' है। यजुर्वेद में ही सभी यज्ञ आदि विधानों का वर्णन है- 'अनियताक्षरावसानो यजुः' यह यजुर्वेद का लक्षण किया है। जहां अक्षरों की संख्या नियत या निश्चित नहीं है वो यजुर्वेद है। यजुर्मन्त्र भी गद्यात्मक होते है - अतः ऋक्-सामविलक्षण गद्यात्मक मन्त्रों का संग्रह यजुर्वेद है। शुक्लयजुर्वेद, कृष्णयजुर्वेद यजुर्वेद के दो भाग है। शुक्लयजुर्वेद में दर्शपूर्णमासादियाग के मन्त्र संकलित है- कृष्णशाखा में मन्त्र और ब्राह्मण का मिश्रण है- अथर्व मन्त्रों का कोई विशेष नहीं है- वेदान्त मन्त्र यहां मुख्यतः समाविष्ट हैं। अभिचारादिकर्म में अथर्ववेदीय मन्त्रों का उपयोग होता है।

प्राचीनकाल में महर्षि वैशम्पायन ब्रह्महत्या पाप से पातक होने पर शिष्यों को बुलाकर कहा आप सब में से कौन गुरू के पापक्षालन के लिए तप आचरण करना चाहता है। याज्ञवल्क्य ने कहा 'भगवन, हीनविद्या से युक्त अन्य शिष्यों के तप द्वारा पापक्षालन दुष्कर

है। मेरे अकेला ही तप से तुम्हारे पाप नष्ट कर सकता हूं। 'शिष्य के अविनय से क्रुद्ध गुरु ने दी गई विद्या का प्रत्यर्पणपूर्वकं आश्रम त्याग का आदेश दे दिया। याज्ञवल्क्य भी सपद्य अधीत वेदविद्या का वमन कर देते हैं। तब गुरु की आज्ञा से अन्य शिष्यों ने तितर पक्षी-कीट रूप में उद्गीर्ण विद्या स्वीकार की। अत एव उनके द्वारा प्रचारित वह वेदसंहिता तैत्तिरीय संहिता इस नाम से जानी जाती है। याज्ञवल्क्य ने तब सूर्य से वेद विद्या प्राप्त करने के लिए सवितृदेव को स्तवन द्वारा प्रसन्न किया। सूर्य देव ने भी वाजि के रूप में याज्ञवल्क्य को उपदेश किया। वाजि नाम सूर्यरश्मी का है, सनिशब्द धनवाची है। सूर्यकिरण से यह वेदधन प्राप्त किया तब वह वाजसनेय संहिता नाम से लोक में प्रसिद्ध हुई- उद्गीर्ण वस्तु तामसिक होने से तैत्तिरीय संहिता कृष्णयजुर्वेद द्वारा कही गई है। सूर्य सहायता से जो वेद विद्या सीखी गई थी वह सात्त्विक व शुक्लत्व है।

वेदवृक्ष की बहुत शाखा है। गुरु शिष्य परम्परा में वेदाध्ययन में स्वराद्युच्चारण शैली भेद दिखाई देता है- उन्ही से वेदशाखा की उत्पत्ति हुई। इतना ही नहीं ऋग्वेद में चौबीस ऋक्शाखा समुपलब्ध होती है - शाकल-मुद्गल-गालव-वास्कलादि। उनके मध्य में शाकल-वास्कलशाखा आज भी समुपलब्ध होती है। जैमिनि-सुमन्तु-सुकर्म अनेक शाखा सामवेद की प्रसिद्ध है। त्वरक-कठादि कृष्ण की। जाबालि-काण्व-माध्यन्दिनादि शाखा शुक्लयजुर्वेद में प्रसिद्ध है। अथर्ववेद की पैप्पलाद-प्रभृतिशाखा प्रसिद्ध है। वस्तुत: किस वेद की कितनी शाखा है ऐसा विचारण अतीव कठिन है। महाभाष्य पस्पशाह्निक में भाष्यकार पतंजलि ने कहा - 'एकविंशतिधा वा, एकशतमधवर्युशाखा:, सहस्रवर्त्मा सामवेद' इति।

अत: शाखा शब्द से संहिताभेद नहीं होता है। किन्तु अध्ययनभेद होता है। इसीलिए वेदज्ञ सत्यव्रतसामाश्रमवासी ने कहा 'शाखा भेद केवल अध्ययनभेद है न की ग्रन्थभेद' एक एक वेद की अनेक शाखा होने पर भी तात्त्विकभेद का अभाव है।

इसप्रकार यह क्रम से समस्त मन्त्र पदों का उच्चारण होता है, वह माला पाठ है। रेखा पाठ में भी कंही यथाक्रम कंही विपरीत क्रम कंही दो पदों का कंही तीन पदों का एकत्र पाठ होता है। जटापाठ का ही अनुरूप दिखता है शिखापाठ में। यहा मध्य- मध्य में तृतीय षष्ठ नवम चरण में तीन तीन पद होते हैं- ध्वजपाठ में भी पहले तो क्रमपाठ के समान छ: पदों का उच्चारण कर वापस उन्ही छ: पदों का विपरीत उच्चारण करते है- जहां क्रम पाठ के दो-दो पद यथाक्रम तीन-तीन बार उच्चारित होते हैं- द्वितीय बार में तो व्युत्क्रम पाठ होता है, वह दण्ड पाठ है। रथ पाठ में भी क्रम पाठ का और उसके विपरीत क्रम का सङ्गम दिखता है। घन पाठ भी विलक्षण और क्लिष्ट होता है। वहां अनुलोम-विलोम क्रम से पदों की बार-बार आवृति उत्पन्न होती है। ये एकादश पाठ निर्भुज-प्रतृणभेद से दो है- मूल का अविकृत पाठ निर्भुज है। संहितापाठ ही निर्भुजपाठ है- उसको छोडकर अन्य विकृतपाठ प्रतृणा कहलाते है।

वेद के विविधा विभाग आगे दिखाएगे।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 1.5

55. न्यायमत में वेद पौरुषेय है या नहीं?
56. मीमांसामत में वेद पौरुषेय है या अपौरुषेय?
57. वेद की प्रवाहनित्यता कौन मानते हैं?
58. निर्भुजपाठ क्या है?
59. शुक्लयजुर्वेद में शाखा प्रसिद्ध है?
60. वाज नाम किसका है? सनि शब्द का अर्थ क्या है?
61. ऋक्शब्द की क्या व्युत्पत्ति है?
62. किस वेद में दर्शपूर्णमासादियाग के लिए मन्त्र संकलित है?
63. अभिचारादि कर्म में किस प्रकार के मन्त्रों का उपयोग होता है?
64. जैमिनि द्वारा ऋक्लक्षण क्या है?

1.9 अथ संहिता

आपस्तम्भ में वेद का लक्षण कहा है कि **मन्त्रब्राह्मणयोः वेदनामधेयम्।** जहां मन्त्र तथा उनके प्रयोग निर्धारक ब्राह्मण होते हैं वह वेद हैं। उपोद्घातभाष्य में सायणाचार्य ने भी अनुरूप लक्षण कहा है – **'मन्त्रब्राह्मणात्मकशब्दराशिर्वेदः'** इति। मन्त्र और संहिताभाग पर्याय है, सन्निकर्ष रूप धारण करता है या सम्यक् रूप से धारण करते है मन्त्रों को जिसमें ऐसा यहां विग्रह में सम्पूर्वक डुधाञ् धारणपोषणयोः इति धातु से क्त प्रत्यय और स्त्रीलिंग में टाप प्रत्यय होने पर संहिताशब्द निष्पन्न होता है। निष्कर्ष यह है कि मन्त्र जहां होते हैं वह संहिताभाग है।

शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिष्यैर्वेदान्ते शाखिनोऽभवन् इस भागवत वचन से गुरु-शिष्य-प्रशिष्य-परम्परा से वेद की रक्षा से देशकालव्यद्भिभेद से वेदपाठ की विभिन्नता से अनेक शाखा हो गई। किस वेद में कितनी शाखा है इस विषय में महाभाष्यकार पतञ्जलि का वचन सुप्रसिद्ध है –

> **''एकविंशतिधा बाहवृच्यम् सहस्रवर्त्मा सामवेदः।**
> **एकशतमधवर्युशाखाः नवधाथर्वणो मतः।''** इति।

ऋग्वेद की एकविंशति शाखा है, शाखा विषय में विद्वानों में मतभेद होता ही है। वाक्यपदीयकार भर्तृहरि ने तो इसकी पञ्चदश शाखा प्रतिपादित की है। ऋक्संहिता की प्रसिद्ध पंच शाखा

है - शाकल, वाष्कल, आश्वलायन, शांखायन, माण्डूकायन। सामवेद की हजार शाखा थी परन्तु अब केवल तीन शाखा प्राप्त होती है - कौथुमी राणायणीय जैमिनीय।

यजुर्वेद की सौ शाखा थी। कृष्णयजुर्वेद की प्रसिद्ध शाखा है तैत्तिरीय, मैत्रायणी, कठ, कपिष्ठल और शुक्लयजुर्वेद की वाजसनेयी, माध्यन्दिनी, काण्व शाखा प्रसिद्ध है।

अथर्ववेद की नौ शाखा थी। अब दो शाखा प्राप्त होती है शौनक, पिप्पलाद।

1.10 अथ ब्राह्मण

ब्राह्मण शब्द का विविध अर्थ है उनमे ब्राह्मण भी है। "**तस्माद् वेदमधीते तद्वेद वा**' ऐसा विग्रह होने पर "**तदधीते तद्वेद**" इस सूत्र के द्वारा ब्रह्मन् शब्द से अण्प्रत्यय करने प्र ब्राह्मण शब्द की निष्पत्ति हुई। अथवा ब्रह्म ही ब्राह्मण है। शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख मिलता है कि '**ब्रह्म वै ब्राह्मणः**' इति। दयानन्द सरस्वती मत में पुरोहित ही ब्राह्मण है, उनके द्वारा निष्पाद्य यागादि विधि जहां उपदिष्ट है वो ब्राह्मण है। उन्होंने कहा है - "**चतुर्वेदविदि्भर्ब्रह्मभिर्ब्राह्मणैर्महर्षिभिः प्रोक्तानि यानि वेदव्याख्यानानि तानि ब्राह्मणानि**" इति। जैमिनि ने तो 'शेषे ब्राह्मणशब्दः' ऐसा ब्राह्मणलक्षण कहा है। मन्त्रांश को छोडकर वेद का अवशिष्ट भाग ब्राह्मण है। आपस्तम्भ में कहा है 'कर्मचोदना ब्राह्मणानि' इति। यागादि क्रिया विधि जहां वर्णित वह ब्राह्मण है। ब्राह्मणों में वर्णन करने वाले विषय षट् है - विधि, अर्थवाद, निन्दा, प्रशंसा, पुराकल्प, प्राकृति।

ऋग्वेद के ऐतरेय और कौषीतकि या शांख्यायन दो ब्राह्मण है। सामवेद के ब्राह्मणों में प्रसिद्ध है पंञ्चविंश षड्विंश छान्दोग्यं, जैमिनीय तलवकार या सामविधान, आर्षेयः, वंश, देवताध्यायन इति। शुक्लयजुर्वेद का शतपथब्राह्मण, कृष्णयजुर्वेद का तैत्तिरीय ब्राह्मण। अथर्ववेद का गोपथ नामक एक ही ब्राह्मण है।

1.11 अथ आरण्यक

आरण्यक ब्राह्मणों के परिशिष्ट होते हैं। आरण्यकों में अध्यात्म तत्त्व आलोकित हैं। और निष्काम भाव से यागादि कर्म भी वहाँ उपदिष्ट हैं। अरण्य में पढ़े जाने के कारण इसका आरण्यक नाम रखा गया। तथा अरण्य शब्द से वुञ्प्रत्यय करने पर आरण्यक शब्द निष्पन्न होता है।

आरण्यक के विषय में भाष्यकार सायण ने कहा कि-

> '**अरण्याध्ययनादेतदारण्यकमितीर्यते।**
> **अरण्ये तदधयेतेत्येवं वाक्यं प्रवक्ष्यते।**'

ऋग्वेद के दो आरण्यक प्राप्त होते हैं ऐतरेय और सांख्यायन। सामवेद का आरण्यक

छान्दोग्यारण्यक है। शुक्लयजुर्वेद का आरण्यक वृहदारण्यक है। कृष्णयजुर्वेद के तैत्तिरीय और मैत्रायणीय दो आरण्यक हैं, अथर्ववेद का एक भी आरण्यक नहीं है।

1.12 अथ उपनिषद्

आरण्यक का ही सारभूत उपनिषद् हैं। आरण्यक में प्रारम्भ की गई अध्यात्म तत्त्व की आलोचना उपनिषदों में ही परम् स्फूर्ति को प्राप्त होती है तथा समाप्त होती है। वेद के अन्तिम लक्ष्य होने से ये उपनिषद् वेदान्त कहलाते हैं। (वेद का अन्त वेदान्त, अन्त शब्द के यहाँ दो अर्थ हैं सारभाग तथा अन्तिम अंश।) उप+नि+पूर्वक विशारण गत्यवसादनार्थक सद् धातु से णिच् तथा क्विप् प्रत्यय करने पर उपनिषद् शब्द की निष्पत्ति होती है ऐसा शङ्कराचार्य ने कहा। उप् शब्द का सामीप्य तथा सत्व अर्थ है तथा नि शब्द निश्चयार्थक है उससे शीघ्र व निश्चय संसारी जनों को संसार सारमति प्राप्त होती है शिथिल होती है 'परमश्रेय रूप प्रत्यगात्मा को प्राप्त कराता है या ज्ञान कराता है, दु:ख जन्मादि मूल अज्ञान को हटाता है या नाश करता है उपनिषत् के पद ज्ञान द्वारा। उपनिषद्विद्या ब्रह्मविद्या या रहस्यविद्या होती है। ऋग्वेद के उपनिषद ऐतरेय और शांखायन, सामवेद के छान्दोग्य केनोपनिषद्, कृष्ण यजुर्वेद के कठ-श्वेताश्वतर-महानारायण उपनिषद है- शुक्ल यजुर्वेद ईश और वृहदारण्यक, अथर्ववेद के प्रश्न मुण्डक, माण्डुक्य, उपनिषद् प्रधानरूप से उपलब्ध होते है। शङ्कराचार्य ने दश प्रसिद्ध उपनिषदों पर भाष्य लिखा है- जैसे -

'ईशकेनकठप्रश्नमुण्डमाण्डुक्यतैत्तिरिः।
ऐतरेय्च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं तथा॥'

कुछ विद्वान कहते है कि श्वेताश्वतरोपनिषद् भाष्य भी शङ्कराचार्य ने किया। किसी अन्य ने नहीं।

यह वेदज्ञान ब्रह्म ने भारद्वाज के लिए प्रदान किया, भारद्वाज से अंङ्गिरस ने, आङ्गिरस से शौनक ऋषि ने एवं उत्तरोत्तरकाल में बहूत ऋषियों ने यह ज्ञान प्राप्त किया। परन्तु कालक्रम में आयु और बुद्धि के ह्रास से एक व्यक्ति समग्रवेद को गंभीरतया पढ़ने और पढ़ाने में असमर्थ था अत: व्यास महर्षि ने वेदों को चार भागों में विभक्त कर अपने शिष्यों में (ऋग्वेद जैमिनि को, सामवेद वैशम्पायन, यजुर्वेद और अथर्ववेद सुमन्तु को) वेद रक्षण कार्य प्रदान किया। भागवत में कहा भी गया है -

''पराशरात् सत्यावत्यामंशांशकलया विभु:।
अवतीर्णो महाभागो वेदं चक्रे चतुर्विधाम्॥'' इति।

पाठगत प्रश्न 1.6

65. आपस्तम्भ में वेद लक्षण क्या है ?

66. महाभाष्य कार पतंजलि के मत में ऋग्वेद की कितनी शाखाएं हैं ?

67. सामवेद की एक शाखा का नाम क्या है ?

68. माध्यन्दिनी शाखा किस वेद की है ?

69. अथर्ववेद की कितनी शाखायें थीं?

70. आपस्तम्भ में कहा गया ब्राह्मण लक्षण क्या है ?

71. ब्राह्मणों में वर्णित छह विषय कौन से हैं?

72. शतपथ ब्राह्मण किस वेद का है ?

73. अथर्ववेद के ब्राह्मण का नाम क्या है?

74. आरण्यक शब्द किस प्रत्यय से निष्पन्न है ?

75. ऋग्वेद के दो आरण्यकों के नाम क्या है?

76. उपनिषद् शब्द का दूसरा नाम क्या है ?

77. उपनिषद् में सद् धातु किस अर्थ में है ?

78. कठोपनिषद् किस वेद में है?

79. महर्षि वेदव्यास ने सामवेद का उपदेश किसको दिया ?

1.14 ऋग्वेद

''ऋच्यते स्तूयते यया सा भवति ऋक्'' इति ऋच् स्तुतौ से क्विप् प्रत्यय से यह शब्द निष्पन्न हुआ। स्तुतिपरक होने से ऋक् है। पूर्व मीमांसाकार जैमिनि के मत में जहाँ अर्थानुसार पाद व्यवस्था विहित है वह ऋक् होता है। उन्होंने कहा भी है कि – **''तेषामृक् यत्र अर्थवशेन पादव्यवस्था''** ऋक् का स्वरूप तैत्तिरीयोपनिषद् में भी वर्णित हैं – **''यद्वै यज्ञस्य साम्ना यजुषा क्रियते शिथिलं तद् यद् ऋचा तद्दृढमिति''**। ऋक्संहिता के विभाग प्रकार दो प्रकार से विभक्त होते हैं– पहला तो इस प्रकार – मण्डल, अनुवाक, सूद्र, ऋक् इति। दूसरा-अष्टक, अध्याय, वर्ग, मन्त्र। पहला प्रकार से ऋक्संहिता में दस (10) मण्डल, पिच्चासी (85) अनुवाका, एक हजार सत्रह (1017) सूक्त, दस हजार एक सौ छ (10600) ऋचाएं है– ऋग्वेद की शाकल बाष्कल शाखा के मध्य शाकल शाखा में बालखिल्यर्षि दृष्ट ग्यारह बालखिल्य सूक्त नहीं गिने गये है, उनको छोड़कर ऋक्संहिता में एक हजार सत्रह (1017) सूक्त है– दूसरा विभागप्रकार से ऋक्संहिता में आठ (8) अष्टक, चौंसठ (64) अध्याय, दो हजार छः (2006) वर्ग है। सम्पूर्ण ऋक्संहिता में चार लाख बत्तिस हजार (432000) अक्षर हैं।

टिप्पणी

1.15 अथ सामवेद

स्यति श्रवणमात्रेण पापानि नाशयति इति, स्यति यहां गानसुधा सेचन द्वारा यज्ञानुष्ठान कर्ता के कर्मानुष्ठान से उत्पन्न पाप नष्ट होते है। विग्रह अर्थ में **''षोऽन्तकर्मणि''** इस धातु से कर्ता अर्थ में मणिन् प्रत्यय से सामशब्द की निष्पत्ति होती है। कुछ तो **''सामसान्त्वप्रयोगे''** इति चुरादिगणीय धातु से भी सामशब्दोत्पत्ति मानते हैं। **उनके मत में सामयति गूढतत्त्वं गीतद्वारा वेदप्रतिपत्तारं बोधायित्वा तं सान्त्वयति इति साम।** ऋचाओं में गीतोचित स्वरों के होने से साम उत्पन्न होता है बृहदारण्यक में कहा गया है। **सा (ऋक्) च अमः (गीतोचितस्वरः) च तत्साम्नः सामत्वम्** जैमिनि द्वारा ऋग्वेद के मन्त्रों में जो ऋचाएं गीत रूप में उपस्थापन योग्य है वो सामवेद द्वारा कही गई है ऐसा वर्णन प्रतिपादित किया गया है। अतः उसका निष्कर्ष भूत लक्षण होता है **'गीतिषु सामाख्या'** इति। सायणाचार्य के द्वारा भी सामवेद भाष्य भूमिका में कहा गया है – **'गीयमानस्य साम्नः आश्रयभूता ऋचः सामवेदे समाम्नायन्ते'** इति। सामवेद संहिता में अठारह सौ दस (1810) मन्त्र विद्यमान है। इनमें 85 तो केवल अपने बचे हुए ऋग्वेद से लिए गये है। कौथुमी शाखा के मत में सामवेद संहिता पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक भेद से दो प्रकार है। यहाँ प्रथम पूर्वार्चिक प्रपाठकों द्वारा प्रपाठक दशती में विभक्त है। प्रत्येक दशती में दश मन्त्र है – इसप्रकार सम्पूर्ण सामसंहिता में पूर्वार्चिक में पांच सौ पच्चासी (585) मन्त्र है। इसी प्रकार उत्तरार्चिक में चार सौ (400) स्तोत्र है। और प्रत्येक स्तोत्र में तीन या चार ऋचाएं है। यह सामगान चार प्रकार से विभक्त है –ग्रामगेय, अरण्यगेय, ऊहगान, और ऊह्यगान।

1.16 अथ यजुर्वेद

यज्यतेऽस्मिन् इति इस विग्रह पूर्वक यज् देव पूजा सङ्गति करण दानेषु इस धातू से उसि-प्रत्यय करने पर यजु शब्द निष्पन्न होता है। यजुर्वेद के मन्त्र देवों की आहुतिपरक हैं, जिन मन्त्रों में अक्षरों की संख्या नियत रूप से विद्यमान न हो वे यजुर्मन्त्र कहलाते हैं। कहा भी गया है- **''अनियताक्षरावसानो यजुः''** **''गद्यात्मको यजुः''**। जैमिनि ने तो ऋग्वेद के मन्त्रों और सामवेद के मन्त्रों को छोड़कर अवशिष्ट वेदमन्त्र यजु हैं ऐसा प्रतिपादित किया। तथा उसका लक्षण इसप्रकार किया- **''शेषे यजुश्शब्दः''**। यज्ञ के साथ सम्बद्ध यजुर्मन्त्रों का यजुर्त्व वायुपुराण में वर्णित है-

''यच्छिष्टञ्च यजुर्वेदे, तेन यज्ञमयुञ्त।
यजनाद्धि यजुर्वेद, इति शास्त्रस्य निर्णयः॥''

यजुर्वेद के दो भेद शुक्ल और कृष्ण यजुर्वेद हैं। सूर्य से प्राप्त होने तथा सात्विक होने के कारण एवं मन्त्र और ब्राह्मण के पृथक् प्रयोग होने से शुक्लत्व। उद्गीर्य के तामसिकत्व के कारण तथा मन्त्र एवं ब्राह्मण के मिश्रित होने से कृष्णत्व। शुक्लयजुर्वेद के माध्यन्दिनशाखा

में चालीस अध्याय (40) एक सौ तीन अनुवाक (303) तथा उन्नीस सौ पचहत्तर (1975) कण्डिका हैं। काण्व शाखा में तो चालीस अध्याय (40) तीन सौ अट्ठाईस (328) अनुवाक और दो हजार तीन (2003) मन्त्र हैं। कृष्णयजुर्वेद के अन्तर्गततैत्तिरीय शाखा में सात (7) काण्ड, चवालीस (44) प्रपाठक (प्रश्न) छह सौ इक्यावन (651) अनुवाक हैं।

1.17 अथ अथर्ववेद

''आनन्तर्ये परब्रह्म गमयति प्रापयतीति वा'' विग्रह में अथ पूर्वक ''ऋ गतिप्रापणयोः'' धातु से वनिप्रत्यय करने पर अथर्व शब्द की उत्पत्ति होती है। जल्दी ही परब्रह्म की प्राप्ति जिससे होती है वह अथर्व होता है।

अथर्ववेद में बीस (20) कण्डिका, अड़तीस (38) प्रपाठक, नब्बे (90) अनुवाक्, सात सौ इक्कत्तिस (731) सूक्त तथा प्रायः छह हजार मन्त्र अथर्वेद में हैं।

पाठगत प्रश्न 1.7

80. ऋक्-शब्द का निर्वचन क्या है?
81. ऋक्संहिता के विभाग के दो प्रकार कौन से हैं?
82. समग्र ऋक्संहिता में कितने अक्षर हैं?
83. साम शब्द किस धातु से निष्पन्न होता है?
84. सामवेद का लक्षण सायणाचार्य के द्वारा क्या किया गया?
85. सामवेद में स्वयं के कितने मन्त्र हैं?
86. सामगान कितने प्रकार से विभक्त है, और उनका नाम बताओ?
87. देवों के आहुति परक मन्त्र कौन से हैं?
88. यजुर्वेद के दो भेद कौन से हैं?
89. अथर्व शब्द किस धातु से निष्पन्न होता है?
90. अथर्व वेद में कितनी कण्डिका हैं?

1.18 वैदिक स्वर

सभी अक्षर स्वर और व्यञ्जन भेद से दो प्रकार से विभक्त हैं। स्वयं राजन्ते इति स्वराः।

टिप्पणी

अर्थात् इनके उच्चारण में अन्य वर्ण की सहायता अनावश्यक है। इन स्वरों के उदात्त अनुदात्त स्वरित भेद से तीन धर्म हैं। जिस स्वर का उदात धर्म होता है वह स्वर उदात्त स्वर कहलाता है। जिस स्वर का अनुदात्त धर्म होता है वह स्वर अनुदात्त स्वर कहलाता है। जिस स्वर का स्वरित धर्म है वह स्वर स्वरित स्वर होता है। यह सारा स्वर प्रपञ्च शिक्षा ग्रन्थ में विस्तरशः वर्णित है। पाणिनीय तन्त्र में स्वर का दूसरा नाम अच् है।

उदात्त और अनुदात्त ये दो वर्ण धर्म जिस स्वर में समाहित होते हैं वह स्वर स्वरित संज्ञक है। जिस स्वर में उदात्त अनुदात्त ये दो वर्ण धर्म मिला होता है वह स्वर संज्ञी है। स्वरित उसकी संज्ञा है। स्वर का ज्ञान स्वर के उच्चारण स्थानों से जानना चाहिए।

वर्णों के उच्चारण का स्थान

वर्णों के उच्चारण के लिए मुख के विविध स्थान उपयोग में आते हैं। वे स्थान आठ है। यहाँ पाँच स्थान ही बताए गये हैं।

गले में या ग्रीवा भाग के सम्मुख में उन्नत भाग होता है। वह ठोड़ी के निचले भाग में होती है। उसका नाम काकलक है। उसी को लोक में कण्ठमणि कहते है। काकलक से प्रारम्भ होकर होठ तक पञ्च स्थान उच्चारण के लिए ग्रहण किये जाते है। वे इस प्रकार है - (1) कण्ठ (2) मूर्धा (3) तालु (4) दन्त (5) औष्ठ इति।

अवर्ण के उच्चारण के लिए श्वास नलिका का आकुञ्चन किया जाता है। नलिका का जो अंश आकुञ्चित होता है उसका नाम कण्ठ है। मुख विवर के उपरि भाग में गोलाकार उन्नततम स्थान मूर्धा होता है। वहां से लेकर दन्त पर्यन्त विस्तीर्ण भाग का जो मध्य बिन्दु है वह तालु कहलाता है। दन्त दस प्रसिद्ध है। और दो होठ।

उदात्त कौन होता है -

कण्ठ भाग जिनके उच्चारण के लिए उपयोगी होता है उसके दो भाग करने चाहिए। ऊर्ध्व भाग और अधो भाग। पाणिनी सूत्र हैं - उच्चौरुदात्तः।

यहाँ उच्चै इस शब्द का अर्थ - ऊर्ध्व भाग में। उच्चै का अर्थ यहाँ उच्च या तीव्र ध्वनि नहीं है। कण्ठ के ऊर्ध्व भाग से प्रयास करने से जो स्वर उत्पन्न होता है वह उदात्त कहलाता है।

यथा कण्ठ के भाग मानते हैं जैसे ऊर्ध्व भाग और अधो भाग। वैसे तालु के, मूर्धा के, दन्त के, ओष्ठ के भी भाग मानने चाहिए।

अनुदात्त कौन होता है -

अनुदात्त संज्ञा विधायक पाणिनीय सूत्र होता है - नीचैरनुदात्तः। सूत्र में स्थित नीचै शब्द का अर्थ होता है - अधोभाग। नीचै अर्थ यहाँ निम्न या धीमी ध्वनि नहीं है। कण्ठ के अधोभाग में प्रयास या बल से जो स्वर उत्पन्न होता है वह अनुदात्त कहलाता है।

स्वरित कौन होता है -

समाहारः स्वरितः- ये पाणिनी सूत्र है। उदात्त स्वर का धर्म उदात्त है। अनुदात्त स्वर का धर्म अनुदात्त है। जिस स्वर में उदात और अनुदात्त दोनों होते है वह स्वर स्वरित स्वर कहलाता है। अतः स्वरित के उच्चारण में कण्ठादी ऊर्ध्वभाग और अधोभाग का भी ग्रहण होता है।

स्वरिते उदात्तत्वस्य अनुदात्तत्वस्य च विभागः -

स्वरित के किस भाग मे व उदात्त और किस भाग में अनुदात्त है ये जानना जरुरी है। स्वरित स्वर में पूर्वार्ध भाग उदात्त होता है। उत्तरार्ध भाग अनुदात्त होता है। स्वरित स्वर से परे यदि अन्य कोई उदात्त या स्वरित स्वर हो तो इसके अनुदात्त भाग का उच्चारण अनुदात्त ही होता है। यदि इस स्वरित स्वर से पर में अनुदात्त स्वर हो तो स्वरित का जो अनुदात्त भाग उसका उदात्त के समान उच्चारण होता है। अर्थात् उदात्त से भी ऊर्ध्व भाग से निष्पन्न होगा।

स्वरित से परे उदात्त या स्वरित स्थिति हो तो अनुदात्त भाग का अनुदात्त ही उच्चारण होता है।

स्वरित से परे अनुदात्त या प्रचय स्थिति होने पर अनुदात्त भाग का उदात्त से ज्यादा उच्चारण होता है।

प्रचयः एकश्रुतिः

स्वरित स्वर के बाद अनुदात्त स्वर तथा उसके बाद उदात्त हो ऐसी जब स्थिति होती है तब उदात्त से पूर्व विद्यमान अनुदात्त एक अधोरेखा से चिह्नित होता है। उससे पूर्व् विद्यमान अनुदात्त स्वर चिह्न रहित होता है। उन्ही चिह्नहीन अनुदात्त स्वरों का नाम प्रचय या एक श्रुति है उदाहरण -अग्निमीळे पुरोहितंम् (ऋ.1.1.1)। उपं त्वाग्ने दिवेदिंवे (ऋ. 1.1.7)। अप्रंयुतामेवयावो मतिं दाः। (ऋ.7.100.2)

अग्निमीळे पुरोहिंतम् ये ऋग्वेद के अग्निसूक्त का प्रथम शब्दत्रय है। इस अग्निमीळे यहाँ अकार अनुदात्त है। इकार उदात्त है। ईकार स्वरित है। एकार प्रचय है। इसीलिए ही ईकार का जो उत्तरार्ध भाग उसका उदात्त उच्चारण होता है। व्यञ्जन के उदात्त नहीं होते है।

उप त्वाग्ने दिवेदिंवे (ऋ.1.1.7) यहाँ उप का उकार उदात्त, पकार से परे अकार स्वरित होता है। दिवे यहाँ दकार से पर वाला इकार अनुदात्त है। 'त्वाग्ने' यहाँ सभी स्वर प्रचय है।

अप्रंयुतामेवयावो मतिं दाः। (ऋ.7.100.2) यहाँ अप्रं इसमें प्रथम अकार उदात्त है, द्वितीय अकार स्वरित है। मतिं यहाँ मकार से परवर्ती अकार अनुदात्त है। 'युतामेवयावो' यहां सभी स्वर प्रचय है।

टिप्पणी

पाणिनीय शास्त्रोक्त दिशा में कहे गये उदात्त-अनुदात्त-स्वरित- तीनों स्वरों का त्रिविध उच्चारण होता है। स्वर ज्ञान का विशेष स्थान है क्योंकि स्वर ज्ञान के विना मन्त्रोच्चारण काल में स्वर भेद होता है जिससे मंत्र का अर्थ भिन्न होता है। इस विषय में इन्द्रशत्रुः इति पद का उदाहरण दिया जाता है। इसीलिए कहा गया है पाणिनीयशिक्षा में –

> **''मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थम् आह।**
> **स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥''**

इन्द्रशत्रुः इस शब्द में यदि इन्द्र का पूर्वपद आद्युदात्त है तो इस पद में बहुव्रीहि समास होता है। तब इस पद का अर्थ होता है – **इन्द्रः शत्रुः यस्य** इति। तब इसका अर्थ इसप्रकार होता है की **वृत्रः वर्धताम् यस्य शत्रुः इन्द्रः अस्ति** इति। अर्थात् जिसको मारने वाला इन्द्र है। शत्रु शब्द का अर्थ होता है – हनन कर्ता, और विनाशक। यदि पूर्वपद अन्तोदात्त होता है तो इस पद में तत्पुरुष समास का ज्ञान होता है। और फिर इसका विग्रह होगा **इन्द्रस्य शत्रुः** इति। उससे इस पद का अर्थ होता है इन्द्रस्य विनाशकः अर्थात इंद्र का विनाशक। इससे यह ज्ञान होता है की बिना स्वर ज्ञान के उच्चारित पद किस प्रकार भिन्न अर्थ प्रतिपादित करता है। उदात्तस्वर के उच्चारणार्थ कण्ठताल्वादि स्थानों की उत्कृष्टता होनी चाहिए। अनुदात्स्वर के उच्चारणार्थ अपकृष्टता चाहिए। स्वरितस्वर के उच्चारणार्थ उत्कृष्टता और अपकृष्टता सम्मेलन अपेक्षित है। इसका प्रमाण है उच्चैरुदात्तः, नीचैरनुदात्तः, समाहारः स्वरितः ये पाणिनीय सूत्र हैं। ऋग्वेद के प्रातिशाख्य ग्रन्थ में इन तीनों स्वरों का क्रम से आयाम, विश्रम्भ, आक्षेप, ये नामकरण विहित है।

1.18.1 स्वरांकन पद्धत्ति

संहिता में वाक्य को आश्रित करके स्वराङ्कन होता है। किन्तु इन सभी के साथ प्रत्येक पदों का भी पृथक् स्वर सिद्ध होता है। क्योंकि **अनुदात्तं पदमेकं वर्जम्** इति पाणिनीय सूत्रानुसार एक ही पद में उदात्त स्वर दो नहीं हो सकते है। ऋग्वेद-शुक्लयजुर्वेद-तैत्तिरीयसंहिता-अथर्ववेद- तैत्तिरीय-ब्राह्मणानुसार उदात्ताक्षर से परे कोई भी चिह्न नहीं होता है, अनुदात्त स्वर को बताने के लिए अक्षर के अधौभाग में चिह्न होता है, अ॒ इति उदाहरण। स्वरिताक्षर के ऊपर चिह्न होता है। अं इति उदाहरण।

मैत्रायणीसंहिता में और कुछ काठकसंहिता में उदात्ताक्षर के उपरिभाग में दण्डरेखा दी जाती है जैसे– उदाहरण प्रं तद्विष्णुः (मै.सं.1.29) चित्तिः स्रुक् (क्र.सं 9.8)। अथर्ववेद के पैप्पलाद संहिता में तो उदात्ताक्षर के नीचे चिह्न होता है। स्वरित स्वर के नीचे बिन्दु होता है। जैसे उदाहरण है- देवाष्नाम् (अथर्व. पै. 2.30.1) यहां न के बाद अकार के उदात्त बोध के लिए बिन्दु दिया गया है। सामवेद में उदात्त-अनुदात्त-स्वरित-स्वरों के लिए तो अक्षरों के ऊ अ^{1} अ^{2} अ^{3} ये चिह्व दिए जाते है।

शतपथ ब्राह्मण में केवल उदात्ताक्षर के नीचे रेखा है। यदि एक ही पद में अनेक उदात्त

स्वर होते है, तब अन्तिम के ही उदात्तस्वर अंकित होता है। सत्यमाज्यम् यहां सत्यम् के य के बाद वाले अकार, और आज्यम् यहां आकार दोनों भी उदात्त होते है।

पाठ का सार

वैदिक वाङ्मय के परिचय के लिए यह प्रथम पाठ है। यहां कुछ मुख्य प्रारम्भिक विषयों का वर्णन किया गया है। उनमें पहले वेद का वैशिष्ट्य और महिमा बताई गई है। उसके बाद वैदिक वाङ्मय की विभूति प्रदर्शित की गई है। वेदशब्द के अर्थों का विविध प्रकार से उपन्यास किया गया है। वेदशब्द के अनेक पर्याय है जिसका शास्त्रों में बाहुलता से प्रयोग मिलता है वे पर्याय भी वहां उल्लिखित है। वेद अपौरुषेय है। अपौरुषेय पद से क्या जानना चाहिए ये विचार भी यहां पाठ में है। वेद के विविध लक्षण हैं। विविध आचार्यकृत लक्षण भी यहां प्रस्तुत है।

वेदशब्द की पाँच धातुओं से निष्पत्ति होती है। ऋग्वेद सर्वप्राचीन है। संहिता-आरण्यक-ब्राह्मण-उपनिषद् भेद से प्रत्येक वेद चार प्रकार से विभक्त है। ऋग्वेद के विभाग प्रकार के भेद से मन्त्रादि संख्या दी गई है। बालखिल्यान सूक्तों का वर्णन भी मिलता है। शाखा भेद पाठ भेद में ऋगादि वेदों की मन्त्रादि संख्या दी गई है। यजुर्वेद के दो भेद प्राप्त होते है। सामवेद के अधिकतर मन्त्र ऋग्वेद से ही गृहीत है। अथर्ववेद बहुत से वेदों में संयोजित होकर बना है एसा अनेक विद्वान मानते है।

वैदिक मन्त्रों में स्वर ज्ञान अनिवार्य है। अत: वैदिक स्वर कौन से है, उनका लक्षण क्या है, उनके प्रकार कौन से हैं, और भी स्वर की अर्थ निर्णय में और पुण्यार्जन में क्या विशिष्टता है। ये विषय भी यहा पाठ में समाविष्ट है।

पाठान्त प्रश्न

91. वेद के आधार पर टिप्पणी लिखो।
92. वेद लक्षण संक्षेप में लिखो।
93. वेद पौरुषेय है या अपौरुषेय सामान्यरूप से बताओ।
94. वेद के विभूति विषय में लिखो।
95. वेदशब्द के अर्थ को स्पष्ट करो।
96. वेद का महत्त्व का प्रतिपादन करो।
97. दार्शनिक मत प्रतिष्ठापन से वेद के रचनाकाल विषय में लिखो।
98. वेद का लक्षण लिखो।

99. वेदशब्द के लक्षण के आधार पर व्युत्पत्ति का प्रतिपादन करो।

100. संहिता का प्रतिपादन करो।

101. ऋग्वेद वर्णन करो।

102. यजुर्वेद वर्णन करो।

103. वेद में कितने स्वर है और वे कौन से हैं।

104. वैदिक स्वर का सविस्तार परिचय दो।

105. प्रचय स्वर कैसे होता है?

106. स्वरित स्वर के उत्तरभाग का कब और किस प्रकार उच्चारण होता है ?

107. स्वर का प्रयोजन कैसे है ?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

वेदों का वैशिष्ट और महत्त्व

108. यदि द्विज वेद को बिना पढ़े अन्य कर्म करता है तो वह शूद्र माना गया है।

109. वैदिक जन ही ब्रह्म को जानने में समर्थ होते है।

110. **'योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्॥**
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वय:॥' इति

111. **'वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र कुत्राश्रमे वसन्।**
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते॥' इति

112. ऋषियों के द्वारा।

113. मन्त्रद्रष्टा।

114. ऋष्यति पश्यति इति ऋषि:।

115. इनि प्रत्यय से।

116. 'तद्येनास्तपस्यमानन् ब्रह्मस्वयम्भ्वभ्यानर्षत्' इति पङ्ति।

117. मन्त्र रुप भाग और ब्राह्मण रूप भाग।

118. संहिता।

119. संहिता भाग का व्याख्या रुप।

120. तीन प्रकार से विभक्त, ब्राह्मण, आरण्यक, और उपनिषद् विभाग।

121. यज्ञस्वरूपप्रतिपादक।

122. अरण्य में पढ़े गये यज्ञ के आध्यात्मिक रूप का विवेचन करने वाले भाग।

123. ब्रह्मस्वरूप के बोधक और मोक्ष साधन उपनिषद्।

124. ब्राह्मण भाग गृहस्थों के लिए उपयोगी, आरण्यक भाग वानप्रस्थ आश्रितों के लिए उपयोगी, उपनिषद् संन्यस्त या सन्यासियों के लिए उपयोगी।

वैदिक वाङ्मय

125. षड् वेदाङ्ग-ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषदादि का बोध होता है।

126. वाङ्मयम् इस अर्थ में।

127. **'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधोयम्'**। इति।

128. जिन से यागों का अनुष्ठान निष्पन्न होता है और, देवता की स्तुति विधान जहाँ उल्लिखित है, मननात् मन्त्र कहा गया है।

129. यज्ञ का विविध क्रियाकलाप प्रतिपादिकग्रन्थ 'ब्राह्मणम्' संज्ञा के नाम से जाने जाते है।

130. वेद स्वरूपभेद से त्रिविध है - ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद।

131. जहां अर्थ के कारण पादव्यवस्था होती है उन छन्दोबद्ध मन्त्रों का नाम 'ऋक्' है। ऋचाओं का समूह ही 'ऋग्वेद' है।

132. जिस वेद में यज्ञ यागादि क्रिया कलापों के अनुरोध से मन्त्र का सन्निवेश है वह 'यजुर्वेद' है।

133. जहां गीतिरूप मन्त्र होते है वह उपासनाकाण्डपरक वेद 'सामवेद' है।

134. मन्त्र त्रिविध है अत एव वेदो को 'त्रयी' नाम से जानते है।

135. वेदव्यास ने इनकी रचना की।

136. तीन संहिता।

137. यह वैदिक वाङ्मय महान मौलिक और पुरातन है। अत: यहां हमारा अभिनिवेश होता है।

वैदिक वाङ्मय की विभूति

138. धर्म और दर्शन दोनों के विकास और ज्ञान के लिए वैदिकवाङ्मय का अध्ययन अपरिहार्य होता है।

टिप्पणी

139. दो काल में विभक्त।

140. हिन्दी-पंजाबी-बंगला-उडिया-गुजराती-मराठी-राजस्थानी-आसामी अनेक उत्तरभारतीयभाषा, दक्षिणभारत में भी तामिल-तेलगु-मलयालम-कन्नडादि आधुनिक् भाषा भी वैदिकवाङ्मय से अत्यधिक प्रभावित है।

141. अध्यात्म विषय वाली सनातनी जिज्ञासा वैदिकवाङ्मय में आलोचित हुई है।

वेदार्थ और पर्याय शब्द

142. 'विद्यन्ते धार्मादयः पुरुषार्थाः यैस्ते वेदाः' इति।

143. इष्टयप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो वेदयति स वेदः इति।

144. वेद पौरुषेय और नित्य है।

145. सांख्य-वेदान्त-मीमांसा।

146. वेत्ति, विचारणा, सत्ता, लाभश्च।

147. जानते है।

148. वेदोऽखिलधार्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।

149. 'अपौरुषेयवाक्यं वेद' इति।

150. इष्टप्राप्तेः अनिष्टपरिहारस्य च अलौकिकम् उपायं यो वेदयति सः 'वेदः' इति।

151. आम्नाय, आगम, श्रुति, वेद, छन्द ये सभी शब्द वेद शब्द के पर्याय है।

152. विद्-धातु।

153. सत्तार्थक-विद् धातु घञ्प्रत्यय से निष्पन्न वेदशब्द।

154. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुददी में चुरादिप्रकरण में चार अर्थो में विद्-धातु का प्रयोग है। वे चार अर्थ है - सत्ता, ज्ञान, विचारण, प्राप्ति।

155. 'विदन्त्येभिः धर्मब्रङ्मणी क्रियाज्ञानमयं ब्रह्म वा इति वेदः।'

156. 'विन्ते विचारयति धर्मब्रह्मणी क्रियाज्ञानमयं ब्रह्म वेति वेद' इति।

157. वेदमर्मज्ञ भारतीय मेधावी मानते है।

158. मन्त्रद्रष्टा इति।

159. ऋषिशब्द 'इगुपधात् कित्' इस औणादिक सूत्र से इनिप्रत्यय से निष्पन्न है।

160. न्यायवैशेषिक के मत में वेद पौरुषेय और नित्य है।

161. मनु वेदों को नित्य और अपौरुषेय मानते।

वेद का पौरुषेयत्व अपौरुषेयत्व विचार और , लक्षण

162. पौरुषेय।
163. अपौरुषेय।
164. वेदान्ति और सांख्य।
165. संहितापाठ।
166. जाबालि-काण्व-माध्यन्दिनादिशाखा शुक्लयजुर्वेद की प्रसिद्ध है।
167. वाजि नाम सूर्य की रश्मि का है, सनिशब्द धनवाची है।
168. गुणगान या स्तुति जिससे की जाए उसे ऋचा कहते है।
169. शुक्लयजुर्वेद में दर्शपूर्णमासादियाग के लिए मन्त्र संकलित है।
170. अभिचारादिकर्म में अथर्ववेदीय मन्त्रों का उपयोग होता है।
171. तेषामृक् यत्र अर्थवशेन पादव्यवस्थाश इति।

संहितादि

172. मन्त्रब्राह्मणयोः वेदनामधोयम् इति।
173. ऋग्वेद की छः शाखा है।
174. कौथुमीयशाखा।
175. शुक्लयजुर्वेद।
176. अथर्ववेद की नौ शाखा है।
177. कर्म में प्रेरित करने से ब्राह्मण कहलाते है।
178. विधि, अर्थवाद, निन्दा, प्रशंसा, पुराकल्प, पराकृति।
179. शुक्लयजुर्वेद में।
180. गोपथब्राह्मण।
181. वुङ्प्रत्यय से।
182. ऋग्वेद के दो आरण्यक है ऐतरेय और सांख्यायन।
183. वेदान्त है।
184. विशारणगत्यवसादनार्थ के।

185. कृष्णयजुर्वेद में।

186. वैशम्पायन ऋषि के लिए।

ऋगादि वेद

187. ऋच्यते स्तूयते यया सा भवति ऋक् इति

188. प्रथम रूप से - मण्डल, अनुवाक, सूक्त, ऋक्। द्वितीय रूप से - अष्टक, अध्याय, वर्ग, मन्त्र।

189. चार लाख बत्तिस हजार (432000) अक्षर है।

190. षोऽन्तकर्मणि धातु से निष्पन्न।

191. "गीतिषु सामाख्या" इति।

192. पचहत्तर (75) मन्त्र है।

193. सामगान चार प्रकार से विभाजित है -ग्रामगेय, अरण्यगेय, ऊहगान, ऊह्यगान।

194. यजुर्वेद में मन्त्र है।

195. शुक्ल और कृष्ण।

196. ऋ-धातु से।

197. बीस (20)।

प्रथम अध्याय समाप्त

2

वेदों का काल, पाठ प्रकार और मन्त्रों में ऋषि, छन्द और देवता विनियोग

प्रस्तावना

वेदों का महत्त्व और गौरव के विषय में वैदिक विद्वानों में यद्यपि मत समान है फिर भी, उनमें वेद के आविर्भाव काल के विषय को लेकर गम्भीर मतभेद है। वेद के आविर्भाव काल के विषय में यहां संक्षेप में आलोचना विहित है। उसके बाद वेदों के प्रक्षिप्तत्व निवारण के लिए पाठ प्रकार ऋषियों के द्वारा आविष्कृत किये गये हैं, उनके प्रकार भी बताए गये हैं। और अन्त में मन्त्रों के निरर्थकत्व आपत्तिवारण के लिए अवश्य ज्ञातव्य विषय है, ऋषि, छन्द, देवता, विनियोग। वे भी यहां बताए गये है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप सक्षम होंगे-

- वेद के आविर्भावकाल के विषय में अनेक आचार्यमतों के विषय में जान पाने में;
- वेदपाठ के प्रकारों को तथा उनके वैचित्र पूर्ण महिमा को जान पाने में;
- वेदों के 'ऋषिच्छन्दोदेवताविनियोग' के विषय में विस्तर से जान पाने में;
- इन वेद का समाज में एक विशिष्ट महत्त्व है जिसको जान पाने में;
- स्वय ही वेदों के काल विषय में लघुप्रबन्ध लिख पाने में।

2.1 वेदों का आविर्भावकाल

भारतीय सभ्यता का प्राचीन रूप जानने के लिए वैदिकग्रन्थों की उपयोगिता नितान्त मानी

गई है। इस सिद्धान्त के स्वीकरण में किसी विद्वान को आपत्ति नहीं है। और भी, इस वैदिक सभ्यता की ज्योति ने कभी सम्पूर्ण भारतवर्ष की पवित्र भूमि को आलोकित किया। किसी काल में ऋषियों के चित्त में आध्यात्मिक ज्ञान के दिव्य सन्देश देने की यह इच्छा जागृत हुई। कभी उनके आलोक सामान्य से गूढार्थ युक्त मन्त्र विरचित हुए। इनके प्रश्न का समुचित उत्तर आज भी कोई देने में समर्थ नहीं है, और न ही भविष्यत्काल में भी कोई देने में समर्थ होगा।

भारतीयपरम्परा में जो विद्वान श्रद्धा रखते है उनके समक्ष में तो वेद के कालनिर्णय के विषय में प्रश्न ही नही उठता है। उनकी दृष्टी में तो वेद अनादि है। वे नित्य और अपरिच्छिन्न है। परन्तु पाश्चात्यानां वेदज्ञ पण्डित और कुछ उनके अनुगामी भारतीयों की दृष्टि में वेद का आविर्भावकाल सम्बन्धी प्रश्न समाधान करने योग्य है। प्राचीन भारतीय विद्वान् वेदों को अपौरुषेय मानते है, उनके मत में तो वेद का रचनाकाल का विचार निरर्थक है। अब कुछ पाश्चात्य विद्वान यथा बुद्धि वैभव से वेद रचना काल का निर्धारण करते है। पाश्चात्य विचारकों की जो परम्परा को जानने वाले जो भारतीय विद्वान हैं उन्होंने खोज भी की है उन्ही के मार्ग से वेदकाल का निर्णय करने का प्रयास करते है। यहां उस विषय से सम्बन्धित कुछ विचार प्रस्तुत है।

पाठगत प्रश्न

198. किनके मत में वेद अनादि है?

199. प्राचीनभारतीय विद्वान् वेदों को क्या मानते है?

200. इस समय कौन वेद रचना काल का निर्धारण कर रहे है?

2.1.1 डॉ. मैक्समूलर का मत

सर्वप्रथम डॉ. मैक्समूलर महोदय ने 1859 ईस्वी में अपने प्राचीन संस्कृत साहित्य का इतिहास ग्रन्थ में वेदों का काल निर्णय के लिए प्रशसनीय प्रयास किया। उनके मत में वेदों में प्राचीन तम ऋग्वेद की रचना 1200 ई.पू. काल में सम्पन्न हुई। उनके मत में ऋग्वेद की रचना 1150 ई.पू. के आस पास ही हुई। मानव कल्याणार्थ इस देश में अभिनव बौद्धधर्म का उदय हुआ ये समस्त वैदिक वाङ्मय का अस्तित्व स्वीकार करता है। क्या इस बौद्ध धर्म के उदय से पहले ही ब्राह्मण ग्रन्थ विरचित हुए ? बुद्ध ने ब्राह्मण ग्रन्थ में विवेचित विधि की कटु आलोचना करते थे। अतः बुद्ध से पहले (500 ई.पू.) ही ब्राह्मणोपनिषद् भाग उत्पन्न हो चुके थे। वैदिक साहित्य में चार युग हैं - छन्द युग, मन्त्र युग, ब्राह्मण युग, सूत्र युग। प्रत्येक युग के विकास में दो सौ वर्ष का काल माना गया है, तदनुसार बुद्ध से 600 वर्ष से पूर्व छन्द युग की सत्ता मिलती है। अतः ऋग्वेद

की रचना 1150 ई.पू. समय की बाद नहीं हुई। इस प्रकार अब ऋग्वेद के 3200 वर्ष हुए ऐसा कहा जा सकता है। डॉ. मैक्समूलर महोदय दो ऋग्वेद के उदय विषय में कुछ बिन्दुओं के आधार पर इस बात को कहा। वे स्वयं के द्वारा कहे गये वेदों के उत्पत्तिकाल निर्णय से सहमत नही थे। क्यों कि वे एकबार अपने भाषण में स्वयं ही कहते है कि इस भूतल पर कोई शक्ति ऐसी नहीं है जो वैदिक मन्त्र रचना के काल को सही-सही बता सके। उन्होंने यह विचार 1889 ई.सदी में भौतिक धर्माख्यान जिफोर्ड व्याख्यान माला के प्रकट किया। और उसके बाद के उनके अनुयायी पाश्चात्य विद्वान इस तर्क के आधार पर इनके काल का निर्णय करने में प्रवृत हुए।

पाठगत प्रश्न

201. वेदों में प्राचीनतम ग्रन्थ कौन है ?

202. ऋग्वेद की रचना कब सम्पन्न हुई ?

203. वैदिक साहित्य में कितने युग है और वे कौनसे है ?

204. वर्तमान में उपलब्ध ऋग्वेद के कितने वर्ष हो गये ?

2.1.2 ज्यौतिष आधारित मत

वैदिक संहिताओ में ब्राह्मणों में निर्दिष्ट ज्यौतिष सम्बन्धित सूचना है। उन सूचनाओं को ध्यान में रख कर लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक और डा. याकोबी जर्मनी विद्वान् वेदों को उत्पन्न हुए 2400 वर्ष मानते है।

भारत में षड् ऋतुए होती है। ये ऋतुएँ सूर्य की गति और स्थिति पर आधारित है। ये भी प्रसिद्ध है कि प्राचीन काल की अपेक्षा आज ये ऋतुएँ पीछे जा रही हैं। अर्थात् पूर्व में जहाँ नक्षत्र में जिस ऋतु का उदय होता था अब वह ऋतु उससे पहले वाले नक्षत्र में उदित होती है। प्राचीनकाल में वसन्त वर्षा के पहले तक होती थी। अत एव उसकी सुविशालता भगवद् विभूतिभाव ने गीता में कहा है कि – ''ऋतूनां कुसुमाकर:'' इति। परन्तु अब वसन्त का आरम्भ मीन सङ्क्रान्ति काल से आरम्भ होती है। मीन सङ्क्रान्ति पूर्वभाद्रपद नक्षत्र के चतुर्थ चरण में होती है। ऐसी ये स्थिति नक्षत्रों के क्रमश: पश्चाद् गमन से उत्पन्न हुई है। पहले कभी वसन्त काल का आरम्भ उत्तरभाद्रपद-रेवती-अश्विनी-भरणी-कृत्तिका- मृगशिरा अनेक नक्षत्रों में थी। उससे पीछे जाने पर इस वसन्त का आरम्भ आजकल की स्थिति के अनुसार हो गया।

ज्योतिष के वेत्ता सूर्य के सङ्क्रमण वृत्त को 27 नक्षत्रों में विभक्त करते है। पूर्वसङ्क्रमणवृत्त 360 अंशों का है। और वो प्रत्येक नक्षत्र 360 ÷ 27 = 131/2 अंशों का चाप निर्मित

करता है। सङ्क्रमण विन्दु 72 वर्षों में एक अंश को छोडकर दुसरे अंश पर चला जाता है। इस प्रकार एक नक्षत्र से सङ्क्रमण विन्दु दुसरे नक्षत्र को चला जाता है। वहां $73 \times 131/2 = 972$ वर्षात्मक कुल काल लगता है। अब वसन्त का आरम्भ पूर्वभाद्रपद नक्षत्र के चतुर्थ चरण में होता है। और तब इस वसन्त का आरम्भ कृत्तिका नक्षत्र में होता था। उसको वर्तमान स्थिति को प्राप्त होने में 41/2 नक्षत्र पार करने होते है। यदि एका नक्षत्र पार करे तो 172 वर्ष का काल लगता है। और फिर 41/2 नक्षत्र पार करने में $972 \times 41/2 = 4374$ वर्षात्मक काल अवश्य अपेक्षित है। इस प्रकार वेदोक्त ज्यौतिष तत्त्व के अनुसार वेदों की 2400 ई. पूर्वकालिकता प्रतीत होती है।

पाठगत प्रश्न

205. भारत में कितनी ऋतुएँ है ?
206. वर्तमान समय में वसन्त का आरम्भ कब होता है ?
207. मीन सङ्क्रान्ति कब होती है?
208. ज्योतिर्विद सूर्य के सङ्क्रमणवृत्त को कितने नक्षत्रों में विभक्त करते है ?
209. सङ्क्रमण विन्दु कितने वर्षों में एक अंश को छोडकर दूसरे अंश पर जाता है?
210. वेदोक्त ज्योतिषतत्त्व के अनुसार वेद का रचनाकाल क्या है ?

2.1.3 शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित के मतानुसार

महाराष्ट्र के विख्यात पण्डित ज्योतिर्विद् श्री शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित महोदय है। उन्होंने अति परिश्रम से शतपथ ब्राह्मण से महत्त्वपूर्ण एक वर्णन की खोज की। उससे उनके ग्रन्थ के रचना काल विषय में पर्याप्त प्रकाश मिलता है। वैदिक संहिताओं में नक्षत्र निर्देशक बहुत से वर्णन मिलते है। शतपथ ब्राह्मण के इस सन्दर्भ में ये कथन द्रष्टव्य है–

'एकं द्वे त्रीणि चत्वारि वा अन्यानि नक्षत्राणि, अथैता एव भूयिष्ठा यत् कृत्तिकास्तद् भूमानमेव एतदुपैति, तस्मात्कृत्तिकास्वादधीत। एताहवै प्राच्या दिशो न च्यवन्ते सर्वाणि ह वां अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यादिशश्च्यवन्ते। (शतपथ. 2/1/2)'

इससे यह प्रतीत होता है कि शतपथ ब्राह्मण रचनाकाल में कृत्तिका नियम पीछे था। आजकल ये कृत्तिका पूर्व दिग् बिन्दु से थोड़ा उत्तर दिशा में उदय होता है। दीक्षित महोदय की गणना से इस प्रकार की ग्रह स्थिति 3000 ई.पू. काल में सम्भव थी। इसीलिये वो ही शतपथ का निर्माण काल है। तैत्तिरीय संहिता शतपथ से प्राचीन है। ऋग्वेद से तैत्तिरीय संहिता भी प्राचीन है। ऋग्वेद 34000 ई.पू. काल में प्रणीत हुआ। इस प्रकार आज ऋग्वेद 4400 वर्ष से प्राचीन है।

पाठगत प्रश्न

211. श्री शङ्कर बाल दीक्षित महोदय ने एक महत्त्वपूर्ण वर्णन कहाँ से खोजा ?

212. नक्षत्र निर्देश बहुत से वर्णन कहां से प्राप्त होते है?

213. कृत्तिका नक्षत्र किस दिशा में उदित होता है ?

2.1.4 बाल गङ्गाधर तिलक के मतानुसार

तिलक के मत में वेदकाल इससे भी कुछ प्राचीन सिद्ध होता है। उन्होंने मृगशिरानक्षत्र में वसन्त काल आरम्भ के बहुत से साधक वेद वाक्यों को सङ्गृहीत किया था। तैत्तिरीयसंहिता में कहा है कि **फाल्गुनी पूर्णिमा वर्षादिः**। तिलक का यह मत अनुकूल है, क्योंकि जब पूर्णचन्द्र फाल्गुनी होता है तो सूर्य मृगशिरा में ही होता है और तभी वसंत का आरम्भ होता है। मृगशिरा में वसन्त का आरम्भ काल पूर्वोक्त कृत्तिका के काल से प्राय 2000 वर्ष पूर्व होता है। जैसे मृगशिरा से कृत्तिकापर्यन्त पश्चात् गमन में द्विसहस्र 2000 वर्षों का समय लगता है। एक नक्षत्र से दुसरे नक्षत्र तक जाने के लिए 970 वर्ष लगते है ऐसा पहले भी कहा जा चुका है। इसीलिये जिन मन्त्रों में मृगशिरा में वसन्त का उल्लेख है वे मन्त्र 4500 ई.पू. समय से अर्वाचीन नहीं हो सकते है। मृगशिरा से भी पूर्व पुनर्वसु में वसन्त के प्रारम्भ के बोधक वेदवचन तिलक को मिले। इसलिए वेदमन्त्रों को उससे भी पूर्वकाल के भी कहा जा सकता है। डा.याकोबी– जार्मानी के विद्वान् वेद के उत्पत्ति के चौबिस हजार 24000 बीत गये ऐसा मानते है। गृहसूत्रों में उल्लिखित ध्रुवदर्शन के आधार पर वो ही समय स्वतन्त्र रूप से वेदों का रचनाकाल निर्धारित करते है।

लोकमान्य तिलक के मतानुसार –

(1) अदितिकाल– 6000 ई. पूर्व से 4000 पूर्वपर्यन्त। इस काल में उपास्यदेवों के गौणमुख्य चरितादिबोधक गद्य पद्यमय मन्त्र रचित हुए, जो मन्त्र यज्ञों में प्रयुक्त होते थे।

(2) मृगशिर काल– 4000 ई.पूर्व से 2500 ई.पू. पर्यन्त। यहाँ इस महत्त्व शालिन काल में बहुत से ऋग्वेद मन्त्रों की रचना हुई।

(3) कृत्तिकाकाल– 2500 ई. पूर्व से 1400 ई.पू. पर्यन्त। इस काल में शतपथ ब्राह्मणगत तैत्तिरीय संहिता का प्रणयन हुआ।

(4) अन्तिम काल– 1400 ई.पू. से 400 ई. पूर्व पर्यन्त। इस काल में शौतसूत्र, गृह्यसूत्र, दर्शनसूत्र आदि आर्षग्रंथों की रचना हुई। उन्हीं ग्रन्थ के विरोध में प्रतिक्रियारूप में बौद्धधर्म का उदय हुआ।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न

214. तैत्तिरीय संहिता में कौन वर्षादि कहा गया है ?

215. एक नक्षत्र से दुसरे नक्षत्र में गमन के लिए कितना समय लगता है?

216. वेदों के उत्पत्ति के चौबिस हजार वर्ष बीत गये ऐसा कौन मानता है?

217. लोकमान्य तिलक ने कितने काल बताये है ?

2.1.5 शिलालेख

वर्तमान में होने वाले शोधकार्यों का फल भी तिलक महोदय के मत को पुष्ट करता है। उन्नीस सौ सात ईस्वी (1907 ई.पू.) सन् डा. हूगोविन्कलर 'बोधाज् कोड्' नामक वर्तमान टर्की देश के अन्तर्गत खननकार्य में एक प्राचीन शिलालेख प्राप्त हुआ। उस शिलालेख से ज्ञात होता है कि पश्चिम-एशिया के विभाजन में समय वहां टर्की देश में किन्हीं दो प्राचीन जातियों का निवास स्थान था। वहां एक जाति का नाम 'हित्तिति' और दूसरी का 'मितानि' था। इन दोनों जातियों के मध्य में राजा पारस्परिक कलह का निवारण सन्धि द्वारा करते थे। वहां संधि में दोनों पक्षों में सन्धि के संरक्षक के तौर पर देवों के नाम बताते थे। उनमें मितानि जाति के देवों में मित्र, वरूण, इन्द्र, और नासद विशिष्ट थे। ये देव आर्यो के ही थे। इससे यह प्रतीत होता है कि वहां कोई आर्य ही रहते थे।

इस शिलालेख का समय 1400 ई.पू. है। आर्य प्राग् आर्यावर्त्त में स्वधर्म वेदों को स्थिर करके कहीं चले गये। अत: 1400 ई. पूर्व से पहले ही वैदिकसभ्यता का उदय मानना चाहिए। इस प्रकार वेदों का काल 2000 ई. पूर्व सिद्ध होता है। यह काल निश्चय तिलक द्वारा दिए गये मत का समर्थन करता है। वस्तुत: ये सब अभी भी स्पष्ट नही है।

केवल माना गया है कि जब कभी भी काल निश्चय होने पर वेद पूर्वोक्तकाल से भी पूर्वकाल के है ऐसा सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न

218. उन्नीससौ सात सप्ताधिकैकोनविंशतिशततमेशवीये (1907 ई.पू.) सन में 'बोधाज् कोड्' नामक वर्तमान टर्की देश में डा. हूगोविन्कलर महोदय ने कहां से और क्या प्राप्त किया ?

219. उस शिलालेख से क्या पता चलता है ?

220. टर्कीदेश में दो प्राचीन जातियों के नाम क्या थे ?

221. डा. हूगोविन्कलर-महोदय द्वारा आविष्कृत शिलालेख का समय क्या था ?

222. वेदों का काल क्या है ?

2.2 वेदपाठ के प्रकार

ऋचाओं में प्रक्षेप के प्रतिषेध के लिए वैदिक ऋषियों द्वारा विविध उपाय किये गये। चरण व्यूह ग्रन्थ में ऋचा को संख्यानुसार गिनकर रखा। फिर भी समाक्षर पद प्रक्षेप को रोकना मुश्किल था। अतः बहुत विचार कर ऋषियों द्वारा मन्त्र पाठभेद बनाए गये। मन्त्र शुद्धि रक्षार्थ इस प्रकार की चमत्कार पूर्ण रचना किसी भी धर्मग्रन्थ के प्राचीन पुस्तकों में नही दिखती है। ये कुल 11 पाठ है। तीन और आठ विकृतियां है। संहिता पद क्रम पाठ प्राकृतिक है। संहितापाठ की प्रकृति से प्रकृति और पदक्रम में रूढ है।

समय के साथ प्रक्षिप्तों का प्रवेश वेदमन्त्रों में न हो ऐसा विद्वानों और ऋषियों द्वारा उपाय खोजे गये। जैसे शौनक ऋषि ने उस चरण व्यूहग्रन्थ में संहिता की सूक्त संख्या, ऋक्संख्या, पदसंख्या और कुछ समग्र संहिता की अक्षर संख्या की भी रचना की। अक्षर संख्या या पदसंख्या रचित हो, परन्तु दो-दो अक्षरों में यदि परस्पर विपरीत लिखे जाएं फिर भी अक्षर संख्या या पद संख्या समान ही होती है, इससे बचने का उपाय क्या है इसका भी ऋषियों द्वारा समाधान किया गया है। उसके निवारण के लिए वेद मन्त्रों की भिन्न रीति से पाठ की रीति खोजी गई। उनकी यह बुद्धि वर्तमान विद्वानों को आकृष्ट करती है। ऋक्संहिता में जैसा लिखित है वैसा ही सन्धि-समास द्वारा जो पाठ है वो संहितापाठ है। पाठ के ग्यारह (11) प्रकार है। उनमें तीन प्रकृतिपाठ और, आठ 8 विकृति पाठ। प्रक्रिति पाठ तीन है- 1. संहितापाठ, 2. पदपाठ 3. क्रमपाठ। और संहितापाठ दो प्रकार की योग प्रकृति है, और दूसरी दो रूढ़ा प्रकृति कहलाती है। आठ 8 विकृति पाठ है जटा-माला-शिखा-रेखा-ध्वज-दण्ड-रथ-घनपाठ। इनके नाम में पहले सर्वत्र क्रम शब्द कहा गया है क्रमजटापाठ, क्रममालापाठ। व्याडी मुनि ने स्वकृत जटापटलाख्य ग्रन्थ के कहा है -

जटा-माला-शिखा-रेखा-ध्वजो दण्डो रथो घनः।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वाः महर्षिभिः॥ इति॥

एकादश प्रकारों में संहितापाठ से पदपाठ प्राचीनतम है। ऐतरेयारण्यक, में पदपाठ मिलता है, उसके बाद ऐतरेयारण्यक से ऋक्प्रातिशाख्य से और निरुक्त से पदपाठ प्राचीन है। विकृतिपाठों में जटा और दण्ड प्रकृष्ट है, शेष पाठों का उद्‌भव शिखापाठ और जटापाठ के अनुसार है। माला-लेखा-रथ-ध्वज पाठों का दण्डपाठ से उत्पत्ति होती है। घनपाठ की उत्पत्ति जटा और दण्डपाठ दोनों से है। अब हम सभी प्रकृति-विकृति पाठों को लक्षणमुख से और दृष्टान्तमुख से जानेंगे। ऋग्वेद की आदि ऋचा को ही हम दृष्टान्त के रूप में लेते है। आदिम ऋचा को हम सब जानते है-

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधतमम्।। (ऋ.म.1.1.1)।। इति

पाठगत प्रश्न

223. विकृति पाठ के कितने भेद है ?

224. व्याडी मुनि का ग्रन्थ कौन सा है ?

225. घन पाठ किससे उत्पन्न होता है ?

226. ऋग्वेद का आदि सूक्त कौन सा है ?

227. अग्निसूक्त की एक ऋचा लिखो।

2.2.1 संहिता पाठ

वेद में संहिता भाग में जैसा लिखित है, वैसा ही पाठ होता है वह संहिता पाठ है। संहिता पाठ - संहिता की यथावत् स्थित ऋचाओं का तथावत पाठ संहिता पाठ। विसंहितव्यस्तपद पाठ पदपाठ है। यथा

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधतमम्।। (ऋ.म.1.1.1)।।इति

2.2.2 पद पाठ

एक मन्त्र के प्रत्येक पदों का स्वतन्त्र पूर्वक तथा समास का विभाजन करके जो पाठ होता है वह पदपाठ है। प्रकृत की ऋचाओं का पाठ पदपाठ है -

अग्निम्। ईडे। पुरः ऽहितम्। यज्ञस्य। देवम्। ऋत्विजम्।
होतारम्। रत्न ऽधतमम्।।इति।।

इस पदपाठ में पुरोहितम् तथा रत्नधातमम् इन दो स्थान पर अवग्रह से समास का व्यस्त किया गया है। शाकल्य ऋषि छः ऋचाओं को छोडकर अन्य ऋचा को पदपाठ में रचा, अतः इसका शाकल्यसंहिता नाम भी है। वे छः ऋचाएं क्यों छोड़ी इसका कारण नही पता। मूल संहिता में वे ऋचाएं नहीं है, कुछ ऐसा भी मानते है।

2.2.3 क्रम पाठ

क्रमपाठ में एक ऋचा में दो पदों को एक बार ग्रहण करते है, तथा आदि और अन्तिम को छोडकर मध्यस्थ पदों को दोबार पढ़ते है।

अग्निम् ईळे। इळे पुरोहितम्। पुरोहितं यज्ञस्य।
यज्ञस्य देवम्। देवम् ऋत्विजम्। ऋत्विजम् होतारम्।
होतारम् रत्नधतमम् ।।इति।।

यहां आदि पद अग्निं तथा अन्तिम रत्नधातमम् को छोडकर अन्य पद दो वार पढ़े गये है। इस पाठ से मध्यस्थ पदों की प्रक्षिप्तत्व शङ्का निरस्त हो जाती है, परन्तु आदिम और अन्तिम में विकार सम्भावना रह ही जाती है। ये शङ्का जटापाठ से निरस्त हो जाती है। आङ्गल भाषा में क्रमपाठ भी कहा जाता है।

2.2.4 जटा पाठ

वस्त्र वयन के आतान प्रतान को छोडकर प्रथम और अन्तिम पदों को तीन करके मध्यस्थ षोढोच्चारण जिस पाठ में होता है वह जटापाठ होता है। जैसे वस्त्रवयन में ओतप्रोतत्व दिखता है वैसे ही जटापाठ में पद प्राय: ओत-प्रोतरूप में होते है। अत: कुछ जटा पाठ भी कहते है। यहां आदि और अन्तिम तीन बार तथा मध्यस्थ वर्णो को छ: बार उच्चारण करते है। यथा-

अग्निम् ईळे ईळे अग्निम् अग्निम् ईळे।
ईळे पुरोहितम् पुरोहितम् ईळे ईळे पुरोहितम्।
पुरोहितम् यज्ञस्य यज्ञस्य पुरोहितम् पुरोहितम् यज्ञस्य।
यज्ञस्य देवम् देवम् यज्ञस्य यज्ञस्य देवम्.........।।इत्यादिवत्।।

2.2.5 माला पाठ

पहले पहला दूसरा पद का, उसके बाद छठे पांचवे पद का, फिर दूसरे तीसरे पद का फिर पांचवे चौर्शपद का पाठ माला पाठ कहलाता है। आङ्गल में यह पाठ माला पाठ भी कहलाता है। इसके पाठ की रीति सुकठिन है। पांच प्रकार के पुष्प का संगृह करके एक सूत्र में बाधते है तो उसके शोभा वर्धन के लिए क्रम अवश्य पता होना चाहिए उसी प्रकार कुछ पदों को ग्रहण कर क्रमश: पाठ इसकी रीति होता है। यथा-

अग्निम् ईळे ऋत्विजं देवम्।
ईळे पुरोहितं देवं यज्ञस्य पुरोहितं यज्ञस्य यज्ञस्य पुरोहितम्।
देवम् ऋत्विजम् ईळे अग्निम्।। इत्यादिवत्।।

इस पाठ के विषय में एक श्लोक-

माला मालेव पुष्पाणां पदानां ग्रन्थिनी हि सा।
आवर्तन्ते त्रयस्तस्यां क्रम-व्युत्क्रम-संक्रमाः।।इत्यादिवत्।।

2.2.6 रेखा पाठ

क्रम पाठ में भी यथा क्रम और व्युत्क्रम से कुछ पद द्वन्द्व के, कुछ पद त्रय के पाठ होते है क्रम पाठ के विपरीत यह होता है। यथा-

अग्निम् ईळे ईळे अग्निम् अग्निम् ईळे
ईळे पुरोहितम् यज्ञस्य यज्ञस्य पुरोहितम् ईळे
ईळे पुरोहितम्, पुरोहितम् यज्ञस्य....।इत्यादिवत्।।

रेखापाठ के विषय में यह श्लोक कहा गया है -

क्रमाद् द्वित्रिचतुःपञ्च्पदक्रममुदाहरेत्।
पृथक् पृथक् विपर्यस्य रेखामाहुः पुनः क्रमात्।।

2.2.7 शिखा पाठ

जटा के अनुरूप होता है शिखापाठ। मध्य मध्य में या तीसरे में, छठे में, नवें चरण में तीन तीन चरण होते है। यह प्रायः जटापाठवत् होता है। यथा-

अग्निम् ईळे। ईळे अग्निम्। अग्निम् ईळे पुरोहितम्।
ईळे पुरोहितम्। पुरोहितम् ईळे। ईळे पुरोहितम् यज्ञस्य।
पुरोहितम् यज्ञस्य। यज्ञस्य पुरोहितम्। पुरोहितम् यज्ञस्य देवम्।
यज्ञस्य देवम्। देवम् यज्ञस्य। यज्ञस्य देवम् ऋत्विजम्।।

2.2.8 ध्वज पाठ

क्रम पाठ के अनुरूप छः पदों को उच्चारण कर व्युत्क्रम से उसकी पुनः आवृत्ति ध्वज पाठ में होती है। यहां क्रमपाठवत् छः पद होते है, पुनः विपरीत क्रम में छः पदों का ही पाठ होता है यथा

अग्निम् ईळे ईळे पुरोहितम् पुरोहितम् यज्ञस्य।
पुरोहितम् यज्ञस्य ईळे पुरोहितम् अग्निम् ईळे।
यज्ञस्य देवम् देवम् ऋत्विजम् ऋत्विजम् होतारम्।
ऋत्विजम् होतारम् देवम् ऋत्विजम् यज्ञस्य देवम्।।

2.2.9 दण्ड पाठ

क्रम पाठ के अनुरूप से एक ही काल में दो पद का यथाक्रम त्रिकृत्व उच्चारण और, दूसरे बार विपरीत क्रम में जहां पाठ दिखता है वह दण्ड पाठ है। यहाँ क्रम पाठ के दो पद आदि में यथाक्रम तीन वार और, तदनन्तर विपरीत क्रम से पाठ है। यथा

अग्निम् ईळे ईळे अग्निम् अग्निम् ईळे
ईळे पुरोहितम् पुरोहितम् ईळे अग्निम्।।इत्यादिवत।।

दण्ड पाठ के लक्षणश्लोक इस प्रकार है –

क्रममुक्ता विपर्यस्य पुनश्च क्रममुत्तमम्।
अर्धर्चादेव मुक्तोयं क्रमदण्डोऽभिधीयते।।

2.2.1 रथ पाठ

क्रम पाठ के और उसके विपरीत मिश्रण से रथ पाठ होता है। एक चरण के एक पाद या सम्पूर्ण चरण एक काल में मिलाकर यहां बोला जाता है। क्रम पाठ धारा तथा तद्विपरीत धारा को देखकर रथपाठ की पङ्क्ति में एकांश समग्र पङ्क्ति के आधार पर सृष्टी हुई।

प्रथम प्रकार–

समिधाग्निम् अग्निम् समिधा।
घृतैर्बोधायेत् बोधयेत् घृतैः समिधा अग्निम्।इति।।

द्वितीय प्रकार–

अग्निम् ईळे यज्ञस्य देवम।
ईळे अग्निम् देवम् यज्ञस्य।
अग्निम् ईळे ईळे पुरोहितम।
यज्ञस्य देवम् देवम् ऋत्विजम्।।इत्यादिवत्।।

2.2.2 घन पाठ

यहां पर भी प्रारम्भ के चार पदों के दो दो भाग को लेकर जटा पाठानुसार पढ़ते है। और उसके बाद तीन करके यथा क्रम व्युत्क्रम और विपर्यास से पढ़ते है। यहां चारों पदों में आदि के दो पदों में जटापाठवत्, उसके बाद पद त्रय यथा क्रम विपरीत क्रम और विपर्यास से उच्चारण करते है तब वह घनपाठ है।

टिप्पणी

अग्निम् ईळे ईळे अग्निम् अग्निम् ईळे पुरोहितम्
पुरोहितम् ईळे अग्निम्, अग्निम् ईळे पुरोहितम्...इत्यादिवत्।।

यहां उल्लिखित ग्यारह पाठ निर्भुज-प्रतृण भेद से द्विध विभक्त है। संहिता भाग में जैसे मन्त्र है उसके अनुरूप जो पाठ है वह निर्भुज पाठ है जैसे संहिता पाठ है। व्यतिक्रम से जो पाठ है वह प्रतृण पाठ है, जैसे पद-क्रम-जटादि।

इन पद क्रमादी पाठों के फलश्रुति और प्रशंसा शिक्षा ग्रन्थ में दिखाई देता है। याज्ञवल्क्यशिक्षा में कुछ श्लोकों में इनकी प्रशस्ति विहित है-

संहिता नयते सूर्यपदं च शशिनः पदम्।
क्रमश्च नयते सूक्ष्मं यत्तत्पदमनामयम्।।
कालिन्दी संहिता ज्ञेया पदयुक्ता सरस्वती।
क्रमेनावर्तते गङ्गा शम्भोर्वाणी तु नान्यथा।।
यथा महादं प्राप्य क्षिप्तो लोष्ट्रो विनश्यति।
एवं दुश्चरितं सर्वं वेदे त्रिवृत्ति मज्जति।।

संहिता पाठ से सूर्य लोक, पदपाठ से चन्द्र लोक तथा क्रम पाठ से अक्षय लोक प्राप्त होता है। संहिता पाठ कालिन्दी स्वरूप या यमुना स्वरूप, पद पाठ सरस्वती स्वरूप, तथा क्रमपाठ गङ्गा स्वरूप होता है। संहितादि पाठ पूर्वक वेद पढ़ते है तो समस्त पापों का नाश होता है।

2.3 ऋषि छन्द देवता विनियोग

प्रतिवेद, प्रतिसूक्त और प्रतिमन्त्र में ऋषि छन्द और देवता विनियोग होता है। केवल मन्त्रार्थ ज्ञान ही हमारा उद्देश्य नहीं, अपितु ऋषि छन्द देवता आदि का ज्ञान भी आवश्यक है। कोई यदि वेद मन्त्रार्थ मात्र का अध्ययन करता है और सिखाता है, तब वह मन्त्र कण्टक है ऐसा कहा जाता है -

ऋषिच्छन्दोदैवतानि ब्राह्मणार्थं स्वराद्यपि।
अविदित्वा प्रयुजानो मन्त्रकण्टक उच्यते।।इति।।

कोई भी गुरु यदी ऋषि छन्द देवता विनियोग न जानकर शिष्यों को पढाता है, वह पाप भागी होता है। कहा भी गया है -

अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च।
योध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयान् जायते तु सः।।इति।।

2.3.1 ऋषि

ऋष्-धातु से इन् प्रत्यय करने पर ऋषि शब्द निष्पन्न हुआ। ऋष्-धातु गमन अर्थ में है। और भी यास्क ने – **'यदेतान् तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भुः अभ्यनार्यत तदृषयो भवन् तदृषीणामृषित्वमिति विज्ञायते।'** इति। स्वयम्भु ब्रह्म स्वय ही ऋषियों के समक्ष गये इसीलिए उसका ऋषित्व ऐसा अर्थ है। कुछ दर्शनार्थक ऋष्-धातु से ऋषि शब्द निष्पन्न मानते है। उनका अभिप्राय- तपस्या करने वाले ऋषियों ने ब्रह्मा के आशीर्वाद से वेदमन्त्रों का दर्शन किया इसीलिये वो ऋषि कहलाते हैं। अतः यास्क ने कहा है – 'ऋषिर्दर्शनात्। स्तोमान् ददर्श इति औपमन्यवः' इति। यास्क दर्शनार्थक ऋष्-धातु से मानते है तथाहि – **'साक्षात्कृतधर्माणः ऋषयो बभूवुः'** इति। मन्त्र दर्शन और मन्त्ररचयिता के मध्य में क्या अन्तर है इसका प्रतिपादन करते हुए यास्क द्वारा अनेक मत प्रदर्शित किये। वेद अपौरुषेय है, वेद किसी के द्वारा नहीं रचित है। मीमांसक भी स्वीकार करते है की पुरुष द्वारा बनाई वस्तु का नाश निश्चित है, वेद अपौरुषेय अनादि और अनन्त है पुरुष कर्तृकत्व अभाव से ऋषियों के तप के फल से ही ब्रह्मा के आशीष से वेद उनके हृदय में स्वतः ही उत्पन्न हुए। इसप्रकार जिस ऋषि के हृदय में जो मन्त्र, सूक्त, क्षेत्र विशेष से उत्पन्न हुआ वह उस मन्त्र का द्रष्टा हुआ। यथा ऋग्वेद के आदिमसूक्त के द्रष्टा मधुच्छन्दा ऋषि है। इसीप्रकार ऋग्वेद के गृत्स मद-विश्वामित्रा-वामदेव-अत्रि-भारद्वाज-वसिष्ठ-कण्व ऋषि हुए है। युगान्त कल्पारम्भ में ऋषि द्वारा वेद तप से प्राप्त होते है। इस विषय में कहा गया है –

> **युगान्तेऽन्तर्हितान्वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।**
> **लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयम्भुवा।।इति।।**

पाठगत प्रश्न

228. मन्त्रा कण्टक किसको कहा जाता है ?

229. ऋषि शब्द की उत्पत्ति किससे हुई ?

230. कौन ऋषि कहलाता है ?

231. ऋग्वेद के ऋषि कौन है ?

2.3.2 देवता

प्रत्येक मन्त्र का कोई देवता अवश्य है। उस-उस मन्त्र से उन-उन देवों को प्रसन्न और आवाहन किया जाता है। देवता, देव, देवी इत्यादि शब्द प्रकाशार्थक दिव्-धातु से निष्पन्न है। जो स्वयं प्रकाशित होते हैं वे देव हैं। निरुक्त में यास्क ने देव शब्द के निर्वचन

प्रसङ्ग में कहा है –'देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा भवति' इति। इसका अर्थ जो दाता, स्वयंप्रकाश, स्वतेज से अन्य का भी प्रकाशक है वह देव है। इस प्रकार मन्त्र के चैतन्य में ही देव है। क्योंकि चैतन्य स्वयं प्रकाशित है। चैतन्याभास से ही अन्यवस्तु प्रकाशित होती है। अतः सच्चिदा नन्द स्वरूप आत्मचैतन्य ही देवता है ऐसा विद्वान मानते है। ऋग्वेद में भी उल्लेख है –

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति, अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः इति॥

जैसे एक ही वायु के अग्नि-यम-मातरिश्वा आदि नाम होते है, वैसे ही एक ही ब्रह्मा के भिन्न नाम विद्वानों द्वारा कहे जाते हैं। वेद में बहुत देवों के नाम प्राप्त होते है। यास्क ने तो अग्नि-इन्द्र-सूर्य इन्हीं को देवस्वीकार किया। इस विषय में पूर्व में ही विस्तार से निरूपण किया है। तीनों देवों से ही देवों की उत्पत्ति हुई, और कहा भी है- **'तासामेव भक्तिसाहचर्याद् बहूनि नामधोयानि भवन्ति कर्मपृथक्त्वाद्वा'। इति।**

पाठगत प्रश्न

232. यास्क ने देवता निर्वचन प्रसङ्ग में क्या कहा?

233. एकं सद्विप्राः कं बहुधा वदन्ति?

234. यास्क ने कितने देव स्वीकार किये है और वे कौन से है ?

2.3.3 छन्द

निरुक्त और ब्राह्मण ग्रन्थ में छन्द शब्द की बहुत व्याख्याएं प्राप्त होती हैं। जो पाप का आच्छादन करता है वह छन्द है। तैत्तिरीय संहिता में छन्द की उत्पत्ति के विषय में ये आख्यायिका प्राप्त होती है कि पहले प्रजापति ने अग्नि को बनाया, वह अग्नि भीषण रूप धारण कर देवों को जलाने जाती है। उसके बाद स्वयं की रक्षा के लिए छन्द शरीर द्वारा देव अग्नि के समीप गये। इस प्रकार कुछ लोग छन्द की उत्पत्ति मानते है। और अन्य ऋषियों के सामने आविर्भूत मन्त्र के स्पन्द से ऋषियों ने जो अनुभूत किया, वह ही छन्द कहलाता है।

वेद में सात प्रधान छन्द है। वे छन्द गायत्री-उष्णिक्-अनुष्टुप्-बृहती-पङ्क्ती-त्रिष्टुभ्-जगती। वैदिकछन्द को अक्षरच्छन्द नाम से भी जाना जाता है। सप्त छन्दों के अक्षर बताते है-

1) गायत्री-24

2) उष्णिक्-28

3) अनुष्टुप्-32

4) बृहती-39

5) पङ्क्ती-40

6) त्रिष्टुप्-44

7) जगती-48

छन्द बद्ध मन्त्रों के चार पद होते हैं, प्रत्येक पाद में समान संख्या के अक्षर होते हैं। जैसे अनुष्टु आदि चारों पादों में मिलाकर 32 अक्षर होते हैं। इस प्रकार एक पाद में 8 अक्षर होते है। ऐसे ही अन्य में भी जानने चाहिए। द्विजातियों द्वारा गायत्री मन्त्र नित्य उच्चारित होती है। गायत्री छन्द में यह मन्त्र लिखित है। परन्तु गायत्री मन्त्र में 24 चौबिस अक्षर होने चाहिए परन्तु है तेईस 23, अतः यह अनियम पिङ्गलर्षि ने समाधान प्रस्तुत किया कि - तत्सवितुर्वरेण्यम् यहाँ वरेण्यम् इस स्थान पर वरेणिअम् ऐसा पढना चाहिए। ऋग्वेद में त्रिष्टुप्छन्द अधिक् प्राप्त होता है। अग्नि के मन्त्र गायत्री में, और इन्द्र के त्रिष्टुप में है। ऋग्वेद का आदिसूक्त अग्निसूक्त गायत्री छन्द में है। अग्निमीळे पुरोहित यहां पर चौबिस (24) अक्षर हैं।

पाठगत प्रश्न

235. कौन से प्रधान छन्द हैं ?

236. द्विजातियों से नित्य उच्चारित गायत्री मन्त्र में कितने अक्षर है ?

237. गायत्री मन्त्र लिखो।

2.3.4 विनियोग

यज्ञकर्म में मन्त्र के प्रयोग स्थान को विनियोग कहते है। विशेषरूप से प्रयोग का अर्थ विनियोग है। **'अनेन इदं तु कर्तव्यं विनियोगः प्रकीर्तितः, अस्मिन् यज्ञकर्मणि अस्य मन्त्रस्य प्रयोगः कर्तव्यः इतिविनियोगः।** किस याग में कौन सा मन्त्र प्रयोग करना है उसका विधान सौत्र सूत्र में है। सायाणाचार्य ने अपने भाष्य में सौत्र सूत्र से उद्धृति पूर्वक प्रतिमन्त्र के विनियोग को प्रदर्शित किया है। सामान्य और विशेष भेद से विनियोग दो प्रकार का है - समग्रसंहिता-पारायण में विनियोग सामान्य विनियोग कहलाता है। प्रति सूक्तनुसार मन्त्र के आश्वालयन प्रदर्शित विनियोग विशेष विनियोग कहलाते हैं। सूक्तानुसार या सूक्तान्तर्गत मन्त्रानुसार विनियोग भिन्न होता है। जैसे ऋक्संहिता के प्रथम मण्डल एक सौ पन्द्रहवाँ 115 सूक्त सूर्यदेव को उद्देश्य करके कहा गया है। 'चित्रं देवानामुदगादनीकम्' ये प्रथम ऋचा का प्रथम चरण है। सायणाचार्य ने कहा है कि आश्विन शास्त्र में सूर्योदय से ऊपर सौर्य सूक्त प्रशंसनीय है वहां यह सूक्त प्रशंसनीय है। सूक्त कहता है कि 'चित्रं

देवानां नमो मित्रस्य'। सोमयाग में सोमयाग निष्कासन पक्रिया को स्तुत्यादि द्वारा कहा जाता है। उसके पूर्ववर्ति दिन में रात्रि भाग के अन्तिमांश में उषस् अग्नि अश्विनी के युगल त्रय देवताओं की स्तुति होती है। ये स्तुति प्रातरनुवाक नाम से जानी जाती है। गीत रहित स्तुति शस्त्राम कहा जाता है। सोम याग के सप्त 7 संस्था है। अनुष्ठान के प्रकार विशेष संस्था कहलाते हैं। यथा क्रम से सप्त संस्था (अग्निष्टोम, अत्याग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय अतिरात्र, और आप्तर्याम) प्रत्येक प्रक्रिया में चार शस्त्रकीर्तन होते है। त्रिविध प्रक्रिया के अनन्तर आश्विन शस्त्रकीर्तन करना चाहिए। इस आश्विन शस्त्र में उषा अग्नि और अश्विनी देवों की स्तुति होती है। पक्षियों के कूजन से पूर्व सूर्योदय से पूर्वप्रातरनुनाक की समाप्ति कर लेनी चाहिए। सूर्योदय के अनन्तर आश्विन शास्त्र में सूर्य देवता सम्बन्धित सूक्तों का संकीर्तन बताया गया है। उन्हीं में ये सूर्य सूक्त है। आश्वलायन के श्रौतसूक्त में 5-618-वें सूत्र में ये विधि लिखित है। इसके बाद सूर्य सूक्तगत- सभी ऋचाओं का विशेष विनियोग के सम्बन्ध में सायणाचार्य ने कहा है कि **-शास्त्र-आदितस्त्रिस्त्र ऋचः सौर्यस्य पाशोर्वपा पुरोडाश हविषां क्रमेणानुवाक्याः। ततो द्वे वपापुरोडाशयोर्याज्ये इति।** सूक्त की प्रथम तीन ऋचाओं को यथा क्रम में सूर्य देवता के उद्देश्य वपा पुरोडाशादि हविग्रहण समय में अनुवाक्य रुप के कहने चाहिए। अग्रि को दो ऋचाओं और चौशी व पांचवीं ऋचा को यथा क्रम में और पुरोडाशवपादि यज्ञाग्नि में हविर्दान काल में याज्य रुप में पाठ करना चाहिए। देवता के उद्देश्य में पुरोहित जब हवि का ग्रहण करता है तब कही जाने वाली ऋचा को अनुवाक्य कहते हैं। यज्ञाग्नि में आहुति के अर्पणकाल में बोली जाने वाली ऋचा याज्य कहलाती है। पहले अनुवाक्य और तदनन्तर याज्य का पाठ होना चाहिए। अनुवाक्य बैठकर और याज्या खड़े होकर पढनी चाहिए। कहा है-'अनुवाक्या तिष्टन्नाह, आसीनो याज्यां यजति' इति। हूयते इति हविः। यज्ञाग्ननि में जो दिया जाता है वह ही हवि कहलाती है। पशुमांस, पिष्टतण्डुलादि, पुरोडाश नामक रोटिका, सोमरस, घृतादि सभी हविपद के वाच्य है। इन हव्य द्रव्यों के मध्य आज्य का अधिक प्रचलन से बदलते हुए काल में हवि से घृत पद का ग्रहण होने लग गया।

पाठगत प्रश्न

238. सूर्यसूक्त का आदि मन्त्र क्या है ?

239. शस्त्र क्या है ?

240. अनुवाक्या क्या है ?

241. यज्या क्या है ?

242. हवि क्या है ?

243. हवि शब्द से किसका ग्रहण होता है ?

पाठ सार

वेद अपौरुषेय है ये भारतीय सिद्धान्त है। इससे स्पष्ट है कि वेद पहले से ही है। अत एव वेद का काल चिन्तन हास्य कल्पित होता है। वेदादियों में भ्रमादि नहीं है। अत एव वेद अपौरुषेय है अनादि काल से इसलिए वेद के विद्यमानत्व के काल पर चिन्ता सम्भव नहीं है। परन्तु पाश्चात्यों के मत में तो वेदों को ऋषियों ने बनाया। अतः याकोबि इत्यादि वैदेशिक पण्डित वेद के काल निर्णय में सर्वदा तत्पर रहते हैं। उनके मत में वेद पौरुषेय है। कुछ भारतीय विद्वान भी वेद के कालनिर्णय में सदा तत्पर दिखते हैं। उनमें लोकमान्य तिलक, बालकृष्ण दीक्षित इत्यादि हैं। उसके बाद वेदपाठ के प्रकार कहे गये है। कुल ग्यारह 11 पाठ है। तीन प्रकृति और आठ विकृति। संहिता पद क्रम पाठ प्राकृति है। अष्ट विकृति पाठ जटा-माला-शिखा-रेखा-ध्वज-दण्ड-रथ-घनपाठ है। मन्त्रादि से एक देवता को उद्दिश्य करके स्तुति की जाती है। फिर वेद के नित्य होने पर भी कोई स्मर्ता तो आवश्यक है। उसके बाद प्रतिसूक्त का कोई ऋषि, कोई देवता, और कोई छन्द भी हो इसका वर्णन किया है। यथा- अग्निसूक्त का देवता- अग्नि, ऋषि-मधुच्छन्दा, छन्द जगती है। इस प्रकार इस पाठ में ऋषि देवता छन्द विनियोग उल्लेखित है।

पाठान्त प्रश्न

244. संहितापाठ की व्याख्या करो।

245. घनपाठ की व्याख्या करो।

246. वेदपाठ कितने प्रकार का है।

247. ऋषि का स्वरूप स्पष्ट करो।

248. देवता का स्वरूप लिखो।

249. छन्द की उत्पत्ति विषय में क्या आख्यायिका है ?

250. गायत्रीमन्त्र के अक्षर विषय में पिङ्गल ने क्या कहा है ?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

वेदों के उत्पत्ति काल

251. भारतीय विद्वानों के मत में।

252. वेद को अपौरुषेय मानते है।

253. पाश्चात्य विद्वान यथा बुद्धि वैभव से वेद रचना काल का निर्धारण करते है।

डॉ. मैक्समूलर का मत

254. ऋग्वेद।

255. ऋग्वेद की रचना 1150 ई.पू के आस-पास हुई

256. चार युग है। छन्दोयुग, मन्त्रयुग, ब्रह्मणयुग, सूत्रयुग।

257. 3200 वर्ष हो गये।

वेद के विषय में ज्यौतिषतत्त्वआधारित मत

258. षट् ऋतु है।

259. मीन सङ्क्रान्ति काल से शुरू।

260. मीन सङ्क्रान्ति पूर्वभाद्रपद नक्षत्र के चतुर्थ चरण में होती है।

261. 27 नक्षत्रों में विभक्त होते है।

262. 72 वर्ष में।

263. ईशवीय पूर्व (2500) शतक।

शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित का मत

264. शतपथ ब्राह्मण से।

265. वैदिक संहिताओं में।

266. पूर्वदिग्बिन्दु से थोड़ा उत्तर दिशा में।

बाल गङ्गाधर तिलक का मत

267. फाल्गुनी पूर्णिमा।

268. फाल्गुनी पूर्णिमा।

269. चौबिस साल 24।

270. अदितिकाल, मृगशिर काल, कृत्तिका काल, और अन्तिम काल ये चार काल है।

शिला लेख

271. वर्तमान के टर्की देश के अन्तर्गत खनन कार्य में प्राचीन एक शिलालेख मिला।

272. पश्चिम-एशिया विभाजन के समय में वहां टर्की देश में दो कोई प्राचीन जातियों का निवास स्थान था।

273. 'हित्तिति' और 'मितानि'।

274. ईश्वी पूर्व (1907) शतक।

275. ईश्वी पूर्व (2000) शतक।

वेदपाठ के प्रकार

276. अष्ट

277. जटा पटलाख्ये ग्रन्थ में

278. जटा और दण्ड दोनों से।

279. अग्निसूक्त।

280. अग्निमीते पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधतमम्।। (ऋ.म.1.1.1)।इति

ऋषि

281. ऋषि छन्द देवता आदि के ज्ञान के बिना यदि वेद मन्त्रार्थ मात्र कोई सीखता है

282. ऋष्-धातु इन् प्रत्यय ऋषि शब्द निष्पन्न है

283. तप के फल से ब्रह्म के आशिष से वेद स्वत जिनके हृदय में आविर्भूत हुए वे ऋषि है

284. गृत्समद-विश्वामित्रा-वामदेव-अत्रि-भारद्वाज-वसिष्ठ-कण्व ऋषि हुए।

देवता

285. देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा भवति इतिआत्मान्।

286. तीन 3

287. अग्नि-इन्द्र-और सूर्य

छन्द

288. (1) गायत्री-24, (2) उष्णिक्-28, (3) अनुष्टुप्-32, (4) बृहती-39, (5) पङ्क्ती-40, (6) त्रिष्टुप्-44, (7) जगती-48

289. 23

290. ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सदितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि, धीयो यो नः प्रचोदयात्।

विनियोग

291. चित्रं देवानामुदगादनीकम्।

292. गीत रहित स्तुति

293. देवता के उद्देश्य से पुरोहित जब हवि का ग्रहण करता है तब बोली जाने वाली ऋचा अनुवाक्या कहलाती है

294. यज्ञाग्नि में आहुति के समय बोली जाने वाली ऋचा यज्या हैब

295. यज्ञाग्नि में जो दी जाती है वह ही हवि है

296. हवि का घृत पद से ग्रहण होता है।

दूसरा अध्याय समाप्त

3

वेदों के भाष्यकार

प्रस्तावना

वेद का अर्थ इतना अति सुगम नहीं है। तथा वैदिक साहित्य में जो भाषा व्यवहृत है वह भाषा हमारी संस्कृत भाषा से भिन्न भी है। इसलिए बहुत से आचार्यों के वेदों के अर्थ का प्रतिपादन करने के लिए अनेकों भाष्य किये। उन वेद भाष्यकारों में स्कन्द स्वामि-नारायण-उद्गीथ- माधवभट्ट-वेङ्कट माधव-धनुष्कयज्व-आनन्दतीर्थ-आत्मानन्द-सायण आदि भाष्यकार सर्वत्र सुप्रसिद्ध हैं। इस पाठ में वेद के बहुत से भाष्यकारों के विषय में आप जानेंगे। वहाँ सबसे पहले ऋग्वेद के भाष्यकारों के विषय में, तथा मध्य में शुक्लयजुर्वेद के और अन्त में सामवेदीय भाष्यकारों के विषय में आलोचना की गयी है।

उद्देश्य

यह पाठ पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- ऋग्वेद के भाष्यकारों के विषय में जान पाने में;
- शुक्लयजुर्वेद के भाष्यकारों का परिचय प्राप्त कर पाने में;
- उनके देश काल और कृति के विषय में जान पाने में;
- ऋग्वेद आदि का अवलम्बन करके लघुप्रबन्ध काव्य की रचना करने के विषय को जान पाने में।

3.1 ऋग्वेद के भाष्यकार

स्कन्द स्वामी ने ऋग्वेद का सुविस्तृत भाष्य किया। उन्होंने निरुक्त पर भी टीका की

रचना की। इन्होंने ही सर्वप्रथम ऋग्वेदसंहिता का भाष्य रचा। और यह भाष्य वैदिक साहित्य में अतीव आदरणीय है। यह ग्रन्थकार अत्यन्त प्राचीन है। यह भाष्य अच्छी प्रकार विषय का प्रतिपादक होने से लोगों में समादृत और प्रशंसनीय है। स्कन्द स्वामी प्रतिभावान् एवं प्रभावशाली विद्वान् थे। स्कन्द स्वामी का जन्म गुजरात प्रदेश के वल्लभी नगर में हुआ था एवं यह नगर विद्यापीठ के लिए प्रदेश की राजधानी स्वरूप था। इनके पिता का नाम भर्तृधरुव था। ऋग्वेदभाष्य के प्रथमाष्टक के अन्त में भाष्यकार ने स्वयम् इसकी चर्चा की-

'वलभीविनिवासस्येतामृगर्थागमसंहृतिम्।
भर्तृध्रुवसुतश्चक्रे स्कन्दस्वामी यथा स्मृतिः॥

3.1.1 स्कन्द स्वामी

आचार्य स्कन्द स्वामी का कौन सा काल था इस विषय में निश्चय से नहीं कहा जा सकता। परवर्ती ग्रन्थों में इसके नामोल्लेख से इसके आविर्भाव का काल सूचित होता है। यह शतपथ ब्राह्मण के विख्यात भाष्यकार हरि स्वामी के गुरु थे। अतः इनका समय सातवीं शताब्दी निश्चिय से कह सकते हैं।

ऋग्वेद का स्कन्द स्वामी ने सुविस्तृत तथा विलक्षण भाष्य किया। इस भाष्य में प्रत्येक सूक्तों के आरम्भ में उस सूक्त के ऋषि और देवता का उल्लेख किया गया है। उसके बोधक प्राचीन अनुक्रमणि ग्रन्थों के श्लोक भी उद्धृत हैं। निघण्टु निरुक्त आदि वैदिक अर्थ के उपबोधक ग्रन्थों से उपयुक्त प्रमाण भी वहाँ सङ्कलित किये गये हैं। यह भाष्य अतीव सरल और अल्पाक्षर है। यहाँ संक्षेप से व्याकरण-विषयक तथ्यों का उल्लेख है। सायण भाष्य के प्रथमाष्टक के समान व्याकरण का अतिविस्तार से यहाँ प्रदर्शन नहीं किया गया है। सायणकृत ऋगभाष्य के ऊपर स्कन्द स्वामी के भाष्य का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। इसके अनेक उदाहरण हैं। स्कन्द स्वामी का भाष्य ऋग्वेद के चतुर्थाष्टक पर्यन्त ही उपलब्ध होता है। शेष आधे की पूर्ति अन्य दो आचार्यों ने की है। जिसका वर्णन आगे होगा। अनन्त शयन ग्रन्थावली में इस भाष्य का अब प्रकाशन क्रमशः आरम्भ हो चुका है।

पाठगत प्रश्न

297. भाष्य करने वाले कुछ विद्वानों के नाम लिखो?

298. स्कन्दस्वामी ने किस पर टीका लिखि?

299. ऋग्वेद संहिता का सर्वप्रथम भाष्य अभी किस का उपलब्ध होता है ?

300. स्कन्दस्वामी का जन्म कहाँ हुआ?

301. स्कन्द स्वामी के पिता का क्या नाम था?

302. हरि स्वामी के गुरु कौन थे?

303. शतपथ ब्राह्मण के विख्यात भाष्यकार कौन थे?

304. स्कन्द स्वामी ने किसका सुविस्तृत भाष्य किया?

3.1.2 नारायण

ऋग्वेदभाष्य में वेङ्कटमाधव ने लिखा कि-

> **''स्कन्दस्वामी नारायण उद्गीथ इति ते क्रमात्।**
> **चक्रुः सहैकमृग्भाष्यं पदवाक्यर्थगोचरम्''।।**

इससे ज्ञात होता है कि नारायण और उद्गीथ स्कन्द स्वामी के समय में ही हुए। नारायण ने ऋग्वेद भाष्य की रचना में स्कन्द स्वामी की सहायता की, यह वेङ्कट माधव कहते हैं। उद्गीथ का उल्लेख सायण और आत्मानन्द ने किया। उनकी भाष्य शैली स्कन्द स्वामी की भाष्य शैली की तरह है। श्लोक क्रम और शब्द से अनुमान लगाया जाता है कि ऋग्वेद के मध्यभाग पर नारायण ने अपना भाष्य लिखा। कुछ विद्वान साम भाष्यकार माध व के पिता नारायण तथा ऋग्वेद भाष्य के कर्त्ता नारायण को एक ही मानते हैं। इसके समय का कोई भी सुस्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है। इसका भी समय विक्रम की सातवीं शताब्दी ही प्रामाणित होता है।

पाठगत प्रश्न

305. नारायाण और उद्गीत किसके समय थे?

306. नारायण ने ऋग्वेद के भाष्य में स्कन्दस्वामी की सहायता की,यह किसका मत है?

307. नारायण किसके समय में हुए?

3.1.3 उद्गीथ

वेंकट माधव की कथा के अनुसार ज्ञात होता है कि उद्गीथ ने स्कन्द स्वामी के ऋग्भाष्य को लिखने में सहायता की। इस महापुरुष ने ऋग्वेद के अन्तिम भाग का भाष्य किया। प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर उसने अपने विषय में लिखा- वनवासीविनिर्गताचार्य उद्गीथ कृत ऋग्भाष्य में......अध्याय समाप्त इस कथन से होता है इसलिए उद्गीथाचार्य का वनवासियों के साथ सम्बन्ध था ऐसा प्रतीत होता है। प्राचीनकाल में आधुनिक कर्णाटक

टिप्पणी

का पश्चिम भूखण्ड 'वनवासीप्रान्त' इस नाम से विख्यात था। अत: कहा जाता है कि- उद्गीथाचार्य इसी प्रान्त के निवासी थे ऐसा अनुमान लगाया जाता है। इस महापुरुष के विषय में इससे अधिक कुछ भी ज्ञात नहीं है।

सायण और आत्मानन्द ने उद्गीथ का नामोल्लेख अपने भाष्य में किया। उनकी भाष्य शैली भी स्कन्द स्वामी की भाष्यशैली की तरह ही है। इसका प्रभाव सायण के भाष्य पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। सायण ने ऋग्वेद के इस मन्त्र भाष्य में (10/46/5) उद्गीथ की व्याख्या का उल्लेख किया। इससे उद्गीथ सायण के पूर्ववर्ती भाष्यकार सिद्ध होते हैं। यह व्याख्या उद्गीथ के भाष्य में उपलब्ध होती है। यह भाष्य ऋग्वेद के दसवें मण्डल के पाँचवे सूक्त से लेकर तिरासीवे (83) सूक्त के पाँचवे मन्त्रपर्यन्त है। 1934 ईसवी में लाहौर नगर के डी.ए.वी. महाविद्यालय के शोधविभाग ने इस भाष्य के प्रारम्भिक आधे भाग को प्रकाशित किया। अन्तिम आधा भाग अभी भी अमुद्रित है। सायण भाष्य के साथ उद्गीथ भाष्य की यदि तुलना करें तो ज्ञात होता है कि सायण ने भाष्य के लेखन के लिए उद्गीथ भाष्य में स्थित विपुलसाधनों का साधु उपयोग करके ही अपना भाष्य लिखा। अत एव तिलक वैदिक संशोधन मण्डल में प्रकाशित सायण भाष्य की त्रुटीयों तथा सन्दिग्ध पाठों के संशोधन के लिए उद्गीथ भाष्य से ही सहायता ली जाती है। एवं प्रसिद्ध सायण भाष्य के पाठ संशोधनार्थ भी इस भाष्य का अतीव महत्त्व है।

पाठगत प्रश्न

308. ऋग्वेद के अन्तिम भाग का भाष्य किसने किया?

309. प्राचीनकाल में आधुनिक कर्णाटक के पश्चिमीभूखण्ड का क्या नाम था?

310. उद्गीथाचार्य किस प्रान्त के प्राय: निवासी माने जाते हैं ?

311. 1934 ईस्वी में लाहौर नगर के डी.ए.वी. महाविद्यालय के शोधित विभाग ने किस भाष्य के प्रारम्भिक आधे भाग को प्रकाशित किया।

3.1.4 माधव भट्ट

इतिहासकार माधव-नामक चार भाष्यकारों के नामोल्लेख करते हैं। उनमें एक ने सामवेद संहिता और अन्य तीन ने ऋग्वेद पर भाष्य लिखा। कुछ के मत में माधव नामक कोई भी भाष्यकार नहीं हुआ। सायण अथवा वेङ्कट ही 'माधव' इस नाम विख्यात थे। अन्यों के मत में माधव सायण और वेङ्कट से भिन्न थे। माधव का ऋग्वेद पर विलक्षण पाण्डित्य दिखता है। सायण और वेङ्कट दोनों ने माधव के भाष्य का अनुसरण किया। अन्य भी एक माधव है। जिसकी ऋग्वेद के पहले अष्टक की टीका अभी ही मद्रास विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुई। अतीव सारगर्भित है यह टीका विस्तृत नहीं। तो भी मन्त्रों

के अर्थावबोधन में नितान्त महत्त्वपूर्ण है यह टीका पण्डित साम्बशिव शास्त्री वेङ्कटमाधव का जन्म बाहरवीं शताब्दी में हुआ ऐसा मानते हैं। वेङ्कट का भाष्य अतिसंक्षिप्त है। उन्होंने पर्यायवाची पदों को रख कर मन्त्रों के साथ अर्थ ग्रहण करने का प्रभूत प्रयत्न किया।

यह माधवभट्ट ऋग्वेद के महान् विद्वान् थे यहाँ पर सन्देह का अवसर नहीं है। इस टीका के लेखन से पूर्व ही उन्होंने ग्यारह अनुक्रमणी लिखी। जिनमे प्रत्येक अनुक्रमणी शब्द कोष के समान रह कर ऋग्वेद के शब्द और अर्थो को प्रकट करने में समर्थ है। इन उपलब्ध अनुक्रमणीयों में केवल दो ही अनुक्रमणी प्रकाशित हैं। वे नामानुक्रमणी और आख्यातानुक्रमणी नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके अध्ययन से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यहाँ ऋग्वेद के नाम और धातुओं का एकत्र संग्रह है। और भी अधिक अति महत्त्वपूर्ण अनुक्रमणी-निर्वचनानुक्रमणी-स्वरानुक्रमणी-छन्दानुक्रमणी आदि आज भी उपलभ्यमान नहीं होती हैं। इन अनुक्रमणियों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अनुक्रमणी 'स्वरानुक्रमणी भी उपलब्ध' नहीं होती है। इस ग्रन्थ से वैदिकस्वर का जितना ज्ञान हो सकता है उतना अन्य टीकाओं से नहीं हो सकता। इसके वैशिष्ट्य का सङ्केत वेदों के मर्मज्ञ विद्वान देवराज यज्वा ने पहले ही निघण्टु के निर्वचन से प्राप्त कर लिया था। इससे प्रतीतहोता है कि देवराजयज्वा माधव से भ्रान्ति शून्यता से भी परिचित नहीं थे। इस ग्रन्थ की प्रस्तावना में इन्होंने वेङ्कटमाधव का सङ्केत किया। यह हो सकता है कि यहाँ माधव कथन का वेङ्कटमाधव से ही अभिप्राय हो। इस ग्रन्थ के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि माधव के द्वारा निर्दिष्ट विषयों में एक भी निर्देश वेङ्कटमाधव के ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं होता है। और भी कुछ निर्देश सायण माधव के बृहद्भाष्य में ही मिलते हैं। यह ग्रन्थ उसकी स्वयं की रचना नहीं है। यदि यह समग्रग्रन्थ उपलब्ध हो जाए तो देवराजयज्वा के सारे निर्देश इस अभिनव माधव के ग्रन्थ में ही मिलने की सम्भावना है। इस ग्रन्थ का जितना अंश उपलब्ध हुआ है उसमें आधे से अधिक निर्देश मिलते हैं। इसलिए यह माधव वेङ्कटमाधव से भिन्न ही है यह प्रमाणित होता है।

पाठगत प्रश्न

312. इतिहासकार किन चार भाष्यकारों का नामोल्लेख करते हैं?

313. माधव का विलक्षण पाण्डित्य कहाँ दिखता है?

314. किन दो विद्वानों ने माधव भाष्य का अनुसरण किया?

3.1.5 वेङ्कट माधव

वेङ्कट माधव का सम्पूर्ण-ऋक्संहिता पर भाष्य प्रणीत है। कुछ आलोचक अनुमान लगाते

हैं कि इस विद्वान् ने ऋक्संहिता पर दो भाष्य लिखे। वेङ्ट माधव ने स्वरचित प्रथम भाष्य के अन्तिम भाग में अपने वंश का परिचय दिया। उसके अनुसार इस वेङ्कट माध व ने वसिष्ठ गोत्र में जन्म प्राप्त किया। इनके पूर्वज आन्ध्र प्रदेश में स्थित दक्षिणा पथीय चोल देश में रहते थे। इनके पिता वेङ्कटाचार्य और माता सुन्दरी देवी थी। इनका मातृगोत्र भी वसिष्ठ था। इनके एक सङ्कर्षण नामक अनुज भी थे। वेङ्कट माधव के वेङ्कट और गोविन्द नामक दो पुत्र भी थे। इनके काल का निर्णय करने के लिए एक ही उपाय है जिससे इनका समय विशेष रूप से निर्धारित किया जा सके।

माधव का भाष्य अत्यन्त संक्षिप्त है। **‘वर्जयन् शब्दविस्तारं शब्दैःकतिपयैरिति।’** यह लिखकर उन्होंने यह तथ्य स्वयं ने स्वीकार किया। इस भाष्य में केवल मन्त्रों के पदों की ही व्याख्या है। भाष्य के संक्षेप के लिए भाष्यकार ने मूल पदों का समावेश अत्यन्त अल्प ही किया। इस भाष्य के अध्ययन से मन्त्रों का अर्थ सरलता से ही ज्ञात हो सकता है। स्कन्द स्वामी के भाष्य की अपेक्षा यह भाष्य अतिसंक्षिप्त है। व्याकरण जन्य तथ्यों का निर्देश तो इस भाष्य में नहीं है। प्रायः सब जगह ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रामाण्य अच्छी तरह उल्लिखित है। जिससे माधव की ब्राह्मण ग्रन्थों के विषय में विशेष व्युत्पत्ति प्रतीत होती है। माधव ने कहा कि वेदों के गूढ अर्थ के बोधार्थ ब्राह्मण ग्रन्थ नितान्त उपयोगी हैं। इसलिए उनका कथन है कि-

‘संहितायास्तुरीयांशं विजानन्त्यधुनातनाः।
निरुक्तव्याकरणयोरासीत् येषां परिश्रमः॥
अथ ये ब्राह्मणार्थानां विवेद्गारः कृतश्रमाः।
शब्दरीतिं विजानन्ति ते सर्वं कथयन्त्यपि॥

माधवाचार्य की यही आस्था है ब्राह्मणग्रन्थों के प्रति। इसलिए यह भाष्य ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुकूल है। दिल्ली से मोतीलाल बनारसी दास ने यह भाष्य प्रकाशित किया। इस भाष्य के सम्पादक डॉ. लक्ष्मणस्वरूप हैं।

पाठगत प्रश्न

315. वेङ्ट माधव ने किस संहिता पर भाष्य लिखा?

316. वेङ्ट माधवचार्य ने किस गोत्र में जन्म लिया?

317. वेङ्ट माधव के पिता का क्या नाम था?

318. वेङ्ट माधव की माता का क्या नाम था?

319. वेङ्ट माधव के अनुज का क्या नाम था?

320. वेङ्ट माधव के कौन दो पुत्र थे?

3.1.6 आनन्द तीर्थ

आनन्द तीर्थ ही 'मध्व' नाम से सुप्रसिद्ध थे। यह मध्व वह है जिसने द्वैतवाद का प्रवर्तन किया। इन्होंने बहुत से ग्रन्थों की रचना की। आनन्द तीर्थ ने कतिपय वैदिक मन्त्रों का व्याख्यान भी किया। यह व्याख्या छन्दोबद्ध है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के कतिपय मन्त्रों के ऊपर ही यह व्याख्या है। इस सन्दर्भ में राघवेन्द्रयति का यह कथन यथार्थ रूप से प्रमाणित है कि – 'ऋक्शाखागत एक हजार एक सूक्तों में कोई चालीस सूक्तों की व्याख्या श्रीभगवत्पाद के द्वारा ही की गयी।'

श्रीमद् भगवद् गीता में आत्मा के विषय में श्रीकृष्ण का यह कथन है– 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य:' अर्थात् सभी वेद मेरा ही प्रतिपादन करते हैं। अत: वेदों में सर्वत्र नारायण का ही प्रतिपादन है इसलिए जो आनन्द तीर्थाचार्य का मत है वह सही तरह से प्रतिपादित है। अपने भाष्य के आरम्भ में आनन्द तीर्थाचार्य ने कहा कि–

'स पूर्णत्वात् पुमान् नाम पौरुषे सूक्त ईरित:।
स एवाखिलवेदार्थ: सर्वशास्त्रार्थं एव च॥'

अर्थात् नारायण पूर्ण पुरुष है। अत: पुरुष सूक्त में – 'सहस्रशीर्षा पुरुष:' इत्यादि ऋचाओं में वह ही पुरुष पद से अभिहित है। समस्त वेदों और शास्त्रों का अभिप्राय उसी पूर्ण पुरुष का प्रतिपादन है। इसी दृष्टी से ही वैष्णवाचार्य आनन्द तीर्थ ने ऋग्वेद के मन्त्रों का अर्थ किया। जयतीर्थ के कथनानुसार इस भाष्य में आधिभौतिक और आधिदैविक अर्थ के अतिरिक्त आध्यात्मिक अर्थ का भी सुन्दर प्रतिपादन है– और ऋग्वेद का अर्थ तीन प्रकार से होता है। एक प्रसिद्ध अग्निरूप, दूसरा उसके अन्तर्गत ईश्वर के लक्षण, और तीसरा आध्यात्मरूप, तथा यह भाष्य भी तीनों अर्थों को दृष्टि में रख कर किया गया है।' विलक्षण है यह ऋग्वेद का माधव भाष्य। द्वैत वादियों में अतीव प्रसिद्ध है यह भाष्य। इसके मध्यभाग के रचनाकाल से तीस वर्ष बाद प्रसिद्ध मध्वाचार्य ने इसकी जयतीर्थ टीका लिखी। जयतीर्थ टीका की विवृति 1718 विक्रमी सम्वत में नरसिंह ने लिखी। नारायण ने भी अपर विवृति 'भावरत्नप्रकाशिका' –लिखी। आनन्द तीर्थ का आविर्भाव काल विक्रमी सम्वत बारह सौ पचपन से तेरह सौ पैंतीस तक (1255– 1335) स्वीकार किया जा सकता है। सुना जाता है कि आनन्द तीर्थ अस्सी वर्ष जीये।

पाठगत प्रश्न

321. आनन्द तीर्थ किस नाम से सुप्रसिद्ध थे?

322. आनन्द तीर्थ का यह व्याख्या कैसा है?

323. 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य:' यह वचन कहां का है?

324. आनन्द तीर्थाचार्य किस सम्प्रदाय के थे?

325. व्याख्याकार नारायण कौन थे?

326. मध्वने द्वैतवाद का प्रवर्तन किया या नहीं?

327. मध्वभाष्य किस वेद पर है?

328. जय तीर्थ के टीका की विवृति किसने और कब की?

329. आनन्द तीर्थ का आविर्भाव का काल बताओ?

3.1.7 सायणाचार्य

आचार्य सायण विजय नगर के संस्थापक महाराज बुक्क और महाराज हरिहर के अमात्य और सेनानी थे। सायण वैदिक सम्प्रदाय के यथार्थ ज्ञाता थे। अतएव उनका वेदभाष्य वेदार्थ के सभी भाष्यों में श्रेष्ठ भाष्य है। सायणाचार्य दुर्ग इस वेददुर्ग में सरलता से ही वेदार्थ के जिज्ञासु का प्रवेश करवाते हैं।

महाराज बुक्क के प्रधानमन्त्री का पद सायणाचार्य ने 1394 ईस्वी 1378 ईस्वी तक अलंकृत किया। तदनन्तर उन्होंने 1379 ईस्वी से 1387 ईस्वी अर्थात् मृत्युपर्यन्त महाराज हरिहर के मन्त्रिपद को अलंकृत किया। अत: चोदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध ही सायण भाष्य का रचनाकाल था ऐसी कल्पना की जा सकती है। सायणाचार्य के ज्येष्ठ भ्राता माधवाचार्य थे। माधवाचार्य ने ही अपने भाई सायणाचार्य को व्याख्या कार्य में प्रवृत्त होने के लिए प्रेरित किया। भाई से प्रेरित होकर ही सायणाचार्य व्याख्या कार्य में प्रवृत्त हुए। इसलिए यह भाष्य माधवीय इस नाम से विश्व प्रसिद्ध हुआ।

पाठगत प्रश्न

330. आचार्य सायण किन दो राजाओं के अमात्य और सेनानी थे?

331. आचार्य सायण के भाष्य का नाम बताओ?

332. महाराज बुक्क का प्रधानमन्त्री पद सायणाचार्य ने कब से कब तक अलंकृत किया?

333. सायण भाष्य का रचना काल बताइए?

334. सायणाचार्य के भाई का नाम बताओ?

335. महाराज हरिहर का मन्त्रीपद सायणाचार्य ने कब अलंकृत किया?

3.2 सामवेद के भाष्यकार

3.2.1 माधव

यह माधव सामसंहिता के प्रथम भाष्यकार प्रतीत होते हैं। उसने सामवेद के दोनों खण्ड- छन्दार्चिक और उत्तरार्चिक पर भाष्य किया। इस भाष्य का नाम 'विवरण' है। छन्दार्चिक भाष्य का नाम 'छन्दसिकाविवरण' तथा उत्तरार्चिकभाष्य का नाम 'उत्तरविवरण' है। आज तक यह भाष्य अमुद्रित अवस्था में ही है। सत्यव्रतसामश्रयी महोदयने इस भाष्य का अन्वेषण किया। उन्होंने सर्व प्रथम अपने सायण भाष्य के संस्करण में इस भाष्य का भी कुछ अंशं टिप्पणी-रूप में सन्निविष्ट किया।

माधव के पिता का नाम नारायण था। कतिपय विद्वान् इनको स्कन्द स्वामी के ऋग्भाष्य के पूरक और सहायक नारायण से अभिन्न मानते हैं। किन्तु उन दोनों की अभिन्नता के प्रदर्शक प्रबल प्रमाण का आज भी अभाव है। तो भी इनका आविर्भावकाल निश्चित रूप से बताया जा सकता है। बाहरवीं शताब्दी में देवराजयज्वा ने अपने निघण्टु भाष्य की भूमिका में किसी माधव का निर्देश किया। सम्भवत: यह माधव ही सामभाष्य का-रचयिता है। इतना ही नहीं अपितु बाणभट्ट की कादम्बरी का भी यह श्लोक है-

'रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तम: स्पृशे।
अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नम:।।

माधव के 'सामविवरण' में यह मङ्गलाचरण के रूप में उपलब्ध होता है। इस श्लोक के 'त्रयीमयाय' इस शब्द से ज्ञात होता है कि यह श्लोक किसी वैदिकग्रन्थ का ही मङ्गलाचरण था। अत: अनुमान किया जाता है कि- सर्वप्रथम सामभाष्य के मङ्गलार्थ माधवने यह श्लोकरचा। भाष्यकार माधव बाणभट्ट के कोई पूज्याचार्य भी हो सकते हैं। बाणभट्ट के पूर्वज भी वेद में पारङ्गत विद्वान् थे। हर्षचरित से प्रमाणित होता है कि बाणभट्ट के गुरु भी कोई वेदवेदाङ्ग में पारङ्गत विद्वान् ही थे। यह घटना पूर्वानुमान को ही पोषित करती है। अत: बाणभट्ट के पूर्ववर्ती माधव का समय विक्रम की सातवीं सदी स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसलिए यदि बाणभट्ट सातवीं शताब्दी ईस्वी के प्रारम्भकाल में थे तो माधव का समय छठी शताब्दी कहा जा सकता है। माधव का यह भाष्य अतीव महत्त्वपूर्ण है।

पाठगत प्रश्न

336. सामसंहिता के प्रथम भाष्यकार कौन थे?

337. माधवकृत भाष्य का क्या नाम है?

338. 'विवरण' इस भाष्य का अन्वेषण कर्ता कौन है?

339. माधव के पिता का नाम बताओ?

340. 'त्रयीमयाय'-इस शब्द क्या ज्ञात होता है?

3.2.2 गुणविष्णु

गुणविष्णु ने साम मन्त्रों की व्याख्या रची। उस व्याख्या की मिथिला तथा बङ्गप्रदेश में अतिप्रसिद्धि है। उन्होंने नित्यनैमित्तिक विधनों के उपयोगी साम मन्त्रों की व्याख्या करके अति महत्त्वपूर्ण कार्य किया। ये महापुरुष मिथिला के बङ्गप्रदेश के किसी भाग में रहते थे। इनका छान्दोग्य मन्त्र भाष्य पर एक सुन्दर संस्करण था। वह भाष्य 'कलकत्ता-संस्कृत-परिषद्' नामक संस्था से प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थ की प्रस्तावना में विद्वानों के सम्पादक गुणविष्णु के विषय में अनेक ज्ञातव्य विषयों का विवेचन किया गया है।

यह छान्दोग्य मन्त्र भाष्य सामवेद की कौथुम शाखा पर है। ('हलायुध का काण्व के विषय में तथा कौथुम के विषय में गुणविष्णु के द्वारा') 'सायणकृत मन्त्र भाष्य का आधार गुणविष्णु का भाष्य ही है' ऐसा आलोचक कहते हैं। हलायुध ने भी इस ग्रन्थ का उपयोग किया यह भी प्रमाण मिलता है। गुणविष्णु बल्लाल सेन अथवा उसके प्रसिद्ध पुत्र लक्ष्मण सेन के राज्यकाल में हुए थे। इसलिए इन गुणविष्णु का समयविक्रम की बाहरवीं शताब्दी का अन्तिम भाग तथा तेरहवीं शताब्दी का आदि भाग निश्चित होता है।

गुणविष्णु का 'छान्दोग्यमन्त्रभाष्य' नितान्त विख्यात ग्रन्थ है। इनके दो अन्य ग्रन्थ-मन्त्र ब्राह्मण भाष्य, और पारस्करगृह्यसूत्र भाष्य भी हैं। इससे ज्ञात होता है कि ये उस समय के प्रख्यात वैदिक विद्वान् थे।

पाठगत प्रश्न

341. गुणविष्णु का साम मन्त्र व्याख्या कहाँ अतिप्रसिद्ध है?

342. गुणविष्णु ने किसकी व्याख्या लिखा?

343. गुणविष्णु कहाँ के थे?

344. छान्दोग्य मन्त्र भाष्य का एक सुन्दर संस्करण कहाँ से प्रकाशित हुआ?

345. गुणविष्णु किसके राज्यकाल में थे?

346. बल्लाल सेन के पुत्र का क्या नाम था?

347. गुणविष्णु का समय बताओ?

348. गुणविष्णु का नितान्त विख्यात ग्रन्थ कौन सा है?

3.3 शुक्ल यजुर्वेद के भाष्यकार

3.3.1 उव्वट

उव्वट काश्मीर प्रदेशीय विद्वान् थे ऐसा बहुत से विद्वानों का मत है। इनका कहीं कहीं 'औबट:' और कहीं 'उवट' नाम भी उपलब्ध होते हैं। उव्वट ने यजुर्वेद संहिता पर अपने नाम का भाष्य लिखा जो आज भी प्राप्त होता है। इनके पिता का नाम 'वज्रट' था। 'ये मम्मट के भ्राता थे' यह सुधासागरकार भीमसेन का मत है। परन्तु उवट के विषय में कुछ तथ्य प्राप्त है। उनके द्वारा रचित यजुर्वेद संहिता भाष्य में एक पद्य उपलब्ध होता है-

> **'ऋष्यांदीनश्च पुरस्कृत्य अवन्त्यामुवटो वसन्।**
> **मन्त्रभाष्यमिदं चक्रे भोजे राष्ट्रं प्रशासति॥'**

उसी भाष्य की एक अन्य पुस्तक में एक और पद्य उपलब्ध होता है-

> **'आनन्दपुरवास्तव्यवज्रटाख्यस्य सूनुना।**
> **मन्त्रभाष्यमिदं क्लृप्तं भोजे पृथ्वीं प्रशासति॥'**

इन दोनों पद्यों के द्वारा 'उव्वट' वज्रट के पुत्र तथा भोज के समकालिक थे ऐसा सिद्ध होता है। यदि ये उव्वट भीम सेन के कथनानुसार मम्मट के भ्राता होते तो मम्मट के जैयटपुत्र होने से उनके भाई उव्वट के भी जैयटपुत्र होते। तब उव्वट के श्लोकोक्त वज्रट किसी भी प्रकार पुत्र नहीं कहे जा सकते। यद्यपि काश्मीर देशीय जैयटगोत्र के वज्रट के दत्तक पुत्र थे ये उव्वट इस कल्पना में जैयटपुत्र उव्वट का वज्रट पुत्रत्व उपपद्यमान होता है, तथापि उनका भोज का समकालिकत्व अनुपपन्न होता है। क्योंकि उनके ज्येष्ठ भ्राता मम्मट भोजराज से अर्वाचिन थे। अत: उनके भ्राता उव्वट भी भोजराज से अर्वाचिन सिद्ध होते हैं। अवन्ती में (उज्जयिनी) रहते हुए उन्होंने भाष्य का निर्माण किया एक जगह ऐसा उल्लेख है, गुजरात के आनन्दपुर में रहते हुए उन्होंने भाष्य लिखा ऐसा दूसरी जगह उल्लेख है, यह भी विप्रतिषिद्ध ही है। यदि उव्वट के पिता वज्रटआनन्दपुर में रहते थे उव्वटने तो उज्जयिनि में रहकर ही भाष्य लिखा ऐसी कल्पना की जाए तो भी वज्रट का काश्मीरिकत्व सन्देहित होता है।

महाराज भोज धारा नगर के शासक और परमार वंशी थे। उसने 1018 ईश्वी में सिंहासना रूढ होकर 1063 ईश्वी पर्यन्त राज्य किया इसलिए उसका काल ग्याहरवीं सदी है। भोज का कविजन प्रियत्व प्रसिद्ध है। शेखगिरि शास्त्री लिखते हैं कि यह भोज धारा से अपनी

टिप्पणी

राजधानी उज्जयिनी में लाया ऐसा 'आइने अकबरी' पुस्तक में लिखा हुआ है। इसलिए पूर्व उल्लिखित भोज राज का समय 1018 ईश्वी से 1063 ईश्वी तक था। अतः भोज राज के समकालिकत्व से उव्वट ग्याहरवीं सदी के पूर्वार्द्ध में हुए ऐसा निश्चय से कहा जा सकता है। इसका भाष्य लघ्वक्षर होते हुए भी अतीव उज्ज्वल है, तथा सरल और प्रामाणिक है। इस भाष्य में अनेक मन्त्रों का अध्यात्मपरक अर्थ दर्शित है। इससे प्रतीत होता है कि ये मध्ययुग के एक नितान्त प्रौढ वेदज्ञ थे। इनकी अन्य कृतियों में- (क) ऋक्प्रातिशाख्य की टीका, (ख) यजुःप्रातिशाख्य की टीका, (ग) ऋक्सर्वानुक्रमणी भाष्य, और (घ) ईशावास्यो पनिषद्-भाष्य ये चार ग्रन्थ नितान्त प्रौढ, प्रसिद्ध और प्रकाशित हैं।

पाठगत प्रश्न

349. उव्वट किस देश के विद्वान् थे?

350. उव्वट ने यजुर्वेदसंहिता नामक अपना भाष्य लिखा अथवा नहीं?

351. उव्वट के पिता का नाम बताओ?

3.3.2 महीधर

वैदिक काल से ही संस्कृत विद्या का अन्यतम प्रधान केन्द्र काशी थी ऐसा हम सब जानते ही हैं। यहीं गौतम आदि तथा अन्य बहुत से वेदों के मन्त्रद्रष्टा विद्वान हुए। इतिहास पुराणों में भी विशिष्ट पण्डितों से सुसज्जित काशी नगरी का स्पष्ट वर्णन है।

आचार्य महीधर का भी जन्म इसी काशी नगरी में हुआ था। वहां उनके वासस्थान के समीप में एक पुष्करिणी आज है ऐसा परम्परा से सुनते आरहें हैं। ये नागर-ब्राह्मण वंशीय विद्वान् थे। उन्होंने काशी में ही अध्ययन करके विद्वज्जनों में प्रतिष्ठा प्राप्त की। उसके बाद कतिपय ग्रन्थों की रचना करके महीधर काशीनरेश की शरण में गये। इसीलिए प्रायः राजाश्रितः पण्डितः 'महीधरः' इस उक्ती से उनका बोध होता है। वहीं उन्होंने वेददीप नामक सामभाष्य की रचना सम्पादित की। यद्यपि यह भाष्य मौलिक नहीं है तथापि अर्थ की विशदता की दृष्टी से नितान्त ग्राह्य है। इस सामभाष्य की पाण्डुलिपि सरस्वती भवन पुस्तकालय में संगृहीत है। इस भाष्य पर उव्वट भाष्य की स्पष्ट छाया दीखती है। कुछ जगह इस विद्वान् ने निरुक्त श्रौतसूत्रादि ग्रन्थों से उदाहरण देकर याज्ञिक क्रिया का विधानकिया। ये काशीवासी महीधर तन्त्र रहस्यज्ञ थे। ये महीधर वैदिक साहित्य में पारङ्गत थे। महीधराचार्य प्रतिभावान् और विद्वान् थे। तन्त्रादि रहस्यमय शास्त्रों का भी उन्होंने सम्यक् अध्ययन किया। उन्होंने विनय एवं भक्ति के द्वारा गुरुजनों को प्रसन्न किया। जिससे उन्होंने इन्हें गुह्य से भी गुह्यतर रहस्यमयी विषय-वस्तूओं का उपदेश दिया। सर्ववेद पारङ्गत इस परमविद्वान् ने आचार्य की उपाधि प्राप्त की। महीधर ने 'मन्त्रमहोदधि'-नामक तन्त्र रहस्य

विवेचक एक ग्रन्थ विक्रम की 1645 शताब्दी (1588 ई) में लिखा। इस ग्रन्थ के अन्त में भाष्यकार ने यह लिखा–

'अब्दे विक्रमतो जाते बाणवेदनृपैर्मिते।
ज्येष्ठाष्टम्यां शिवस्याग्रे पूर्णो मन्त्रमहोदधिः॥'

अतः इसके भाष्यकार का समयसोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध निश्चित होता है। उव्वटाचार्य से ये पन्द्रह वर्षबाद में हुए। महीधराचार्य नरसिंह के उपासक थे। इसका उल्लेख बहुत से ग्रन्थों में प्राप्त होता है।

पाठगत प्रश्न

352. वैदिक काल से ही संस्कृत विद्या का अन्यतम प्रधानकेन्द्र क्या था?
353. काशी में उत्पन्न कुछ विद्वानों के नाम लिखो?
354. नागर–ब्राह्मणवंशीय विद्वान् कौन थे?
355. महीधरकाशी में अध्ययन समाप्त करके किसकी शरण में गये?
356. महीधर ने किस वेद का भाष्य लिखा?
357. महीधर तन्त्र रहस्यज्ञ थे अथवा नहीं?
358. 'मन्त्रमहोदधि'– यह ग्रन्थ किसने लिखा?
359. महीधर का समय बताओ?
360. महीधर किसके उपासक थे।

3.3.3 हलायुध

सायण के परवर्त्ती अनन्ताचार्य–आनन्दबोध आदि बहुत से विद्वानों ने काण्व संहिता पर भाष्य किये। किन्तु सायण के पूर्ववर्त्ती प्रधानाचार्यों में हलायुधने ही शुक्ल यजुर्वेद की काण्व संहिता पर विशिष्ट भाष्य रचा। इस भाष्य का नाम 'ब्राह्मणसर्वस्वम्' है। भाष्य के प्रारम्भ में ही हलायुध अपने विषय में कुछ लिखा। बाल्यकाल में ही हलायुध राज पण्डित हो गये थे। नवयौवन में उन्होंने श्वेतछत्र धारण का अधिकार प्राप्त किया। वृद्धावस्था में राजा लक्ष्मण सेन के धर्म अधिकारिपद पर वे नियुक्त हुए।

'बाल्ये ख्यापितराजपण्डितपदं श्वेतार्चिबिम्बोज्ज्वल–
च्छत्रोत्सिक्तमहामहस्तमुपदं दत्वा नवे-यौवने।
यस्मै यौवनशेषयोग्यमखलक्ष्मापालनारायणः
श्रीमान् लक्ष्मणसेनदेवपतिर्धमाधिकारं ददौ॥

राजा बल्लालसेन के बाद उनके पुत्र 'लक्ष्मणसेन' ने अतीवयोग्यतापुर:सर गौडक्ष्माकी रक्षा की। ग्यारह सौ सत्तर ईश्वी में ये राजसिंहासन पर आरूढ हुए (द्रष्टव्य है- प्राचीन भारत का इतिहास- स्मिथ)। लक्ष्मणसेन ने तीस वर्ष (30 ब.) राज्य किया। आर्यों को मुक्त हाथ से दान दिया। वे पराक्रम में इन्द्र के तुल्य थे। उनके राज्य में सभी सुख से रहते थे। ये तीस वर्ष शासन करके बारहवीं शताब्दी में परलोक सिधारे थे। हलायुध गौड क्षितिपाल लक्ष्मण सेन के धर्माध्यक्ष थे। लक्ष्मण सेन का समय वि.स. (1227-1237 (ईशवी 1170-1200) है। अत: हलायुध भी तत्कालिक ही थे।

हलायुध उस काल के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् थे। हलायुध ने 'ब्राह्मण सर्वस्व' ग्रन्थ लिखा। ये हलायुध शैव दर्शन के आचार्य थे। ये वेद-मीमांसा मर्मज्ञ और वेदपारङ्गत थे। विशेषत: शैव-वैष्णवागम के रहस्यज्ञ विद्वान् थे। इनकी ख्रतियों में ब्राह्मण सर्वस्व, मीमांसा सर्वस्व, वैष्णव सर्वस्व, शैव सर्वस्व, और पण्डित सर्वस्व ये पांच ग्रन्थ नितान्तप्रौढ और प्रसिद्ध थे। हलायुध अपनी योग्यता के बल से गौडराज्याधिपति लक्ष्मणसेन के सभापण्डित और धर्माध्यक्ष बने थे।

पाठगत प्रश्न

361. हलायुध ने किस वेद की संहिता पर अपना विशिष्ट भाष्य रचा?

362. हलायुध के भाष्य का क्या नाम है?

363. लक्ष्मणसेन ने कितने वर्ष राज्य किया?

364. लक्ष्मणसेन का समय बताओ?

365. हलायुध किस दर्शन के आचार्य थे?

366. हलायुध के प्रसिद्ध ग्रन्थ कौन से हैं?

3.3.4 भट्ट भास्कर

भट्ट भास्कर के समय का निर्धारण वैदिकभाष्यकारों के इतिहास के लिए नितान्त आवश्यक है। सायणाचार्य ने अपने भाष्य में भट्ट भास्कर मिश्र का स्मरण किया। इससे ज्ञात होता है कि वे विक्रम से पाँच सौ वर्ष पूर्व वर्ती थे। सायण के पूर्ववर्ती लक्ष्मणापर नामक वेदाचार्य ने सुदर्शन मीमांसा ग्रन्थ में न केवल भटभास्कर मिश्र का नामोल्लेख किया, अपितु उन्होंने उनके ज्ञान यज्ञ नामक भाष्य ग्रन्थ का भी उल्लेख किया। 'तत्र भाष्यकृता भास्करमि श्रेण ज्ञानायज्ञाख्ये भाष्ये एतत्प्रमाण व्याख्या नसम ये चरणमिति देवता विशेष इति तदनुगुणमेव व्याख्यातम्।। (सुदर्शनमीमांसा पृ.4)। देवराज यज्वा ने भी अपने ग्रन्थ में इस भाष्य को उद्धृत किया। प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् हरदत्त ने एकाग्नि काण्ड के अपने

भाष्य में भास्करकृत भाष्य से सहायता प्राप्त की थी। अतः भास्कर मिश्र का समय विक्रम की ग्याहरवीं शताब्दी कहा जा सकता है। हरिदत्त ने अपने भाष्य में आर्यभट्टीय-अमरकोष-काशी का आदि ग्रन्थों का नामोल्लेख किया। इससे भी हरदत्तादिभाष्य कारों से इनका पूर्वकालिकत्वं प्रतीत होता है। यह प्रमाण भी पूर्वकथित समय को सिद्ध करता है।

भट्टभास्कर ने तैत्तिरीय संहिता पर ज्ञान यज्ञ नामक भाष्य लिखा। यह भाष्य बहुत से तथ्यों द्वारा समृद्ध है। प्रमाणपुर:सर कतिपय वैदिक ग्रन्थों के मन्त्रों के उद्धरण इस भाष्य में उपस्थापित हैं। विद्वान् भट्टभास्कर ने लुप्तनिघण्टुग्रन्थ के उद्धरण संगृहीत किये। उसने मन्त्रों के अर्थप्रदर्शन के समय विभिन्न आचार्यों के मत भी प्रदर्शित किये। इस भाष्य में न केवल यज्ञपरक अर्थ का निर्देशन है, अपितु अध्यात्म और अधिदैव पक्षों के अर्थ का भी प्रदर्शन किया गया है। जैसे- 'हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसत्' इस प्रसिद्ध मन्त्र में 'हंस'-पद की तीन प्रकार से व्याख्या की गयी। वह इस प्रकार है= अधियज्ञ पक्ष में हंसपद की व्याख्या - 'हन्ति पृथिवीमिति हंसः' अधिदैव पक्ष में -हंसपद का अर्थ आदित्य होता है, तथा अध्यात्म पक्ष में - 'हंस' - पद का अर्थ 'आत्मा' किया गया। अतः इस भाष्य का वैदिक साहित्य में अतीव महत्त्व है।

3.4 अथर्व वेद के भाष्यकार

3.4.1 गोविन्द स्वामी

तेहरवीं शताब्दी में उत्पन्न 'दैव' पद की टीका 'पुरुषाकार' है। इस टीका के कर्त्ता श्रीकृष्ण लीलांशुक मुनि थे। श्रीकृष्ण लीलांशुक मुनि ने 198 कारिकाओं की टीका में गोविन्द स्वामी का नामोल्लेख किया। यह ग्रन्थ अनन्तशयन ग्रन्थ माला से प्रकाशित है। यह उद्धरण माधवीयधतुवृत्ति में भी मिलता है। बौधयनीय धर्म विवरण के भी कर्ता सम्भवतः ये ही थे। इस ग्रन्थ में कुमारिल तथा उसके ग्रन्थ तन्त्रवार्तिक के भी उद्धरण उपलब्ध होते हैं। इसलिए इनका समय आठवीं शताब्दी के बाद तथा तेहरवीं शताब्दी के पूर्व अर्थात् सम्भवतः दशवीं शताब्दी कहा जा सकता है।

पाठगत प्रश्न

367. 'दैव' पद की कौन सी टीका है?

368. पुराषाकार टीका के कर्त्ता कौन थे?

369. पुरुषाकार यह ग्रन्थ कहां से प्रकाशित हुआ था?

370. गोविन्द स्वामी का काल बताओ?

3.4.2 षड्गुरु शिष्य

इस विद्वान टीकाओं की सङ्ख्या कम नहीं है। इस विद्वान् ने ऐतरेयब्राह्मण, ऐतरेयारण्यक, आश्वलायन श्रौतसूत्र, और आश्वलायन गृह्यसूत्र की व्याख्या की। वेदान्तदीपिकाख्य कात्यायन की सर्वानुक्रमणि की व्याख्या इस विद्वान् की है जो कि उसके सरस रचना कौशल के द्वारा अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह व्याख्या आक्स्फोर्ड-विश्वविद्यालय के द्वारा सुसम्पादित एवं प्रकाशित है। ग्रन्थकार ने स्वयं इस टीका का रचनाकाल 1234 सं. तथा तदनुसार 1177ई. लिखा। अत: सद्गुरु शिष्य का समय बाहरवीं शताब्दी का पूर्वार्ध ही है, ऐसा निश्चय से कहा जा सकता है।

पाठगत प्रश्न

371. सद्गुरु शिष्य ने किनकी व्याख्या लिखी?

372. सर्वानुक्रमणी व्याख्या किसने सुसम्पादित की?

पाठ का सार

इस पाठ में हमने ऋक्सामयजुरथर्व वेदों के भाष्यकारों के विषय में विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया। ऋग्वेद के भाष्यकारों में प्रसिद्ध हैं स्कन्दस्वामी-नारायणोद्गीथ-माधवभट्ट-वेङ्कटमाधव-आनन्दतीर्थ-सायणाचार्य आदि। उनके जन्मस्थान जन्म काल और उनके द्वारा किये गये वेदभाष्यों के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। और उसके बाद हमने माधव और गुणविष्णु इन दोनों सामवेद के भाष्यकारों का परिचय प्राप्त किया। और उनके काल आदि के विषयमें बहुत सी चर्चा की। उसके बाद उव्वट-महीधर-हलायुध-भट्ट भास्कर आदि शुक्लयजुर्वेद के भाष्यकारों के विषय में ज्ञान प्राप्त किया। और उनमे उव्वट के काल के विषय में प्रवर्तमान विवाद का अवलोकन किया। तदनन्तर अथर्व वेद के भाष्यकार गोविन्द स्वामी और षड्गुरुशिष्य के देश काल आदि के विषय में जाना। यद्यपि इनसे अतिरिक्त भी अनेक वेद भाष्यकार हैं तो भी ये ही अधिक प्रसिद्ध हैं। अत: इनके जीवनावलोकन के साथ ही हमने वेदभाष्यकारों का सामान्य ज्ञान इस पाठ से प्राप्त किया। और उनके द्वारा लिखित भाष्यों में कौन से प्रकाशित हैं और कौन से अभी तक अप्रकाशित हैं यह भी जाना।

पाठान्त प्रश्न

373. स्कन्द स्वामी की उपल्ब्धियों का कीर्तिका वर्णन करो?

वेदों के भाष्यकार

374. माधवभट्ट के देशकाल और कीर्ति का परिचय लिखो?

375. आनन्द तीर्थाचर्य का परिचय लिखो?

376. सायणाचार्य की कीर्ति का वर्णन करो?

377. गुणविष्णु के देशकाल और कीर्ति के परिचय की व्याख्या करो?

378. उव्वट के विषय में संक्षेप से लिखिए?

379. हलायुध की कीर्ति की व्याख्या कीजिए?

380. भट्टभास्कर का परिचय दीजिए?

381. गोविन्द स्वामी के विषय में संक्षेप से लिखिए?

टिप्पणी

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर (ऋग्वेद के भाष्यकार)

382. स्कन्दस्वामी-नारायण-उद्गीथ-माधवभट्ट-वेङ्कटमाधव-आनन्दतीर्थ-आत्मानन्द-सायण आदि भाष्यकारों में सुप्रसिद्ध पण्डित हैं।

383. स्कन्द स्वामी ने निरुक्त पर टीका लिखी।

384. ऋग्वेद संहिता के सर्वप्रथम भाष्यकार स्कन्द स्वामी थे।

385. स्कन्दस्वामी का जन्म गुजरात की विद्यापीठ प्राचीन काल की विख्यात राजधानी वल्लभी में हुआ।

386. स्कन्दस्वामी के पिता का नाम भर्तृध्रुव था।

387. हरिस्वामी के गुरु स्कन्द स्वामी थे।

388. शतपथब्राह्मण के विख्यात भाष्यकार स्कन्द स्वामी थे।

389. स्कन्द स्वामी ने ऋग्वेद के सुविस्तृत भाष्य को रचा।

उत्तर (नारायण)

390. नारायण और उद्गीथ स्कन्द स्वामी के समय में ही थे।

391. नारायण ने ऋग्वेद के भाष्य में स्कन्द स्वामी की सहायता की यह वेङ्कट माध व का मत है।

392. नारायण का समय विक्रम की सातवीं शताब्दी ही प्रामाणित होता है।

टिप्पणी

उत्तर (उद्गीथ)

393. ऋग्वेद के अन्तिम भाग का भाष्य उद्गीथ ने किया था।

394. प्राचीन काल में आधुनिक कर्णाटक का पश्चिमी भूखण्ड 'वनवासीप्रान्त' नाम से विख्यात था।

395. उद्गीथाचार्य 'वनवासीप्रान्त' के प्राय: निवासी थे।

396. उन्नीस सौ पैंतीस ईश्वी में लाहौर नगर के डी.ए.वी. महाविद्यालय के शोधित विभागने इस भाष्य का ऋग्वेद का प्रारम्भिक अर्द्ध भाग को प्रकाशित किया था।

उत्तर (माधवभट्ट)

397. इतिहास कार माधव-नामक चार भाष्यकारों का नामोल्लेख करते हैं।

398. माधव का ऋग्वेद पर विलक्षण पाण्डित्य दिखता है।

399. सायण और वेङ्कट दोनों ने ही माधव के भाष्य का अनुसरण किया।

उत्तर (वेङ्डकट माधव)

400. वेङ्कट माधव ने सम्पूर्ण ऋक्संहिता पर अपना भाष्य लिखा।

401. वेङ्कट माधव ने वसिष्ठ गोत्र में जन्म ग्रहण किया था।

402. वेङ्कट माधव के पिता वेङ्कटाचार्य थे।

403. वेङ्कट माधव की माता सुन्दरी देवी थी।

404. वेङ्कट माधव के एकसङ्कर्षण नामक अनुज भी थे।

405. वेङ्कट माधव के वेङ्कट और गोविन्द नामक दो पुत्र थे।

उत्तर (आनन्द तीर्थ)

406. आनन्द तीर्थ ही मध्व नाम से सुप्रसिद्ध थे।

407. आनन्द तीर्थ का यह व्याख्यान छन्दो बद्ध है।

408. 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य:' यह वचन श्रीमद्भगवद् गीता में उपलब्ध होता है।

409. आनन्दतीर्था चार्य वैष्णव सम्प्रदाय के थे।

410. नारायण पूर्ण पुरुष है।

411. मध्व ने द्वैतवाद का प्रवर्तन किया।

412. मध्व का भाष्य ऋग्वेद पर है।

413. जयतीर्थ टीका की विवृति 1718 विक्रमी सम्वत में नरसिंह ने लिखी।

414. आनन्द तीर्थ का आविर्भाव काल विक्रमी सम्वत बारह सौ पचपन से तेरह सौ पैतीस तक था।

उत्तर (सायणाचार्य)

415. आचार्य सायण विजय नगर के संस्थापक महाराज बुक्क और महाराज हरिहर के अमात्य और सेनानी थे।

416. आचार्य सायण का वेदभाष्य है।

417. महाराज बुक्क के प्रधनमन्त्री पद को सायणाचार्य ने 1364 ईस्वी से 1378 ईस्वी तक अलंकृत किया।

418. चौदहवीं शताब्दी ईस्वी का उत्तरार्द्ध ही सायण के भाष्य का रचना काल कहा जा सकता है।

419. सायणाचार्य के ज्येष्ठ भ्राता का नाम माधवाचार्य था।

420. सायणाचार्य ने 1379 ईस्वी से 1389 ईस्वी पर्यन्त महाराज हरिहर के मन्त्री पद को मृत्यु पर्यन्त अलङ्कृत किया।

उत्तर (माधव)

421. माधव साम संहिता के प्रथम भाष्यकार थे।

422. माधव कृत भाष्य का नाम विवरण है।

423. 'विवरण' इस भाष्य के अन्वेष्टा सत्यव्रत सामश्रयी महोदय हैं।

424. माधव के पिता का नाम नारायण था।

425. 'त्रयीमयाय' - इस शब्द से ज्ञात होता है कि यह श्लोक किसी वैदिक ग्रन्थ का ही मङ्गलाचरण था।

उत्तर (गुण विष्णु)

426. गुण विष्णु के साम मन्त्र व्याख्यान का नाम मिथिला और बङ्गप्रदेश में अतिप्रसिद्ध है।

427. गुणविष्णु ने साम मन्त्रों की व्याख्या की।

428. ये महापुरुष मिथिला अथवा बङ्गप्रदेश के किसी भाग में रहते थे।

429. छान्दोग्य मन्त्र भाष्य का एक सुन्दर संस्करण 'कलकत्ता-संस्कत परिषद्' संस्था से प्रकाशित हुआ।

430. गुणविष्णु का समय विक्रम की बारहवीं शताब्दी का उत्तर भाग था तेहरवीं शताब्दी का आदि भाग निश्चित किया जाता है।

431. बल्लालसेन के पुत्र का नाम लक्ष्मणसेन था।

432. गुणविष्णु का समय विक्रम की बारहवीं शताब्दी का उत्तर भाग तथा तेहरवीं शताब्दी का आदि भाग निश्चित किया जाता है।

433. गुणविष्णु का नितान्तविख्यात ग्रन्थहै छान्दोग्यमन्त्र भाष्य।

उत्तर (उव्वट)

434. उव्वट काश्मीर प्रदेश के विद्वान् थे।

435. उव्वट ने यजुर्वेद संहिता पर अपने नाम का भाष्य लिखा।

436. उव्वट के पिता का नाम वज्रट था।

उत्तर (महीधर)

437. वैदिक काल से ही संस्कृत विद्या की अन्यतम प्रधान केन्द्र काशी थी।

438. काशी में गौतम आदि और अन्य भी बहुत से विद्वान हुए।

439. महीधर नागर-ब्राह्मण वंशीय विद्वान् थे।

440. महीधर काशी में अध्ययन समाप्त करके काशी के राजा की शरण में गये।

441. महीधर ने सामवेद का भाष्य लिखा।

442. महीधर तन्त्ररहस्यज्ञ थे।

443. 'मन्त्रमहोधि' - यह ग्रन्थ महीधर ने लिखा।

444. महीधर भाष्यकार का समय सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध निश्चित होता है।

445. महीधर नरसिंह के उपासक थे।

उत्तर (हलायुध)

446. हलायुध का शुक्ल यजुर्वेद की काण्व संहिता पर अपना विशिष्ट भाष्य है।

447. हलायुध के भाष्य का नाम 'ब्राह्मणसर्वस्व' है।

448. लक्ष्मण सेन ने तीस वर्ष तक (30 ब.) राज्य किया।

449. लक्ष्मण सेन का समय वि.स. 1226-1237 (ईस्वी 1170-1200) है।

450. हलायुध शैव दर्शन के आचार्य थे।

451. हलायुध के ब्राह्मण सर्वस्व, मीमांसा सर्वस्व, वैष्णव सर्वस्व, शैव सर्वस्व, और पण्डित सर्वस्व ये पांच ग्रन्थ नितान्त प्रौढ एवं प्रसिद्ध ग्रन्थ थे।

उत्तर(गोविन्दस्वामी)

452. 'दैव'इस पद की टीका 'पुरुष कार' है।

453. पुराषाकार इस टीका के कर्ता श्रीकृष्ण लीलांशुक मुनि हैं।

454. पुरुषाकार यह ग्रन्थ अनन्तशायी ग्रन्थमाला में प्रकाशित है।

455. गोविन्दस्वामी का समय आठवीं शताब्दी के बाद तथा तेहरवीं शताब्दी से पूर्व अर्थात् सम्भवतः दशवीं शताब्दी कहा जा सकता है।

उत्तर(सद्गुरुशिष्य)

456. सद्गुरुशिष्य ने ऐतरेयब्राह्मण ऐतरेयारण्यक, आश्वलायन श्रौतसूत्र, और आश्वलायन गृह्यसूत्र की व्याख्या लिखी।

457. सर्वानुक्रमणी की व्याख्या आक्सफोर्ड-विश्वविद्यालय के द्वारा सुसम्पादित है।

तीसरा पाठ समाप्त

टिप्पणी

4

वेदभाष्य की पद्धति

प्रस्तावना

इस पाठ में वेद मन्त्रों का अर्थ कैसे किया जाता है इस विषय में संक्षेप में आलोचना प्रस्तुत है। निरुक्तकार आदि वेद के अर्थ कैसे प्रतिपादित करते हैं उसको भी यहां वर्णित किया है। वेद की कौन सी पद्धतियाँ है जिनसे विद्वान वेद मन्त्रों की व्याख्या की है, भारतीय पद्धति आध्यात्मिक पद्धति तथा पाश्चात्य पद्धति। और फिर कौत्स महोदय के पूर्व पक्ष तथा यास्क महोदय सिद्धान्त पक्ष यहां आलोचित है। विभिन्न व्याख्या में सायण प्रतिपादित भाष्य का कहीं सर्वातिशय है क्यों? पाश्चात्य पौरस्त्य सभी इसी का मत स्वीकार करते है इत्यादि का यहां अच्छी प्रकार उल्लेख किया गया है। अरविन्द का विशिष्ट मत को तथा श्रीमदानन्द कुमार की विशिष्ट व्याख्यान शैली वर्णित है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- मन्त्र व्याख्या की तीन पद्धतियां जान पाने में;
- पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष से कौत्स और यास्क के मत को जान पाने में;
- निरुक्त के विषय में जान पाने में;
- सायण भाष्य के महत्त्व को जान पाने में;
- अरविन्द के तथा आनन्द कुमार के मतों से अवगत हो पाने में।

4.1 भारतीय पद्धति

भाषाविज्ञान पण्डितों के मत में आर्यभाषा से मेटिक भाषा दो भाषा के लोगों ने सभ्यता और संस्कृति का निर्माण किया। आर्य भाषा भी पाश्चात्य-पौरस्त्य भेद से द्विविध है। इस आर्य भाषा के पाश्चात्य प्रभेद में यूरोपीय देश की प्राचीन और आधुनिक ग्रीक-लैटिन-फ्रेंच-जर्मन-आङ्ग्ल प्रभृति भाषाएँ सम्मिलित है। आर्य भाषा के पौरस्त्य भेद में ईरानी भाषा और संस्कृत भाषा सम्मलित है। ईरानी भाषा जेन्द-अवेस्ता-नाम से जानी जाती है, जिसमे पारसीयों के धर्म ग्रन्थ निबद्ध है। संस्कृत भाषा में भारतीय धर्म ग्रन्थ निबद्ध है।

कालक्रम से अत्यन्त अतीत काल में निर्मित किसी ग्रन्थ का अवबोधन उसके उत्तर कालिक पाठकों के लिए अति दुरूह व्यापार होता है। प्राचीनता से भाव गाम्भीर्य, और भाषा की कठिनता भी आती है और तब तो यह और भी दुर्बोध्य हो जाती है। वेद तो वैसे भी पहले से स्वयं किसी दूरालोकगत अतीत काल की कृति है, और ऊपर से भाषा वैषम्य और विचार गाम्भीर्य। फलत: वेदार्थाऽवबोधन, गवेषण, और मर्मान्वेषण एक दुर्बोधप्रहेलिका हो गई। तथापि इस प्रहेलिका का अर्थावबोधन में उद्योग प्राचीन काल से ही होता आया है। यास्क महोदय के निरुक्त में इस उद्योग का कुछ आभास भी प्राप्त होता है – षड्भाव विकारा: भवन्तीति वार्ष्यायणि:। जायतेऽस्ति विपरिण मते वर्धतेऽपक्षीयते विनश्यतीति। यास्क के कथनानुसार प्राचीन ऋषियों ने स्वकीय विशिष्ट तपोबल से धर्म का साक्षात्कार किया। और कुछ अर्वाचीन ऋषियों ने भी उस धर्म के साक्षात दर्शन करने का प्रयास नहीं किया। अपर कालिक ऋषियों की इस प्रकार की दुर्बलता को देखकर उन पर दयावश प्राचीन ऋषियों में मन्त्र का उपदेश ग्रन्थ और अर्थ उभय प्रकार से दिया। प्राचीन ऋषियों ने तो बिना श्रवण के ही धर्मों का साक्षात दर्शन किया। अत: धर्म के साक्षा दर्शन करने से उनका ऋषित्व स्वत:सिद्ध ही है और कुछ अर्वाचीन ऋषियों ने तो ग्रन्थ रूप से और अर्थ रूप से श्रवण किया तत्पश्चात् वे धर्मदर्शन के कर्ता कहलाये। अत: श्रवण के बाद दर्शन की योग्यता सम्पादन से इन ऋषियों द्वारा उपयुक्त वाणी 'श्रुतर्षि' कहलायी। अवरेभ्योऽवरलिकेभ्यो: शक्तिहीनेभ्य: श्रुतर्षिभ्य:। तेषां हि श्रुत्वा तत्पश्चादृषित्वमुप जायते न यथा पूर्वेषां साक्षात्कृद्धर्माणां 'श्रवणमन्तरेणैव' (दूर्गाचार्य:)। ये श्रुतियां ऋषियों ने लोकहित के लिए तथा वेदार्थाव बोधन के प्रयोक्तओं के लिए शिक्षा-निरुक्त-वेदाङ्गादी की रचना की। आधुनिक लोग तो वेदार्थ की दुरूहता पर अंगुली उठाते हुए दोषारोपण करके वेदार्थ को यथा नहीं भूले, वेद मूलक आचार धर्म से विमुख न हो इस विषय में समुन्नत भावना से प्रेरित थे। प्राचीन ऋषि वेदार्थोपदेश के लिए सतत जागरूक थे। यास्क महोदय ने भी कहा है – **'साक्षात्कृद्धर्माण ऋषयो बभूवु:। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मेभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्राहु:। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणाय इमं ग्रन्थं वेदञ्च् वेदाङ्गानि च।'**।

वैदिकशब्दों का अर्थ के तात्पर्य बोधन के लिए बहुत पण्डितों ने उस प्रकार चेष्टा की।

आजकल उपलब्ध यास्क विरचित निरुक्त से भी प्राचीनतर निघण्टु ग्रन्थ है, वहां वैदिक शब्दों की विस्तृत व्याख्या है। निघण्टु शब्द का भी अर्थ होता है शब्दानां सूची', निघण्टु ग्रन्थ में संहिता के कठिन और संदिग्ध अर्थ शब्दों को संकलित कर उनके अर्थ विशेष की सूचना प्राप्त होती है। समुपलब्ध ग्रन्थों के केवल निघण्टु ग्रन्थ में ही वेदार्थस्फुटी करण का प्रथम प्रयास परिलक्षित होता है। प्रातिशाख्य की रचना उसके उत्तरकाल में ही हुई। इन ग्रन्थो में वैदिक भाषा के विचित्र पद, स्वर और सन्धि पदों का ही विवेचन है। साक्षात् रूप पदार्थ पर्यालोचन के इस ग्रन्थ में नितान्त ही अभाव है। प्राचीन अनेक निरुक्त ग्रन्थों की सत्ता थी। जिसकी सूचना अन्य ग्रन्थो में यत्र तत्र उद्धरण रूप में समुपलब्ध है। उसको लेकर आज भी वेदार्थ विवेचन के सर्वाधिक गौरवशालि ग्रन्थ यास्क विरचित निरुक्त ही है। इस ग्रन्थ रत्न के परीक्षण से अनेक प्रकार के ज्ञातव्य विषयों का पर्याप्त बोध होता हो। इस ग्रन्थ में यत्र तत्र यास्क महोदय ने आग्रायण-औपमन्यव-कात्थक्य-शाकटायन-शाकपूणि-शाकल्यादि अनेक निरुक्ताचार्यो का ऐतिहासिक याज्ञिक-नैदान प्रभृति-व्याख्याकार का क्रमशः व्यक्ति रूप में और सामूहिक रूप से उल्लेख समादर पूर्वक किया। इससे यह ज्ञात होता है कि वेदार्थानुशीलन की परम्परा अतीव प्राचीनकाल से ही चली आ रही है।

यास्क द्वारा स्वनिरुक्त में (1/15) किसी कौत्स नामक आचार्य का मत उल्लिखित है। न जाने कौत्सनामक कोई आचार्य थे या नहीं। वस्तुतः ये कौत्स कोई ऐतिहासिक पुरुष थे अथवा केवल पूर्वपक्ष निमित्त से स्थापित कोई यास्क की कल्पना प्रसूत व्यक्ति थे। कौत्स महोदय का मत है कि मन्त्र निरर्थक होते है। इस कथन के पुष्टि के लिए वहां अनेक विधि से असारयुक्तियाँ प्रदर्शित की। कौत्स मत ही परिवर्तित चार्वाक-बौद्ध-जैन-अनेक वेदनिन्द कों ने स्वीकृत की।

4.2 कौत्स का पूर्वपक्ष

1. जैसे मन्त्रों के पद नियत है, तथैव शब्द क्रम भी नियत ही है। यह सामवेद का प्रथम मन्त्र है- 'अग्न आयाहि वीतये' इति। ये पद विपरीत क्रम में - 'वह्नेः आगच्छ पानाय' ऐसा नहीं कह सकते। यहां अनुपूर्वीय क्रम भी नियत ही है। पूर्वोक्त मन्त्र में व्यवस्थापित किया है - 'अग्न आयाहि' यहाँ पदक्रम को परिवर्तन - व्यातिक्रम से - 'आयाह्यग्ने' ऐसा भी नहीं कह सकते है। इसका नियत और आनुपूर्व्य अर्थ क्या है। यदि मन्त्र सार्थक हो तो उनके पदों का पदक्रम का भी परिवर्तन सार्थकवाक्य शैली भी सर्वथा तर्कसंगत हो। इस प्रकार 'नियतवाचोयुक्तयः, नियतानुपूर्व्याः भवन्ति।' (नि.1/5/2)

2. यहाँ ब्राह्मण वाक्यों द्वारा मन्त्रों का विनियोग विशिष्टानुष्ठानों में होता है। यथा- (शु.य. 1/22) 'ऊरूप्रथस्व' इस मन्त्र का विनियोग प्रथमकर्म में, और विस्तार कार्य में शतपथ ब्राह्मण करता है। यदि मन्त्रों में अर्थद्योतन की क्षमता होती तो स्वत:सिद्घ अर्थ और मन्त्र के ब्राह्मण ग्रन्थ से विनियोग दर्शन की अपेक्षा कैसे होती। निरुक्त

में कहा है – अथापि ब्राह्मणेन रूपसम्पन्नाः विधीयन्ते। 'ऊरूप्रथस्व' इति प्रथयति। 'प्रोहाणि' इति प्रोहति' (नि. 1/5/1)।

3. मन्त्रों का अर्थ अनुपपन्न होता है, अर्थात यह उत्पत्ति या युक्ति से यह सिद्ध नहीं हो सकता है। यजमान कहता है – 'औषधे! त्रायस्व एनम्' अर्थात् हे औषधे! तु इस की रक्षा कर। औषधि तो स्वय ही निर्जीव होती है। वो तो स्वयं की रक्षा करने में असमर्थ है वो वृक्ष की रक्षा कैसे कर सकती है। यजमान स्वयं परशु से वृक्ष के ऊपर प्रहार करता है और कहता है – हे परशु ! तु इस वृक्ष को मत काट – 'इससे अनुपपन्न अर्थ होते है। औषधे त्रायस्व एनम्। स्वधीते मा एनं हिंसीः, इत्यहं हिंसन्' (नि.1/5/1)। यजमान स्वयं जिसके ऊपर प्रहार करता है उसी की रक्षा के लिए प्रार्थना भी करता है। इसीलिए मन्त्र अनुपपन्नार्थ होते है।

4. वैदिक मन्त्रों में परस्पर विरोध भी दृष्टि गोचर होता है। रुद्र विषय में यह द्रष्टव्य मन्त्र है – 'एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीयः' (तैत्ति.सं. 1/8/6/1)। रुद्र एक ही है कोई अन्य नहीं ऐसा प्रतिपादित होता है। यहीं द्वितीय मन्त्र रुद्र का अनेकत्व प्रतिपादित करता है। यथा– 'असंख्यानां सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम्' (तैत्ति.सं. 4/8/6/1)। अर्थात इस धरा पर असंख्य रुद्र है। इस प्रकार से एकता और अनेकता में सन्देह से रुद्र के विषय में किसी भी तथ्य का निर्णय सम्भव नहीं है। (अथापि विप्रतिषिद्धार्थाः मन्त्राः भवन्ति)

5. वैदिकमन्त्रों में कार्य विशेष के अनुष्ठान के लिए अर्थ ज्ञान कुशल पुरुषों की भागीदारी होती है। यथा होता को कहते है कि – 'अग्नये समिध्यमानाय अनुब्रूहि' (श. ब्रा. 1/3/2/3)। अर्थात् प्रज्वलित अग्नि के लिए दो। होता स्वकर्म में निरत होने पर उसके नियोजन के लिए यह उक्ति निरर्थक होती है।

4.3 यास्क का सिद्धान्तपक्ष

1. लौकिक भाषा में भी पदों का नियत प्रयोग होने पर उसके पदक्रम का नियत रूप दृष्टि गोचर होता है। यथा– इन्द्राणी एवं पितापुत्रौ। इन दोनों के प्रयोग में न तो क्रमभंग कर सकते है और न ही शब्द परिवर्त्तन ही कर सकते है। इस प्रकार नियमाभाव से भी इन शब्दों की सार्थकता स्वतःसिद्ध होती है।

2. ब्राह्मण ग्रन्थ मन्त्रों का विनियोग विधन मुद्रितानुवाद मात्र ही है, अर्थात् मन्त्रों में अर्थ प्रतिपादन अभीष्ट होता है उसी अर्थ का अनुवाद ब्राह्मण ग्रन्थों में है।

3. वैदिक वेद मन्त्रों का अर्थ अनुपन्न नहीं है। परशुप्रहार काल में जो अहिंसा की चर्चा है वह भी वेदविहित है। परशु द्वारा वृक्षछेदन अपराध होने से हिंसा का द्योतक अवश्य है क्यों कि वेद से ही यह ज्ञात होता है कि परशुछेदन हिंसा का द्योतक नही है। जिस कर्म में पुरुष वेद द्वारा नियुक्त होता है, वह कर्म अहिंसात्मक होता

है। औषधि-पशु-मृग-वनस्पति जैसे अनेक यज्ञ में उपयोग होते है। उससे वे परमोत्कर्ष को प्राप्त करते है। अतः यज्ञ में इनका विधान अभ्युदय प्रदायक होता है न की हिंसात्मक। इस प्रकार किसी भी वृक्ष का यज्ञार्थ विधि पूर्वक शाखच्छेदन का अनुग्रह ही है न की हिंसा का। ये हिंसा- ये हिंसा ऐसा कहने से यह प्रतीत होता है। प्रत्येक विशिष्ट वैदिक को कहने के लिए यह विधान है। इस प्रकार से अन्य आगमनों को भी जानना चाहिए। अनुगृह्णाति यज्ञविनियोगार्थ विधानतः छिन्दन् (दुर्गाचार्यः, निरुक्तस्य टीका 1/16/6)।

4. मन्त्रों में ही रुद्र का एकत्व है। किसी अनेकत्व का उल्लेख में भी पारस्परिक विरोध नहीं है क्योकि देव महिमशाली होते है। एकत्व में भी वे अनेक प्रकार से वर्तमान होते है। यथा इन्द्र अजातशत्रु है अर्थात् जिसका कोई शत्रु उत्पन्न नही हुआ है,। वैसे तो इद्र शत्रु का विजेता है ऐसा भी कह सकते है, इसमें कोई दोष नहीं है। ये वर्ण रूपकाश्रित कल्पना में ऊपर रखा गया है। लोक में भी शत्रुरहित भी राजा शत्रुहीन कहलाता है।

5. यज्ञानुष्ठान में परिचित भी सम्प्रेषण अव्यर्थ नहीं बोल सकता है। क्योंकि विशिष्ट अतिथि के आगमन पर मधुपर्कदान सर्वविदित है, फिर भी लोक व्यवहार में भी विधिपुरुष से तीन बार मधुपर्क याचना होती है। उसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थ की भी सम्प्रेषणा निरर्थक नहीं है।

पाठगत प्रश्न

458. आर्य भाषा कितने प्रकार की है ?

459. भारतीय धर्म ग्रन्थ किस भाषा में लिखित है ?

460. श्रुतर्षि किसका नाम है ?

461. निरुक्तकार कौन है ?

462. निर्घण्टु शब्द का क्या अर्थ है ?

463. आधुनिक जनों को वेदार्थ अवगमन में कहाँ कमजोरी है ?

464. एक निरुक्त टीकाकार का नाम लिखो ?

4.4 पाश्चात्यपद्धति

वेदार्थानुसन्धान विषय में आजकल प्रधानतया तीन मत है, जिनमें प्रथम पाश्चात्य वैदिकार्थ अनुसन्धान्कर्ताओं का मत है। अन्य दो मत भारतीय विद्वान् के ही है। पाश्चात्य पण्डितों के मतानुसार वेदार्थानुशीलन के लिए तुलनात्मक भाषाशास्त्र का और ऐतिहासिक ग्रन्थ का अध्ययन भी अतीव आवश्यक है। भारत के अलावा दुसरे देशों के लोगों का आचार

व्यवहार का ज्ञान भी वेदार्थानुसन्धान में आवश्यक है। जिससे इन दोनों का पारस्परिक तुलना से ही हमारे वैदिक धर्म का मूल स्वरूप का परिचय हो सकता है। इसी कारण से यह ऐतिहासिक पद्धति (History method) इति नाम से विख्यात हुई। भारतीय परम्परा के प्रति वैदेशिक विद्वान उदासीन ही है। अत: वे आङ्गल विद्वांन ब्राह्मण टीका पर आक्षेप करते है। राथ जैसे अनेक पाश्चात्य विद्वान भारतीय पण्डितों को वेदार्थानुसन्धान में सर्वथा अयोग्य ही मानते है। वे पाश्चात्य पण्डितों को ही योग्य मानते है, जो भारतीय परम्परा को बिलकुल भी नहीं जानते केवल भाषा शास्त्र मानव शास्त्र जैसे अनेक विषयों को ही जानते है।

इस पद्धति में अनेक गुण है किन्तु बहुविध अवगुण भी है। वेदो का आविर्भाव इसी आर्यावर्त में हुआ। वेदनिहित तत्त्व को आश्रित्य कर कालान्तर में स्मृत्यादि ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। वेद भारतीयों की अपनी समृद्धि है। ऋषि आत्मज्ञानी विद्वांनों को और तत्त्वद्रष्टा और महर्षि ने वेदों का दर्शन जैसे किया वैसे ही उनका अनुशीलन हमारा कर्त्तव्य है। उसी रूप में उनके गूढार्थ अवबोधन ही वेद के अर्थ वास्तविक अनुशीलन है ऐसा कह सकते हैं। वेद से भारतीयता का निस्वार्थ भारतेतर धर्म से और विज्ञान की सहायता लेकर उसके अर्थावबोधन का दु:साहस मूल में कुठाराघात ही है अन्य कुछ नहीं। इस प्रकार से वेदो का अर्थ करके वैदिकाचार्य के विषय में उन्मादवत्प्रलाप किसी भी तरह उचित नही है। उदाहरणार्थ हम यहाँ एक शब्द का परीक्षण करते है।

वैदिकयुग में इस देश में लिङ्ग पूजा प्रचलित थी या नही इस विषय में ये पाश्चात्य पण्डित बड़े ही कोलाहल से अपने सिद्धान्त को स्थापित किया जो कि बालकों के लिए भी उपहसन योग्य है। 'शिश्नदेव:' इस पद का प्रयोग ऋग्वेद में (7/21/5, 10/99/3) दो स्थान पर मिलता है। पाश्चात्य विद्वान इस शब्द का उत्तरभाग को अभिधप्रधान मानकर अपने सिद्धान्त को रखकर कहते है कि वैदिक काल में भी इस देश में लिङ्गपूजा का प्रचलन था। परन्तु यहां इस शब्द का वास्तविकार्थ वैसा नही है। वस्तुत: देवशब्द आलंकारिक है यहाँ। वेद में अन्यत्र प्रयुक्त पितृदेव-मातृदेव-आचार्यदेव अनेक शब्द तथैव है। यहाँ देवशब्द का अर्थ 'पूजक' ही होता है न की अन्य। तैत्तिरीयोपनिषदि (1/1) प्रयुक्त- मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यो देवो भव इत्यादि शब्दों के अर्थ होते हैं- माता को देवता की तरह पूजें, पिता को देवता की तरह पूजें, आचार्य को देवता की तरह पूजें। इन शब्दों के व्याख्या के अवसर पर आचार्य शङ्कर कहते है कि - देवतावत् उपास्या: एते ऐसा अर्थ है। श्रद्धा देव ये शब्द भी शिश्नदेव से भिन्न नहीं है। यहाँ दोनों जगह 'देव'-शब्द का प्रयोग आलंकारिक ही है। ऐसी स्थिति में शिश्नदेव का भी अर्थ होता है - शिश्न: (लिङ्ग:) देवता अस्ति अस्येति, अर्थात् कामक्रीडा में नियत पुरुष। अत्र पण्डिता: अस्य परम्परागतार्थअब्रह्मचर्य' ऐसा अर्थ स्वीकार करते है। और कुछ पाश्चात्य विद्वांन यहाँ प्रयोगमूलक परम्परागत अर्थ की उपेक्षा करके निर्मूल अप्रामाणिक सिद्धान्त को ग्रहण करते है। इसी प्रकार पारस्करगृहसूत्र 'कूर्मपित्तमङ्के निधय जपति' इस वाक्य में प्रयुक्त कूर्मपित्त शब्द का परम्परागतार्थ जल पूर्ण घट का उपहास करके जर्मन विद्वान् ओल्डनवर्ग महोदय ने 'कच्छपपित्तं क्रोडे निधाय' ये अर्थ किया।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न

465. कुछ पाश्चात्य विद्वानों के नाम लिखो।

466. कूर्मपित्त शब्द का परम्परागत अर्थ क्या है ?

4.5 आध्यात्मिक पद्धति

स्वामी दयानन्द सरस्वती-महोदय ने कुछ विशिष्ट व्याख्याकारों की चर्चा स्वभाष्य में करते है। वेदों का अनादित्व सिद्धान्त अपने भाष्य में प्रतिपादित किया गया इस विद्वान् द्वारा। इस महापुरुष के विचार में वेद में लौकिक इतिहास का सर्वथा अभाव ही है। वेद में प्रयुक्त सभी शब्द यौगिक और योग रूढ है। इन्द्र अग्नि वरुणादि ये देवता वाचक शब्द है सभी यौगिकत्व से ही परमात्मा के पर्यायवाची हैं। स्वामी जी का यह सिद्धान्त अंशतः समुचित ही लगता है। निरुक्त कर्ता तो स्पष्ट कहते है - जितने देव है वे सभी एक ही महान देव परमेश्वर के विशिष्ट शक्ति के प्रतीक स्वरूप है। **'महाभाग्यात् देवतायाः एक आत्मा बहुधा स्तूयते। एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति।'** (निरुक्तः 7/4)। ऋग्वेद में तो इसका स्पष्ट प्रतिपादन है - **'एकं सद्विप्रा बहुध वदन्त्यग्निं यमं मातारिश्वानमाहुः'** इति (ऋ.सं 1/164/46)। इसलिए अग्नि ऐश्वर्यशाली परमेश्वर का ही रूप है, और यही स्वीकार करना सर्वथा उचित ही है। यहाँ कोई विरोध नहीं है, क्योंकि जब इस शैली में अग्न्यादि देव का वर्णन होता है तब तो विरोध का अभ्युदय होता ही है।

वेद में देवताओं का विशिष्ट स्थान है। मानव सदा प्रकृति देवों की नाना लीला को देखता है, वैदिक काल के महर्षियों ने उनकी लीला के तत्त्व के आधार पर भिन्न देवता की कल्पना की है। महर्षियों का यह विश्वास है की इन देवों की अनुकम्पा से ही सभी कार्य संचालित होते है। जगत में चल रहे सभी प्रपञ्च का कारण भूत देव ही है। यास्क कहते है कि देवता में कुछ पृथिवी स्थानीय, कुछ अन्तरीक्ष स्थानीय, और कुछ द्यु स्थानीय है। पृथिवी स्थानीय देवता में अग्नि, अन्तरीक्ष स्थानीय में इन्द्र, द्युस्थानीय देवता में सूर्य विष्णु अनेक देव है। ऋग्वेद में भी देवता प्राण शक्ति के महत्त्व से 'असुर' कहलाते है। पाश्चात्यों का प्रधान देवों को उद्देश्य करके यह विचार है कि भौतिक घटना के उत्पन्न होने से प्राकृतिक दृश्यों को देवता के रूप में कल्पित किया है। ऋग्वेद के आदि के युग में बहुत देवताओ की सत्ता थी। समय के साथ मनोविकास के साथ लोगों ने देवता को उनका एक ही अधिपति की कल्पना कर ली। पुरुष सूक्त सर्वेश्वरवाद को स्पष्ट रूप से उपस्थापित करता है।

यास्क के निरुक्त में दैवत काण्ड में देवता स्वरूप का सुन्दरतया विवेचन किया गया है। जगत के मूल में एक ही महत्वशालिनी महाशक्ति शोभित होती है। वह निरतिशय-ऐश्वर्य शालिनी होने से 'ईश्वर' कहलाती है। वही शक्ति अनेक प्रकार से स्तुत होती है। और

वेदभाष्य की पद्धति

ऐतरेयारण्यक एतं ह्येव बह्वृचा महत्युक्थे मीमांसान्त– एतमग्नावधवर्यव एतं महाव्रते छन्दोगा:' इससे विद्वानों का कहा विचार ही परिपुष्ट होता है।

देवता प्राय: तीन रूप में होते है – आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक। इन्द्रियगम्य रूप आधिभौतिक होता है, इन्द्रिय से अगम्य आधि दैविक और आध्यात्मिक होते है। 'विष्णुर्नुकं वीर्याणि......।' 'प्रविष्णवे शूषमेतु।' 'मन्यगिरिरिक्षत उरुगायाय वृष्णे......।' इत्यादि मन्त्र से वेद विष्णु देवता के कहे गये तीनों रूप प्रदर्शित होते हैं।

मानव उन देवता की शक्ति को भली भांति न जानते हुए उनके निवारण के लिए प्रयास करते है। इसीलिये श्रुति के आधार पर उसके रूपों को इसके साथ रखते है।

मन्त्र से देवों के न केवल एक ही अपितु बहुत रूप प्रतिपादित है। इस प्रकार से प्रतीच्य विद्वानों की उस बात पर कैसे विश्वास हो, जहां देवता भौतिक दृश्य के अधिष्ठातृ और प्रतीकत्व के रूप में परिकल्पित होते हैं। वेद वर्णित प्रमुख विषयों में देवता स्तुति भी एक प्रमुख विषय है।

इस विचार से अग्न्यादि शब्द न केवल परमेश्वर के ही वाचक है, अपितु उन-उन विशिष्ट देवों के भी वाचक है। अग्नि शब्द यहां भौतिक अग्निपद का बोधक है, जिस अग्नि की कृपा से इस चराचर जगत के सकल व्यवहार नियमित है। यह शब्द उस देव के भी सूचक है, जो इस भौतिकाग्नि में भी अधिष्ठित है। उसी के साथ यह शब्द इस जगत के नियामक परमात्मा के अर्थ को भी प्रकट करता है। अग्निदेव के ये तीन रूप भी समुचित ही है। अग्निमन्त्र के सूक्ष्म पर्यालोचन से सिद्ध होता है कि यह अग्नि मन्त्र ऊपर वर्णित अग्नि देव के तीनो रूपों को समभाव से बताता है। इसीलिए अग्नि देव के पूर्व वर्णित दो रूप देखकर अग्निपद परमपद के ही वाचक है ये मत तो प्राचीन परम्परा के सर्वथा विरुद्ध ही है। इसी कारण से इस शैली के सर्वथानुसरण से सर्वमान्य नहीं होता है।

स्वामी जीव महोदय ब्राह्मणग्रन्थों को संहिताग्रन्थ ही अनादित्व से और प्रामाणिकत्व से नहीं स्वीकृत करते हैं। श्रुति अन्तर्गत ब्राह्मण ग्रन्थों की गणना इसकी आवश्यकता नहीं है। इसलिए संहिता के स्वरूप दृष्टी से स्वामी जी का यह सिद्धान्त अयथार्थ ही है। तैत्तिरीयसंहिता में मन्त्र के साथ ब्राह्मणांश का भी गद्यात्मक स्वरूप समुपलब्ध होता है। इस प्रकार से तैत्तिरीय संहिता का एक भाग श्रुति तथा अपरभाग अश्रुति सा ही लगता है। स्वामी के अनुयायि वैदिक पण्डितों के सम्मत में वेद में आधुनिक-भौतिक-विज्ञान के सभी आविष्कृत पदार्थ की सत्ता स्वीकृत है। तो क्या वेद का यह ही महत्त्व है कि, इन वेदों में वैज्ञानिक अविष्कृत सकल वस्तुओं का वर्णन समुपलब्ध होता है। वेद तो आध्यात्मिक ज्ञान की निधि है। भौतिक विज्ञान द्वारा आविष्कृत पदार्थो का वर्णन नही है वेद का प्रयोजन। ऐसा होने पर यौगिक प्रक्रियानुसार इनका भौतिक विज्ञान में आविष्कृत पदार्थ का वेद में अस्तित्व स्वीकरण उपयुक्त नही लगता है। अत: स्वामी जी की यह पद्धति सर्वांशत: एव स्वीकार्य नहीं हो सकती है।

वैदिक मन्त्र का अर्थ गूढ है, ऋषि प्रदर्शित मार्गानुसार आर्ष दृष्टी से ही मन्त्रार्थ जानने चाहिए। मन्त्र के शब्दों में व्याकरणजन्य सरलता होने पर भी, उनके अभिधेयार्थ का अन्वेषण और नितान्त दुरूह है। गूढार्थ प्रतीति के लिए इस मन्त्र का यह रहस्यवाद देखने योग्य है -

'चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्याम् आविवेश॥ -ऋ. 4/58/3

इस मन्त्र का सामान्य अर्थ है कि - इसके चार सींग, तीन पैर, दी सिर और सात हाथ है। तीन प्रकार से यह बद्ध वृषभ उच्च स्वर से कोलाहल करता है। महादेव मर्त्यलोक में प्रवेश करता है तथा कौन है यह महादेव वृषभ। यास्क ने इस मन्त्रार्थ का रहस्योद्घाटन किया - कुछ के मत में यह महादेव वृषभ यज्ञ है। चार वेद इसके चार शृङ्ग है, पद त्रैकालिक अनुष्ठान कर्म है, सिर प्रायणी-उदयनीय-नाम की दो हवि है। सप्त हस्त सप्तछन्द है, यह यज्ञ मन्त्र-ब्राह्मण-कल्प से त्रिधा बद्ध है। इस प्रकार से यज्ञ रूप में महादेव यजनार्थ मरणधार्मि में प्रविष्ट हुए। कुछ के मत में महादेव वृषभ सूर्य है, जिसकी चार दिशा ही चार शृङ्ग है, तीन वेद पातीन है, दिन और रात दो सिर है, और सात किरणसात हस्त है। सूर्य पृथिवी-आकाश-अन्तरिक्ष तीनों से सम्बद्ध है, और भी मतों यह सूर्य ग्रीष्म-वर्षा-शिशिर- ऋतु का उत्पादक, अत: इसको इस मन्त्र में 'त्रिधा बद्धः' कहा गया है (द्रष्ट.नि. 13/3)। पतञ्जलि के पस्पशाह्विक में इस मन्त्र की शाब्दिक व्याख्या समुपस्थापित है। उनके मत में तो यह महादेव शब्द है, जिससे इसके चत्वार शृङ्गचतुर्विधा शब्द है (नाम-आख्यात-उपसर्ग-निपाताः), त्रीणि पदान्त के भूत-वर्तमान-भविष्यत तीनकाल है, दो प्रकार की भाषा, नित्या और कार्या दो सिर, सातहाथ से प्रथमा से सात तक विभक्तियां है। शब्द का उच्चारण हृदय-कण्ठ-मुख तीन प्रकार से होता है, इस प्रकार यह शब्द तीन प्रकार से बद्ध है। शब्दगत अर्थ वृष्टकरण से यह शब्द वृषभ पद वाच्य होता है। राजशेखर ने इस मन्त्र की व्याख्या अपनी काव्य मीमांसा में साहित्य शास्त्र के दृष्टी से ही की। सायण भाष्य में इसके अतिरिक्त अर्थ का ही वर्णन है। उपर वर्णित अर्थ में प्रत्येक अर्थ सम्बद्ध ही है, अत: वे सभी अर्थ स्व-स्वदृष्टी से समादरणीय और माननीय है। मन्त्र के गूढार्थ की यह ही महानता है। इन पवित्र मन्त्रों का अर्थ विविधरूप से कर सकते है। यास्क ने इस प्रसङ्ग में छ से अधिक मतो की चर्चा की है। इन चर्चा में ऐतिहासिक-वैयाकरण-परिव्राजक-याज्ञिक आदि प्रमुख है। इसके अतिरिक्त विविध ग्रन्थ के समर्थक आचार्य के मतों का भी यथास्थान उल्लेख मिलता है।

पाठगत प्रश्न

467. वेद में कैसे शब्द हैं ?

468. सभी मतों में ऐकात्म्य का प्रतिपादन करते हुए निरुक्तकार ने क्या कहा ?

469. देव किस रूप में है ?

470. अग्नि शब्द किसका वाचक है ?

471. वेद मन्त्रों का अर्थ कैसे जानते है ?

472. महादेव वृषभ के कितने अङ्ग है और वे कौन से है ?

4.6 सायण भाष्य महत्त्व

आचार्य सायण ने स्वभाष्य लेखन काल में स्मृति पुराणादि ग्रन्थ से यथा आवश्यकता सहायता ली। उन्होंने परम्परागत अर्थ ही स्वीकार किया। उनके प्रमाण की पुष्टी के लिए आवश्यकतानुसार यत्र तत्र पुराण-इतिहास-स्मृति-महाभारतादि ग्रन्थ से प्रमाण एकत्र कर उल्लेख किया। वेद के अर्थ ज्ञान के लिए षड्गाध्ययन का भी महत्त्व है। सायण तो इस सिद्धान्त से पूर्ण परिचित थे। इन्होने ऋग्वेद के प्रथमाष्टक व्याख्या में शब्दों के पर्यालोचन में व्याकरण के नैपुण्य से निरूपण किया। प्रायः प्रत्येक महत्त्वपूर्ण शब्द की व्युत्पत्ति में, सिद्धि में, स्वराघात वर्णन को पाणिनीय सूत्र की सहायता से और प्रातिशाख्य सहायता से किया। सावधनतया इसके अध्ययन से समस्त ज्ञातव्य विषयों की सुन्दरता से अवबोध होता है। निरुक्त का उपयोग किया गया है इस भाष्य में। ''यास्क ने व्याख्या की है'' ऐसा सायणाचार्य उन मन्त्रों के भाष्य लेखन काल में स्पष्ट लिखा है। इसको छोड़कर सायणाचार्य ने ऋग्वेद के प्राचीन भाष्य कर्ता स्वन्द स्वामि-माधवादिकृत अर्थ भी यथा स्थान ग्रहण किया है। कल्प सूत्र का भी उपयोग सविस्तार किया स्वभाष्य में। यज्ञ विधान में तो सायण की प्रगाढ प्रतिभा परिलक्षित होती है। और भी कल्पसूत्र विषयगत आवश्यक तत्त्वों के वर्णन प्रसङ्ग में सर्वत्र अपनी विशिष्ट प्रतिभा का भी प्रदर्शन किया। सूक्त की व्याख्या के आरम्भ में ही उनके विनियोग ऋषि का, देवतादि जानने योग्य तथ्य का वर्णन प्रामाणिक ग्रन्थ का उद्धरण प्रस्तुत किया सूक्त सम्बन्धि उपलब्ध आख्यायिका भी सप्रमाण समुपस्थापित की गई। मीमांसा के विषय का भी निवेश भाष्य के आरम्भ में प्रस्तावना में बोधगम्य भाषा द्वारा प्रदत्त सायण वेदविषयक समग्र सिद्धान्त का प्रतिपादन और रहस्योद्घाटन भी किया। इसी कारण सायणकृत वेद भाष्य को गौरव प्राप्त है। अपने भाष्य में सायण ने याज्ञिक पद्धति को ही महत्त्व दिया है। उस काल में उसी की आवश्यकता थी। तब कर्मकाण्ड की प्राधानता थी। ये सब अच्छी तरह सोचकर सायण ने भाष्य निर्मित किया।

इसी कारण से मध्य में सायणाचार्य का विशिष्ट महत्त्व है। सायण भाष्य के विना वेदार्थानुशीलन की कैसी दशा होती ये कहा नहीं जा सकता है। यथेष्ट व्युत्पत्ति के आधार पर एक ही अर्थ के विरुद्ध बहुत प्रकार से अर्थ करने में प्रवृत्त पाश्चात्य पण्डितों के बीच परमगतार्थ का ही अपने भाष्य में स्थान देने वाले सायण को छोड़कर उचितमार्ग को कौन प्रदर्शित करने में समर्थ है। वस्तुतः आंग्ल की शिक्षा पद्धति को हमने स्वीकार कर लिया। आङ्गल जन स्वार्थ प्रवृत्ति से हमारे इन वेदोपनिषद् स्मृति पुराण का तिरस्कार किया, हमने भी

उनको सहन किया। आक्रान्ता स्वार्थबुद्धि वाले और अन्धे हो गये थे, परन्तु हम भी अज्ञानता से दुसरे के ज्ञान से अन्धभक्त हो गये। प्रचीनकाल के हमारे देश के राजा विद्वज्जन को अपनी सभा में आश्रय देते थे, संस्कृत अध्ययन अध्यापनार्थ अवसर और उचित वृत्तिदेते थे–

परं आज वैसी व्यवस्था कही जीवित नही दिखती है। आज इससे पुराणादि ग्रन्थ वेदार्था व बोधर्थ की परम आवश्यकता है।

सायण वैदिक सम्प्रदाय के यथार्थ ज्ञाता थे। इससे यह वेदभाष्य वस्तुत: वेदार्थ प्रतिपादक भाष्य में मूर्धन्यतम भाष्य है। जो कि दुर्गम वेद दुर्ग में सरलतया प्रवेश कराता है वेदार्थ जिज्ञासुओं का। वैदिक विद्वानों पर बहुत ऋण है सायणाचार्य का। पाश्चात्य पण्डितों ने वेदार्थाव बोधन में विपुल प्रयास किया। इस प्रयत्न में वे जो थोड़ी कुछ सफलता प्राप्त कर सके है वो सायणाचार्य की अनुकम्पा का ही फल है। सायण भाष्य की साहायता से ही ये पाश्चात्य पण्डित वैदिक मन्त्र का अर्थावबोधन में काम कर सके। किन्हीं शब्द के अर्थावबोधन में विरोधाभास के देखकर सायणाचार्य का उपहास उनके द्वारा किया गया ये और बात है। लेकिन मुख्यत: संहिता पंचक पर ऐसा सुव्यवस्थित, पूर्व पर विरोध हीन उपयोगी और पाण्डित्य पूर्ण भाष्य लेखन अतीव श्रम साध्य है। इस प्रकार की महत्ता और उपादेयता भाषा दृष्टी से भी विचारणीय है। ये वैदिक भाषा ऐसी है की जो भाषा विदो के मध्य में फैला हुआ प्राचीन भाषा विषयक मतभेद को हटाता है। अब के भाषा शास्त्र पण्डित चाहते हैं कि इनके द्वारा कहा गया विषय पूर्णतया परिपक्वता को प्राप्त हो। वे वेदों को धारण और अनुशीलन कर उस उस भाषा में समाहित पाड़े–नाइट–फार्चून–इत्यादियों के मूलरूप को और उनके रुपान्तरता को सही कहते है। और ये भी जानते है की भौतिक अर्थ में प्रयुज्यमान पदयुगान्तर में किस प्रकार आध्यात्मिक अर्थ में प्रयुक्त होने आरम्भ हो गये। बड़े ही प्रयत्न और प्रयोजन साधक होने से वस्तुत: सायण भाष्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। और भी सायणाचार्य की अनुकम्पा से वेदार्थ में प्रविष्ट पाश्चात्य पण्डित कहते है कि – 'Las von Sayana' (सायण का बहिष्कार करो) तो वहाँ क्या आश्चर्य है और क्या वेदना। यद्यपि सायणाचार्य के भाष्य भी दोष रहित है, ऐसा भी नहीं कह सकते है। क्योकिं मानवकृति में त्रुतिराहीत कार्य की कल्पना व्यर्थ है, फिर भी सायणाचार्य परम्परागतार्थ के ज्ञाता है, यहाँ लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। सायणाचार्य के वेदभाष्य वेदार्थ ज्ञान की कुञ्जिका रूप में दिखती है। वेदों के दुर्गम दुर्ग में प्रवेश के लिए इस भाष्य में विशाल सिंह द्वार का कार्य करता है।

और अब कुछ पाश्चात्यानुसन्धानकर्ता भी सायण के महत्त्व से अपरिचित नहीं हैं। ऋग्वेद के प्रथमानुवादक आङ्गल विद्वान विल्सन महोदय की ये उक्ति अविस्मरणीय है–

'Sayana undoubtedly had a knowledge of his text far beyond the pretensions of any European scholar, and must have been in possession either through his own learning or that of his association, of all the interpretation which have been perpetuated by traditional teaching from the early times.'

–Translation of Rigveda

सायणभाष्य के प्रथम पाश्चात्य सम्पादक डा. मैक्समूलर महोदय की भी ये उक्ति दर्शनीय है-

We ought to bear in mind that five and twenty years ago, we could not have made even our first steps, we could never at least have gained a firm footing without his leading string. —Introduction to Rigveda; Edon.

वेदार्थ ज्ञान में वस्तुत: सायणाचार्य अन्धें के लिए लाठी के समान है। सौभाग्य से सायण के प्रति अब तो पाश्चात्य पण्डितों के भी विचार परिवर्तन हो गये उनमें अब उपेक्षा के स्थान पर सम्माननीय भाव दिखता है। सायण कृत वेदार्थ की प्रामाणिकता भी प्रामाणित हुई पाश्चात्य विद्वानों के सम्बन्ध में। इस विषय में जर्मनीय विद्वांन पिशल और गौल्डनर ने बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य को किया। दोनों विद्वानों ने 'विदिशेस्तूदियन्' (वैदिकानुशीलनम्) नामक ग्रन्थ के तीनों भागों में विविध गूढ़ वैदिक शब्दों का अनुसन्धान किया। जिससे सायणचार्य द्वारा किया अर्थ भलिभांति प्रमाणित हुआ है।

कुछ तो सायणाचार्य के ही अर्थ से ही हम संतुष्ट नही है। वेद की गभीरता और रहस्यमयता बड़ी ही गौरवास्पद है। उसी कारण विभिन्न समय में नवीन व्याख्या सम्प्रदाय का उद्‌भव हुआ। और उन व्याख्या कर्ताओ ने अपने अपने व्याख्या कौशल से प्रतिष्ठा को प्राप्त किया ।

4.7 अरविन्द का महत्त्व

आज कल तत्त्व चिन्तक और आध्यात्म साधकों में अरविन्द महोदय मान्य और मूर्धन्य है। उनकी दृष्टी में जिन विद्वानों की वेद के प्रति असीम श्रद्धा है उनके सम्मुख में स्वत: ही एवं वैदिक शब्दों का अर्थ प्रस्फुट होता है। वेद का अर्थ रहस्यात्मक और निगूढ है। इसकी सूचना भी वेद से ही प्राप्त होती है। वैदिक ऋषियों की ये दृढ़ धारणा थी कि मन्त्र का उद्‌भव हृदय के अन्तरतम प्रदेश से होता है। अत: वेदों में निगूढ ज्ञान की निधिप्रक्षिप्त है। एक मन्त्र में (ऋ. 4/3/13/9) ऋषि वामदेव ने अपने आत्मा अन्त:प्राज्ञ सम्पन्नता से उपस्थापित किया। इन ऋषि ने अपनी वाणी से निगूढ़ वाक्यों की अभिव्यक्ति की। दीर्घतमा नामक ऋषि का भी ये अनुभव ही कि वेद मन्त्र नित्य, और अक्षर व्योम में निवास करते हैं। क्या जो उस परमात्मा को ही नही जानता वह ऋचाओं से क्या करेगा। उसका ऋचाओं से क्या प्रयोजन है। और कहा भी है -

> **''ऋचो अक्षरो परमे व्योमन्, यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदु:।**
> **यस्तन्न वेद किं ऋचा करिष्यति य इत् तत् विदुस्त इमे समासते॥''**
> **इति। (ऋ.1/164/69)**

वैदिक मन्त्र अक्षर सम्बन्ध दिव्य उच्चतर स्तर के साथ ही हैं (ऋ.1/164/46)। इस प्रकार वैदिक मन्त्रों के दिव्यत्व वैदिक प्रामाण से ही स्वत:सिद्ध होता है। और कुछ वैदिक मन्त्र तो प्रत्येक शब्द किसी भी आध्यात्मिक तत्त्व के प्रतीक होते है।

श्री अरविन्द महोदय के मत में योग और तप से विधूत पवित्र हृदय में एवं परमात्मा प्रस्फुट होता है। वैदिक शब्द आध्यात्मिक तत्त्व की ही प्रतीकता है। इसी प्रकार प्रत्येक वैदिक शब्द किसी भी शक्ति से, आध्यात्मिक सामर्थ्य के और तपोबल प्रतीक होते है। वैदिक ऋषि किसी मन्त्र में जब अश्व की प्रार्थना करता है तब उसका अर्थ अश्व रूप सामान्य घोड़ा नहीं होता है, अपितु अश्व पद से वहाँ अंतर्बल के स्फुरण के प्रति सङ्केत होता है। घृत शब्द यज्ञ के साधन भूत सामान्य घृत का बोधक है। और तो अरविन्द महोदय के मत में तो घृतशब्द का प्रकाश अर्थ भी होता है। अत एवं इन्द्र का अश्व जब 'घृतस्नु'-पद से बोधित होता है तब उसका अर्थ घृत का क्षरण नहीं होता है, अपितु प्रकाश का सर्वत्र विकिरणकर्ता ऐसा अर्थ होता है। और अग्नि पद से न केवल बाह्य वह्निपद का बोध होता है, अग्नि शब्द से यहाँ अन्त:स्फुरित चौतन्य का ही बोध होता है। यद्यपि संहिता भाग में मुख्यत: यज्ञकर्मादि प्रतिपादित है फिर भी वहाँ आत्म तत्त्व भी निहित है। उपनिषद् में अभिव्यक्त बहुत सी व्याख्या से अद्वैततत्त्व का पूर्ण सङ्केत प्राप्त होता है संहिता ग्रन्थों में जो भी विद्वान् वैदिक संहिता के मन्त्र को केवल कर्म का प्रतिपादक और कुछ उपनिषद् ज्ञान के प्रतिपादिक है ऐसा मानकर दोनों के बीच भिन्नता प्रदर्शित करते हैं तो वे सत्य से दूर हैं। संहिता ग्रन्थ कर्म के साथ ज्ञान का भी स्पष्ट प्रतिपादक है। ऋग्वेद के सिद्धान्त जैसे वेदान्त के तथ्यों का सङ्केत करते है वैसे ही उसके अन्तर्विद्यमान साधना की और नियमन शिक्षा विगत युग में प्रतिष्ठित योग के प्रति स्पष्टतया सङ्केत करते है। ऋग्वेदसंहिता में उस परम तत्त्व की आलोचना बहुत मन्त्रों में प्राप्त होती है। जैसे ''एकं तत्'' (ऋ.1/164/46), ''तदेकम्'' (ऋ.10/129/2) इत्यादि। वैदिक ऋषि इसी को परम सत्य रूप में स्वीकार करते है, अन्य देव तो उसी के शक्ति से विविध रूप से अभिव्यक्त मात्र है। इस प्रकार श्री अरविन्द के मत में वेद सिद्धों की ही वाणी है। ये वेद आन्तरिक जगत आध्यात्मिक तथ्यों के निरूपक है। इसी रूप में जिन सामान्य शब्दों का प्रयोग वेद करते है उनका अर्थ नितान्त निगूढ तथा साधना के ऊपरी भाग पर आधारित है। वेद का अर्थ मुख्यत: रहस्यमय और आत्मपरक है। इस दृष्टी से श्री अरविन्द के मत की व्याख्या के प्रति विद्वानों का ध्यानाकर्षण भी स्वाभाविक ही है।

4.8 श्रीमत आनन्दकुमार का महत्त्व

डॉ. आनन्दस्वामी आधुनिक भाषाविदों में परमतत्त्वज्ञ और गम्भीर चिन्तक थे। भारतीय कला के अन्त:स्वरूप के प्रत्यभिज्ञान में अतुलनीय तथा उस कला के विशद व्याख्याकरण और स्वविषय के विद्वान् थे। तब उनके जैसा दुर्लभ था। कलाक्षेत्र में और वैदिक क्षेत्र में पूर्ण मर्मज्ञता के साथ इन्होने प्रवेश लिया। इन्होनें उनके अन्तरङ्ग का परीक्षण और विश्लेषण बड़ी ही विद्वता के साथ किया। इस विषय में उनकी प्रसिद्ध पुस्तक है - 'A new Approach to the Vedas'। ग्रन्थ में वेद की विशिष्ट व्याख्या शैली का प्रदर्शन किया इस विद्वान का कथन है कि -वेद तो, सिद्धों की वाणी होती है। इसलिए उसके व्याख्या लेखन में इस्वी सन मध्ययुग के संतों और आत्मपरक कवि की अनुभूति से भी पर्याप्त साहायता

ली जा सकती है। आध्यात्मिक जगत में अति उच्चस्तर के संतों की अनुभूति में वैचारिक समानता होती ही है। उनकी अनुभूति प्रकट करने वाले प्रयुक्त प्रतीकों में तथा मूर्ति विधन में एकरूपता दृग्गोचर होती ही है। डॉ. कुमारस्वामी मध्य युगीय इसाई धर्म अनुयायि महात्मा की वाणी के मर्मज्ञ विद्वान् थे। फलतः इन्होने अपनी वैदिक व्याख्या में उनके ज्ञान का और अनुशीलन का उपयोग बड़ी ही भली प्रकार से किया। इस महापुरुष के वैदिक मन्त्रों की व्याख्या ही इसके स्पष्ट उदाहरण है। देंखे -

"As for the Vedic and Christian source each illuminates the other. And that is in itself an important contribution to understanding. What ever may be asserted or denied with respect to the value of the Vedas; this at least is certain that their fundamental doctrines are by on means singular."

(A New Approach to the Vedas- Page 9)

पाठगत प्रश्न

473. ऋग्वेद में देवता को क्यों 'असुर' इस नाम से कहा है ?

474. देवताओं के तीन रूप कौन से है ?

475. इस जगत का नियामक कौन है ?

476. अरविन्द मत में घृत शब्द का अर्थ क्या है ?

477. वेदभाष्य विषय में किन - किन विद्वानों ने भाष्य रचना की ?

पाठसार

आर्यभाषा की प्राचीनता के भेद में संस्कृत भाषा अंतर्निहित है। विभिन्न आचार्यों की दृष्टी से वेदमन्त्रों का व्याख्यान होता है। वेदमन्त्र के अर्थ निर्देशकों में यास्काचार्य सबसे प्रसिद्ध है। उन्होंने विस्तार से गूढ शब्दों का अर्थ निर्दिष्ट है।

वेदार्थ अनुसन्धान विषय में पाश्चात्य विद्वानों का एक मत है, तथा भारतीय पण्डितों के दो मत है। आध्यात्मिक पद्धति में एक ही अग्निशब्द भौतिकाग्नि, अग्निदेव का तथा परमेश्वर का वाचक होता है। चत्वारि शृङ्गाः इत्यादि मन्त्रों में यह महादेव वृषभः कौन है ऐसे प्रश्न में यास्क ने याग रूपी वृषभ को प्रतिपादित किया, दूसरों ने तो महादेव वृषभ सूर्य है ऐसा कहा है, पतञ्जलि ने पस्पशाह्निक में उस मन्त्र की शाब्दिक व्याख्या समुपस्थापित की, सायण भाष्य में तो भिन्न ही वर्णन है। सायण ने वेद के व्याख्या अवसर में इतिहास-स्मृति-पुराणादि ग्रन्थ की साहायता स्वीकार की। उनके व्याख्यान की प्रधान वैशिष्ट्य है कि उनके द्वारा वेद के प्रायः प्रत्येक महत्त्वपूर्ण शब्द की व्युत्पत्ति, सिद्धि और स्वराघात

टिप्पणी

का वर्णन पाणिनीय सूत्रों की सहायता और प्रातिशाख्य की सहायता से की। सूक्त के व्याख्या के आरम्भ में ही उसका विनियोग- ऋषि-देवता-छन्द आदि तथ्यों का वर्णन उन्होंने प्रामाणिक ग्रन्थ के उद्धरण के साथ किया। दूसरे एक महान् वेद तत्त्वज्ञ है अरविन्द महोदय वे तत्त्व चिन्तक और अध्यात्म साधकों में मान्य तथा मूर्धन्य है। उनकी दृष्टि में जिन विद्वानों की वेद के प्रति असीम श्रद्ध है, उनके सम्मुख में स्वतः एव वैदिक शब्दों का अर्थ प्रस्फुट होता है। डॉ. आनन्द स्वामी आधुनिक कलाविदों में परम तत्त्वज्ञ तथा गभीर चिन्तक थे। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक है - 'A New Approach to the Vedas'। इस ग्रन्थ में वेद विशिष्ट व्याख्या शैली प्रदर्शित की है।

पाठान्त प्रश्न

1. वेदार्थानुशीलन की परम्परा अतिप्राचीन काल से ही चली आ रही है। .. इस वचन का समर्थन करो।
2. कौत्स महोदय के पूर्वपक्ष का वर्णन करो।
3. पाश्चात्यों ने कैसे वेद की हानि की।
4. स्वामी जीव महोदय के मत को प्रस्तुत कर विभाजित करो।
5. चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादा-इत्यादि श्लोक में क्या प्रतिपादित किया है ?
6. सायणभाष्य के महत्त्व को प्रतिपादित करो।
7. पाश्चात्य विद्वान् सायणाचार्य भाष्य कर्ता की क्यों निंदा करते है?
8. अरविन्द का महत्त्व बताओ।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-

478. आर्यभाषा पाश्चात्य और पौरस्त्य भेद से दो प्रकार की है।
479. संस्कृत भाषा में।
480. श्रवणान्तर दर्शनस्य योग्यता सम्पादनेन अर्वाचीनानामृषीणाम् उपयुक्तभिधा श्रुतर्षि कहा गया।
481. यास्काचार्य ने।
482. शब्द सूची ये अर्थ।

483. वेद में भाव गाम्भीर्य, भाषा वैचिर्त्य, विचित्र पदों का और स्वरों की सन्धि पदों का विवेचन है।

484. दुर्गाचार्य।

उत्तराणि

485. ज्याकोबी, पिशेल, मैक्समुलर, पोल इत्यादि।

486. जल पूर्ण घट ये अर्थ।

उत्तराणि

487. सभी शब्द यौगिक, योग रूढ़ और रूढ़ है ।

488. **महाभाग्यात् देवताया: एक आत्मा बहुध स्तूयते। एकस्यात्मनोऽन्ये देवा: प्रत्यङ्गानि भवन्ति।'** (निरुक्त: 7/4)

489. तीन रूप में होता है - आधि भौतिक, आधिदैविक और अध्यात्मिक।

490. भौतिकाग्नि के, अग्नि देव के तथा परमेश्वर के।

491. ऋषि प्रदर्शित मार्ग से तथा आर्ष दृष्टी से।

492. चत्वारि शृङ्गाणि, त्रय: पादा:, द्वे शिरसी, सप्त हस्ताश्च।

उत्तराणि

493. प्राण शक्ति शाली होने से।

494. आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक।

495. ईश्वर।

496. अरविन्द महोदय के मत में प्रकाश ये अर्थ होता है।

497. सायण, अरविन्द महोदय, श्रीमदानन्द कुमाराचार्य और भी अन्य है।

चौथा पाठ समाप्त

5

वैदिक आख्यान तथा वेदों के विषय में दार्शनिक विमर्ष

प्रस्तावना

इस पाठ में हम वेद में वर्णित कुछ आख्यानों का वर्णन देखेंगे। जैसे लौकिक कथा ग्रन्थों को तथा रस अलङ्कार गुण से युक्त शब्द राशि को कवियों ने रचा। वैसे ही वैदिक काल की भी सामाजिक रीति आदि को वैदिकोंपाख्यान नामक अध्याय के द्वारा हम यहाँ देखेंगे। कथा ग्रन्थों में जैसे कान्ता सम्मित वचन हैं, वैसे ही नीति पूर्ण वचन तथा प्रभु सम्मित उपदेशों से नीतिज्ञान वेदोपाख्यानों में कुछ स्थानों में प्राप्त होता है। कुछ उपाख्यानों के विषय में हम यहाँ पढेंगे। वहां आख्यान प्रतिपाद्य विविध दार्शनिकों के मत में भी वेद प्रतिपादित है। और वेद के पौरुषेयत्व तथा अपौरुषेयत्व का विचार किया गया है। पुरुष कृत पौरुषेय है। सृष्ट की ही अनित्यत्वापत्ति है। क्योंकि जिसकी सृष्टि होती है उसका विनाश अवश्यम्भावी होता है। जन्य-पदार्थों के अनादित्व के असम्भव से वे अनित्य हैं। वे कभी अपौरुषेय नहीं हो सकते। अत: वे अनित्य और पौरुषेय हैं। वेद पौरुषेय हैं अथवा अपौरुषेय इस विषय में दार्शनि कों के अनेक मत हैं। न्याय वैशेषिक-मीमांसक-सांख्य- वैयाकरण के मत में वेद का पौरुषेयत्व और अपौरुषेयत्व नित्यत्व और अनित्यत्व प्रस्तुत करते हैं।

उद्देश्य

इस पाठको पढ़ कर आप सक्षम होंगे–

- आख्यान के विषय में विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- शुन:शेपोपाख्यान, और ऊर्वशी-पुरूरवा उपाख्या के विषय में जान पाने में;
- स्वयं भी आख्यानादि की रचना कर पाने में;

- वेद के पौरुषेयत्व तथा अपौरुषेयत्व के विषय में लघुप्रबन्ध रचना कर पाने में;
- वेद के विषय में नैयायिक तथा साङ्ख्यों के मत जान पाने में।

5.1 शुनःशेप उपाख्यान

शुनःशेपोपाख्यान ऋग्वेद के बहुत से सूक्तों में प्राप्त होता है (1/24-25)। इससे यह घटना सत्याश्रित थी ऐसा प्रतीत होता है। ऐतरेय ब्राह्मण में (7/3) यह आख्यान अतिविस्तार से वर्णित है। यह उपाख्यान पहले हरिश्चन्द्र और अन्त में विश्वामित्र का सम्बन्ध परिकल्पित करके परिवर्धित है। वरुण की कृपा से इक्ष्वाकु राजा हरिश्चन्द्र के घर में पुत्र उत्पन्न हुआ। समर्पण के समय अरण्य में हरिश्चन्द्र के पुत्र का पलायन, हरिश्चन्द्र के उदरजन्य रोगोत्पत्ति, मार्ग में अजीगर्त मध्यम पुत्र शुनःशेप का खरीदना, देवता की कृपा से उस शुनःशेप की शाप से मुक्ति, विश्वामित्र के द्वारा शुनःशेप को पुत्र के रूप में स्वीकार करना आदि विषय आलोचित है इस पाठ में। तथा यह कथा इस प्रकार सुनते हैं-

हरिश्चन्द्र नामक कोई निःसन्तान राजा था। वरुण की उपासना करके उसने पुत्र प्राप्त किया। वरुण ने कहा कि, उत्पन्न पुत्र की मुझे बली दो। बारह वर्षीय रोहित वन को चला गया। वरुण के कोप से हरिश्चन्द्र जलोदर रोग से ग्रस्त हो गया। जब-जब रोहित वन से घर को आना चाहता था तब-तब इन्द्र उसे चरैवेति चरैवेति का उपदेश देता रहता था। अन्त में वह पिता के दुःख को सहने में असमर्थ होकर घर की और आ रहा था तभी मध्य मार्ग में अजीगर्त नामक ब्राह्मण के मध्यम पुत्र शुनःशेप को बली के लिए खरीदा। आयोजित यज्ञ में यूप में संयत शुनःशेप को सेकड़ों मूल्य पर जब मारने को उद्यत हुए तब उसके पिता अजीगर्त को विश्वामित्र ने शुनःशेप के लिए गाथा त्रय का उपदेश किया, जिनके पाठमात्र से ही वरुण बली के बीना ही प्रसन्न हो गया। उसके बाद विश्वामित्र ने शुनःशेप को पोष्य पुत्र बना कर अपने सौ पुत्रों में इक्यावनवाँ पुत्र बनाया। जिससे उसके नीचे विद्यमान रुष्ट हुए तथा विश्वामित्र के पुत्र विश्वामित्र के ही शाप से बहेलिये-पुलिन्द-म्लेच्छ आदि होकर वहाँ रहने लगे। शुनःशेपाख्यान ऋक्शत गाथा पर आश्रित है, ऐसा एतरेयब्राह्मण के 'ऋक्शतगाथं शौनःशेपमाख्यानम्'' इस जगह स्वीकृत है।

पाठगत प्रश्न

498. शुनःशेपोपाख्यान में आदि और अन्त में किनकी परिकल्पना की गई है?

499. हरिश्चन्द्र का पुत्र किसके आशीर्वाद से उत्पन्न हुआ?

500. शुनःशेप के पिता का नाम क्या था?

टिप्पणी

501. किस वेद में यह आख्यान प्राप्त होता है?

502. शुन:शेप किसका पोषित पुत्र था?

503. गाथा त्रय किसने किसको सुनाई?

5.2 ऊर्वशी-पुरूरव उपाख्यान

वैदिक युग की यही एक रोमाञ्च्कारिणी प्रणय गाथा है। राजा पुरूरवा के साथ ऊर्वशी प्रणयपाश में आबद्ध हुई। अत: उसके तीन शर्त थे।

1) वह सदैव घृताहार करेगी।

2) उसके दो प्रिय भेड सदैव उसकी शय्या के पास रस्सी से बंधे होंगे, जिससे उनको कोई भी आहत नहीं कर सकेगा, और न कोई चुरा सकेगा।

3) किसी भी अवस्था में वह राजा को नग्न नहीं देखेगी यदि क्षण भर के लिए भी ऐसा हुआ तो वह उसको छोड़ कर चली जाएगी।

राजा ने उर्वशी के तीनों शर्त सहर्ष स्वीकार किये। उसके साथ सानन्द समय यापन कर रहा था। किन्तु उर्वशी के बीना गन्धर्व स्वर्ग में नीरस और निर्जीव अनुभव करने लगे। उसके बाद वे कपट के प्रबन्ध से राजा की प्रतिज्ञा भंग करने में उद्यत हो गये। एक बार रात में उन गन्धर्वों ने कपट से भेड़ों को उर्वशी के पास से चूरा लिया। भेड़ो की करुण ध्वनि को सुन कर उर्वशी ने राजा को चोर के साथ युद्ध करने के लिए प्रेरित किया। राजा भी शीघ्र ही भेड़ों को चोरों से बचाने के लिए आकाश की और दौड़ा। तभी आकाश में विद्युत् के प्रकाश में गधर्वो ने छल से राजा का नग्न रूप उर्वशी को दिखा दिया। राजा को नग्न अवस्था में देख वह भी बाहर चली गयी। राजा उसके बिना विरहातुर होकर उन्मत्त की तरह भूमण्डल पर विचरने लगा। एक बार कुरुक्षेत्र के एक जलाशय में हंसी के रूप में उसने अपनी प्रिया को देखा। राजा ने उससे वापस चलने के लिए बहुत बार प्रार्थना की। लेकिन वह तो राजा के पास पुन: जाने के लिए तैयार ही नहीं हुई। राजा की दयनीय दशा देखकर गन्धर्वो के भी हृदय में सहानुभूति उत्पन्न हुई। उन्होंने भी उसे अग्नि विद्या का उपदेश किया। उनके अनुष्ठान उसने उर्वशी का अविच्छिन्न समागम प्राप्त किया।

ऋग्वेद के प्रख्यातसूक्त में (10/94) दोनों का कथोपकथन मात्र ही है। शतपथ ब्राह्मण में (1/1/5/1) यह कथानक रोचक और विस्तार से वर्णित है। वहां इस कथानक के लेखन में साहित्यिक सौन्दर्य का भी परिचय प्रदत्त है। विष्णुपुराण (4/6), मत्स्यपुराण (अ-24), और भागवत्पुराण(9/14) में इस कथानक का हम रोचक विवरण प्राप्त करते हैं। महाकवि कालिदास ने विक्रमोर्वशीय नामक नाटक में इस कथानक को नितान्त मञ्जुल नाटकीय रूप दिया। इस आख्यान के विकास में एक विशेष तथ्य की सत्ता प्राप्त होती

है। पुराणों में यह कथानक प्रणय गाथा के रूप में व्यक्त है। और वैदिकाख्यानों में पुरूरवा प्रथम व्यक्ति है, जिसने श्रौताग्नि अर्थात् आहवनीय, गार्हपत्य और दाक्षिणाग्नि नामक त्रिविध अग्नि की स्थापना का रहस्य जानकर यज्ञ संस्था का प्रथम विस्तार किया। पुरूरव के परोपकारी रूप की अभिव्यक्ति के द्वारा इस वैदिकाख्यान का वैशिष्ट्य वर्णित है।

पाठगत प्रश्न

504. पुरुरवा किसकी उपमा है?

505. उर्वशी ने राजा का परित्याग क्यों किया?

506. उर्वशी कौन थी?

507. उर्वशी प्रदत्त शर्त को राजा ने क्यों स्वीकार किया?

508. प्रथम शर्त का क्या नाम था?

509. उर्वशी के बिना स्वर्ग की कैसी दशा हो गई?

510. भेड़ो को किसने चुराया?

511. राजा आकाश की और क्यों गया था?

512. उर्वशी स्वर्ग क्यों गयी?

513. राजा ने अपनी प्रिया को कहाँ देखा?

514. क्या करके राजा ने उर्वशी को प्राप्त किया?

515. उर्वशी-पुरूखा के उपाख्यान से कलिदास ने कौन सा नाटक लिखा?

516. आहवनीय गार्हपत्य और दक्षिणाग्नी का रहस्य सर्व प्रथम किसने विस्तारित किया?

5.3 च्यवान भार्गव तथा मानवी सुकन्या का आख्यान

यह आख्यान भारतीय नारी के चरित्र का एक नितान्त उज्ज्वल दृष्टान्त समुपस्थापित करता है। यह कथा ऋग्वेद के आश्विन से सम्बद्ध सूक्तों में (1/116, 117) सङ्केतित है। यही कथा ताण्ड्यब्राह्मण (14/6/11), निरुक्त (4/19) शतपथब्राह्मण (का. 4), और भागवत्पुराण (स्क. 9अ. 3) में अतिविस्तार से प्राप्त होती है। च्यवन का वैदिक नाम 'च्यवान' है। सुकन्या की वैदिक कथा उसकी पौराणिक कथा की अपेक्षा अधिक उदात्त और आदर्शमयी है। पुराणों में सुकन्या स्वयं अपराधिनी है। वह च्यवन की दिव्य आँख को फोड़ती है। इस कर्म के लिए उसको दण्ड का विधान स्वाभाविक ही है। किन्तु वेद में उसका त्याग उच्च कोटी से वर्णित है। सैनिक बालकों के निवारण के लिए

टिप्पणी

किये गये अपराध के लिए च्यवान के सम्मुख वह आत्म समर्पण करती है। उसके दिव्य प्रेम से अश्विनों ने प्रभावित होकर उसे वार्द्धक्य से मुक्तकिया तथा उसे नूतन यौवन दिया।

तुलनात्मक अध्ययन से प्रतीत होता है कि अनेक आख्यान कालान्तर में विकृत हो जाते हैं। विकास प्रक्रिया में अनेक अवान्तरकालिकीय घटनाएँ विद्यमान हैं। वे आख्यानों से संश्लिष्ट होकर उनको अभिनव रूप देती हैं। ये परिवर्तित रूप मूलरूप से भिन्न होते हैं। शुन:शेप, विश्वामित्र वसिष्ठ इन कथानकों के अनुशीलन तथा इसके विचित्र सिद्धान्त के प्रदर्शन से दृष्टान्त समुपस्थापित होता है। शुन:शेप का आख्यान ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में (सू 24, 25) स्पष्टत: साङ्केतित है। इसका ही विस्तार ऐतरेय की समय पञ्चिका में उपलब्ध होता है। यहाँ शुन:शेप के आख्यान के आरम्भ में राजा हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहित के साथ तथा कथा के अन्त में मुनि विश्वामित्र के साथ सम्बद्ध होकर एक भव्य धारण करता है। कालान्तर में इस कथानक में रोचकता बढ़ाने के लिए ही उसके दो भाई, तथा पिता की दरिद्रता का विक्रयण की परिकल्पना की गई प्रतीत होती है। शुन:शेप का भी यहाँ 'कुक्कुर' अर्थ नहीं होता है। 'शुन'-शब्द का अर्थ 'सुख' और कल्याण होता है तथा 'शेप'-शब्द का अर्थ 'स्तम्भ' होता है। अत: शुन:शेप का अर्थ 'सौख्य का स्तम्भ' होता है। इस प्रकार यह कथानक वरूणपाश से विमुक्ति का सन्देश देता हुआ कल्याण के मार्ग को प्रशस्त करता है।

पाठगत प्रश्न

517. भारतीय नारी के चरित्र के नितान्त उज्वल दृष्टान्त का नाम लिखो?

518. च्यवन का वैदिक नाम क्या था?

519. च्यवन की दिव्य आँखे किसने फोड़ी?

520. शुन:शेप का क्या अर्थ है?

5.4 वशिष्ठ तथा विश्वामित्र का आख्यान

ऋग्वेद में यह स्वत:सङ्केतित आख्यान है। ये दोनों ऋषि सम्भवत: भिन्न-भिन्न-काल में राजा सुदास के पुरोहित रहे थे। चातुर्वर्ण्य के क्षेत्र से बाहर के ये ऋषि थे ऐसा स्वीकारा जा सकता है। दोनों के मध्य में परम सौहार्द की भावना का साम्राज्य था। दोनों तपस्वी, तेजस्वी, और अलौकिक गुणशाली महापुरुष थे। किन्तु रामायण-पुराण-बृहद्देवता आदि कुछ ग्रन्थों में इन दोनों के मध्य सङ्घर्ष-वैमनस्य- और विरोध आदि की कल्पना का उदय हुआ। विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मणत्व की प्राप्ति के लिए लालायित हो गये।

वसिष्ठ ने उन्हें अङ्गीकृत नहीं किया। उससे क्रुद्ध होकर विश्वामित्र ने वसिष्ठ के पुत्रों का संहार किया। इस कल्पना को ही आधार बना कर आलोचकों ने क्षत्रियों और ब्राह्मणों के मध्य घोर विद्रोह और अमङ्गल की प्राचीर को स्थापित किया। वस्तुतः यह विचार निराधार, उपेक्षणीय तथा नितान्तभ्रामक है। वैदिक आख्यान से अपरिचित व्यक्ति ही इस प्रकार के पावन चरित्र वाले ऋषियों के अवान्तर कालिक वर्णन से भ्रान्त होते हैं। वैदिक आख्यानों का विकास अवान्तर काल में किस प्रकार से सम्पन्न हुआ यह अध्ययन का एक गम्भीर विषय है। कुछ आख्यानों के विकास का इतिहास विद्वानों ने रोचक रीति से वर्णित किया है।

पाठगत प्रश्न

521. वसिष्ठ और विश्वामित्र का आख्यान कहाँ प्राप्त होता है?

522. राजा सुदास के दो परोहित कौन कौन थे?

523. विश्वामित्र किस वर्ण के थे?

524. विश्वामित्र किस वर्ण को प्राप्त करने के लिए लालायित थे?

5.5 आख्यानों का तात्पर्य

वैदिक आख्यानों का क्या तात्पर्य है। इस प्रश्न के उत्तर में विद्वानों में वैमत्य देखा जाता है। अमेरिका के निवासी विद्वान् डाँ ब्लूम फील्ड महोदय ने इस विषय पर चर्चा करके उन विद्वानों के मत का खण्डन किया। जिन विद्वानों ने वैदिक आख्यानों की रहस्यमयी व्याख्या की। उदाहरणार्थ- इन रहस्य वादियों ने वैदिक आख्यानों में एक गम्भीर रहस्य का दर्शन किया। उनके विचार में पुरूरवा सूर्य तथा उर्वशी उषा है। उषा और-सूर्य का पारस्परिक संयोग क्षणिक होता है। उनका वियोग काल अतिदीर्घ होता है। वियुक्त सूर्य उषा की खोज में सम्पूर्ण दिन व रात घूमता है। दूसरे दिन प्रभात में उनका मेल होता है। प्राचीन भारतीय विद्वानों के मत में वैदिक आख्यानों का यही स्वरूप था। अतः मानवीय मूल्यों से विहीन वैदिक आख्यानों का चित्रण किसी भी प्रकार उपयुक्त नहीं है।

इन आख्यानों के अनुशीलन के विषय में दो तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए-

क) ऋग्वेदीय आख्यान इस प्रकार के विचारों का सारवर्णित करते हैं कि जो मानव और समाज के कल्याण के साधन के लिए नितान्त अपेक्षित हैं। इसका अध्ययन भी उसी प्रकार मानवीय मूल्यों को दृष्टी में रख कर करना चाहिए। ऋग्वेदीय-ऋषियों ने इन आख्यानों में मानव के कल्याणमय उपादेय तत्त्वों का समावेश किया।

ख) उसी युग के वातावरण का स्मरण करके उसी परिवेश में इन उपाख्यानों का

मूल्य निर्धारण करना चाहिए। उसी युग में इन आख्यानों का मूल्य निर्धारण करना चाहिए, जिस युग में इन आख्यानों का आविर्भाव हुआ। अर्वाचीन अथवा नवीन दृष्टी से इनका मूल्य निर्धारण इतिहास के प्रति अन्याय होगा। इन तथ्यों की आधार शिला पर आख्यानों की व्याख्या उचित और वैज्ञानिक होगी।

वैदिक आख्यानों की शिक्षा मानव समाज के सामूहिक कल्याण विश्व के मङ्गल तथा अभिवर्द्धान के लिए है। भारतीय संस्कृती के अनुसार मानव का देवों से सम्बन्ध है। मानव यज्ञों में देवों को आहुति प्रदान करता है। देव भी प्रसन्न होकर उसे प्रसन्न करते है। उसकी अभिलाषा की पूर्ती करते हैं। इन्द्र विषयक तथा अश्विनी विषयक आख्यान इस कथन के विशद दृष्टान्त हैं। यजमानों द्वारा प्रदत्त सोम रस पीकर इन्द्र नितान्त प्रसन्न होता है। वह उनकी कामना को सफल करता है। अवर्षण के वृत्र दैत्य को अपने वज्र से भेद कर नदी को प्रवाहित करता है। वृष्टी से मानव तृप्त होते हैं। संसार में शान्ति विराजमान होती है। यह वैदिक तथ्य अल्पाक्षरों में महाकवि कालिदास द्वारा व्यक्त किया गया (रघु 4/16)।

प्रत्येक आख्यानों का सार मानव के शिक्षण के लिए है। आत्रेयी और कपाल का (ऋक् 8/91) आख्यान नारी चरित्र का उदात्तता और तेजस्विता का विशद प्रतिपादक है। राजा त्र्यरुण-त्रैवृष्ण-वृषजों का आख्यान (ऋग् 5/2, ताण्ड्यब्रा 13/6/12, ऋग्विधान 12/52, बृहद्देवता 5/14-23) वैदिक कालिक पुरोहित की महिमा और गरिमा का स्पष्ट रूप से सङ्केत करते हैं। सोभरि और काण्व का आख्यान (ऋ् 8/19, निरूक्ति: 4/15,भाग 9/6) सङ्गती की महिमा का प्रतिपादन करता है। उषसति चाक्रायण (छान्दोग्य:, प्रथ प्रपाठ खण्ड 10/11) इस आख्यान में अन्न के सामूहिक प्रभाव तथा गौरव की कमनीय कथा है। शुन:शेप आख्यान में देवता की अनुकम्पा का उज्ज्वल सङ्केत मिलता है। देवों की कृपा से शुन:शेप अपनी रक्षा करने में समर्थ हुआ। वसिष्ठ विश्वामित्र आख्यान भी उचित विश्लेषण के अभाव के कारण अनर्गल कल्पना का समुत्पादक हुआ। वसिष्ठ शारीरिक तपस्या की प्रति मूर्ति थे। विश्वामित्र तो पुरुषकार का स्वरूप थे। दोनों के मध्य प्रगाढ मैत्री थी। वैदिक राजा के यज्ञ सम्पादन में समान रूप से दोनों ही सहायक थे। उनका वैरभाव और सङ्घर्ष क्षणिक था। यावाश्व-आत्रेय की कथा (ऋग् 5/61) ऋषि के गौरव, प्रेम महिमा, और कवि की साधना को सुन्दर रीति से अभिव्यक्त करता है। ऋग्वेदीय युग की यह प्रख्यात प्रणय कथा है। जिसमें प्रेमकी सिद्धि के लिए श्यावाश्व एक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हुए। दध्यङ्गाथर्णव का आख्यान (1/116/12, 14/4/5/13, 2/5, भागव 6/10) राष्ट्रिय-मङ्गल- जीवन दान की शिक्षा देकर क्षुद्र स्वार्थ से ऊपर उठने और जन कल्याण का उपदेश देता है। पुराण में इसका ही नाम ऋषि दधीची है। ये ही लोकहित एवं वृत्रासुर के वध के लिए सुरेन्द्र को अपनी अस्थियों का दान करते है। वज्र निर्माण के लिए अस्थियों का दान करके आर्य सभ्यता की रक्षा की। अनधिकारी को रहस्यमयी-विद्या के उपदेश का विषम परिणाम इस वैदिकाऽख्यान में प्रदर्शित है। इन आख्यानों का यही उपदेश है कि परमेश्वर के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा जीवात्मा से प्रेम। विश्व कल्याण के लिए यही मङ्गलमय मार्ग है।

कुछ ऋषियों के चारित्रिक दोषों तथा अनैतिक आचरण का भी वर्णन वैदिक आख्यानों में उपलब्ध होता है। इससे उपदेश ग्रहण करना चाहिए। ये आख्यान अनैतिकता के गर्त में पतन से रक्षा के लिए निर्दिष्ट हैं। तप से पवित्र जीवन में भी प्रलोभन के अवसर पर चारित्रिक पतन की सम्भावना है। कामिनी काञ्चन का प्रलोभन सामान्यजन का हृदय आकर्षित करती हैं फलतः उनसे सदैव जागरूक रहना चाहिए। इस विषयमें महाभारत का यह कथन ध्यातव्य है -

'कृतानि यानि कर्माणि दैवतैमुनिभिस्तथा।
न चरेत्तानि धर्मात्मा श्रुत्वा चापि न कुत्सयेत्॥
अनमन्यैरुपालब्धैः कीर्तितैश्च व्यतिक्रमैः।
पेशलं चानरूपञ्च कर्तव्यं हितमात्मनः॥' (महाभा 12/291/17)

पाठगत प्रश्न

525. आत्रेयी-कपाल का आख्यान क्या प्रतिपादित करता है?

526. वसिष्ठ किसकी प्रतिमूर्ति थे?

527. विश्वामित्र किसकी प्रतिमूर्ति थे?

528. श्यावाश्व-आत्रेय कथा की क्या विशिष्टता थी?

529. आख्यानों में क्या उपदेश है?

5.6 दार्शनिकों के मत में वेद का पौरुषेयत्व और अपौरुषेयत्व का वेदविमर्श

5.7 न्याय दार्शनिकों के मत में वेद

नैयायिक वेद के प्रामाण्य को स्वीकार करते हैं, और वेद के अनित्यत्व और अपौरुषेयत्व को नहीं स्वीकार करते हैं। उनके मत में परम पुरुष के द्वारा वेद रचित हैं। और परम पुरुष परमेश्वर हैं। इसलिए वेद पौरुषेय हैं उनका यह मत है। जैसे रघुवंश आदि कालिदास के ग्रन्थ अनित्य हैं।

पाठगत प्रश्न

530. किसका विनाश अवश्यम्भावी है?

531. नैयायिकों के मत में वेद पौरुषेय हैं अथवा अपौरुषेय?

532. नैयायिकों के मत में वेद नित्य है अथवा अनित्य?

533. नैयायिकों के मत में वेद किसके द्वारा रचित हैं।

534. परम पुरुष कौन है?

5.8 मीमांसा और वेदान्त के मत में वेद

मीमांसक और वैदान्तिक वेद का अपौरुषेयत्व प्रतिपादित करते हैं। अपूर्ण हैं पुरुष। अत: उनका ज्ञान भी अपूर्ण है। इसलिए उनकी रचना अथवा वाक्य में भ्रम प्रमाद और विप्रलिप्सा होती ही है। और इन्द्रिय की अपूर्णता के कारण दोष सम्भव हैं। परन्तु वेद वाक्य में भ्रम प्रमाद आदि दोष नहीं हैं। इसलिए वेद पौरुषेय नहीं है। सर्वज्ञत्व और सर्वशक्तिमत्त्व से परमेश्वर ही रचने में समर्थ है। तथापि वेदों को परमेश्वर ने रचा नहीं। सूर्य की रश्मियाँ जैसे सूर्य से स्वयं प्रकाशित होती हैं वैसे ही वेद भी परमेश्वर से स्वयं प्रकाशित हुए। जैसे कि बृहदारण्य कोपनिषद् में कहा गया है – 'अस्य महतो भूतस्य नि:श्वसितं यदेतत् ऋग्वेदो यजुर्वेद: सामवेद:' इति। श्वास जैसे स्वाभावि कार्य है इसको लेने में चेष्टा नहीं की जाती वैसे ही वेद भी परमेश्वर के प्रज्ञा स्वरुप हैं चेष्टा कृत था बुद्धि परिकल्पित नहीं हैं। यहाँ ज्ञातृ और ज्ञान में अभेद है। प्रतिकल्प में परमेश्वर से वेद का ज्ञान प्रकाशित होता हैं। ब्रह्मा वेद के कर्ता नहीं हैं, वह तो स्मर्ता अर्थात् केवल स्मरण कर्ता है। पराशर संहिता में कहा गया है कि – 'न कश्चित् वेदस्य कर्तास्ति वेदस्मर्ता चतुर्मुख:' इति।

अर्थात् कोई भी वेद का कर्ता नहीं है। ब्रह्मा केवल वेद का स्मरण कर्ता है।

ब्रह्मा आदि सभी ऋषि वेद के स्मारक हैं न की कारक। ब्रह्मा आदि सभी ऋषि मन्त्र द्रष्टा वेद के धारक तथा वाहक हैं वेद के कर्ता अथवा रचयिता नहीं हैं। नित्य विद्यमान वेद परमेश्वर प्रत्येक कल्प में ब्रह्मा को देते हैं।

'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै'। वेद नित्य, तथा सदा विराजमान रहते हैं। प्रत्येक कल्प में ब्रह्मा उसकी पुनरावृत्ति करता है। युगान्त अथवा प्रलयकाल में भी वेद परब्रह्म में ही अभिन्न रुप से रहते हैं। कल्प के आरम्भ में पुन: ऋषि तपस्या के द्वारा वेद मन्त्रों को प्राप्त करते हैं। अत: कहा भी गया है–

युगान्ते अन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षय:।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयम्भूवा॥

यास्क के मत में ऋषि शब्द का अर्थ मन्त्र द्रष्टा है। यास्क के मत में ऋषि शब्द की व्युत्पत्ति है –अजानन् ह वै पृश्नीं स्तपस्य मानान् ब्रह्म स्वयम्भू अभ्यानर्षत्तदृषयोऽभवन्। तपस्यारत जन्म रहित ऋषियों के समीप स्वयं ब्रह्म अर्थात् वेद गये। मन्त्र द्रष्टा ऋषि कहे जाते हैं। निरुक्त में वेद स्वयम्भू उत्पत्ति रहित तथा अपौरुषेय कहे गये हैं।

वेदभाष्यकार सायणाचार्य ने वेद का अपौरुषेयत्व स्वीकार किया। भाष्य रचना के पूर्व महेश्वर को प्रणाम करके निवेदन करते हैं।

'यस्य निःश्वसितं वेदाः यो वेदेभ्योऽखिलं जगत।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम।

अर्थात् वेद चतुष्टय से उत्पन्न निखिल भुवन जिसका निःश्वास स्वरूप है, और जो सब विद्या का आधार है उस परमेश्वर महेश्वर की मैं वन्दना करता हूँ। वेद महेश्वर के निःश्वास स्वरूप हैं ऐसा कह कर सायणाचार्य ने वेद का अपौरुषेयत्व प्रतिपादित किया।

परमेश्वर वेद के आधार हैं न की रचयिता। परमेश्वर के वेद कर्तृत्व के प्रतिपादन में वेद का अनित्यत्व, तथा परमेश्वर का सर्वज्ञत्व का अभाव सिद्ध होता है। परमेश्वर त्रिकालदर्शी है। अतः वह सर्वज्ञ है, इससे उसके लिए किसी भी विषय का ज्ञान अगम्य है ऐसा नहीं कहा जा सकता। परमेश्वर ने वेद रचे ऐसा कहने पर उसके सर्वज्ञत्व का अभाव सिद्ध होता है। उसके सर्वज्ञत्व से वेद सर्वदा उसके ज्ञानगम्य थे। अतः वेद नित्य हैं। कल्पभेद में भी उसमें परिवर्तन नहीं होता है।

जिसका आदि नहीं होता वह अनादि कहलाता है। आदि उच्चारण मात्र से शब्द तथा वाक्य का कर्तृत्व प्रतिपादित होता है, और आदि उच्चारण मात्र से पूर्व वह शब्द नहीं था ऐसा ज्ञात होता है अतः वह शब्द अथवा वाक्य पौरुषेय है। यही पौरुषेय का धार्म तथा वैशिष्ट्य है। अतः प्रत्येक कल्प में वेद का स्मरणत्व प्रतिपादित है न की उच्चारणत्व। उसके बाद प्रत्येक कल्पमें वेद का सजातीय उच्चारणत्व भी प्रतिपादित है। इससे वेद अनादि था अनन्त हैं। अत वेद अपौरुषेय हैं न की पौरुषेय। क्योंकि पुरुष का आदि है। आदि होने से उसका विनाश भी अवश्यम्भावी है। वेद के अपौरुषेय होने से उसका विनाश नहीं होता अतः वह अनादि अनन्त और नित्य है। अतः परमेश्वर के साथ वेद का सम्बन्धभी अनादि तथा अनन्त काल से है।

पूर्व मीमांसकों के मत में वेद नित्य है। और उसका आधार परमेश्वर नहीं होता है। पूर्वमीमांसकों और वेदान्तियों के मत में ब्रह्म वेद का उत्सर्जन कर्ता और आधार है। वेदान्त दर्शन के ब्रह्मसूत्र में 'शास्त्रयोनित्वात' इस प्रथमाध्याय के तीसरे सूत्र में ब्रह्म को वेद चतुष्टय की योनि कहा है। अतः वेद का कारण ब्रह्म है। इस सूत्र के भाष्य में भगवान् शङ्कराचार्य ने कहा- 'न ही शस्य शास्त्रस्य ऋग्वेदादिलक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञात् अन्यतः सम्भवोऽस्ति'। अतः सभी विद्या के आधार अखिल धर्म मूल, वेदशास्त्र के उत्स्रष्टा सर्वज्ञ ब्रह्म ही है अन्य कोई नहीं। शुक्ल यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण में कहा है कि- "ब्रह्म ही त्रयीविद्या अथवा वेदविद्या का प्रकाशक है"। अतः कहा है कि -'ब्रह्म एव प्रथमसृजत त्रयीमेव विद्याम्' (6-1-14)। कृष्ण यजुर्वेद के तैत्तिरीय ब्राह्मण में ब्राह्मण को वेद का उत्स्रष्टा कहा है। अतः तमनु त्रयो वेदा असृजन्त (2-3-10-1)। वैशेषिक दर्शन में तो वेद को ईश्वर की वाणी बताया गया है। अतः उसका प्रमाण स्वीकार किया जाता है।

वेदान्त दर्शन और पूर्वमीमांसा दर्शन में वेद का अपौरुषेयत्व तथा प्रामाणत्व प्रतिपादित है। किन्तु वेद के नित्यत्व के विषय में दोनों दर्शनों में प्रस्थान भेद लक्षित होता है। पूर्वमीमांसा दर्शन में शब्द का नित्यत्व प्रतिपादित है। न्यायदर्शन में शब्द का अनित्यत्व प्रतिपादित

है। जैमिनि तथा न्याय दर्शन में शब्द के अनित्यत्व का खण्डन तथा नित्यत्व प्रतिपान है। शब्द का नित्यत्व प्रमाणित होने पर वेद का भी नित्यत्व प्रतिपादित होता है। कूटस्थ नित्यता और अप्रवाह नित्यता भेद से वेदान्त दर्शन में नित्यता दो प्रकार की है। कूटस्थ अर्थात् हमेशा एक रुप निर्विकार। वेदान्त दर्शन में परब्रह्म की कूटस्थ नित्यता और पारमार्थिक सत्ता स्वीकार की जाती है। ब्रह्म वै सर्वे एव अनित्याः यह वेदान्तियों का सिद्धान्त है। जिसके आविर्भाव के साथ तिरो भाव हैं। जो प्रत्येक कल्प में अभिव्यक्त होता है, और जिसका प्रलय काल में कुछ समय के लिए तिरोभाव होता है वहीं प्रवाहनित्यता है। वैसे पदार्थ की कूटस्थनित्यता नहीं है केवल प्रवाह नित्यता है। क्योंकि प्रत्येक कल्प में उनकी सृष्टि और प्रलय होता है। तथा वेद प्रलयकाल में परमेश्वर में लीन हो जाते हैं। कल्प के आरम्भ में पुनः परमेश्वर वेद को स्मरण करता है। अतः वेदान्त में वेद की प्रवाह नित्यता स्वीकृत है न की कूटस्थ नित्यता। वेद की नित्यता के प्रसङ्ग में वैदान्तिक सिद्धान्त ब्रह्म सूत्र में प्रतिपादित हैं (1-3-29)। वाचा विरूपनित्यया, अनादिनिधाना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयमभूवा आदि श्रुतिस्मृती के वाक्यों में वेद की प्रवाह नित्यता उद्घोषित है। पूर्व मीमांसकों के मत में एकरूप जगत की प्रवाह नित्यता का प्रसङ्ग ही नहीं है। अतः मीमांसा दर्शन में वेद की कूटस्थ नित्यता तथा पारमार्थक नित्यता स्वीकृत है।

पाठगत प्रश्न

535. मीमांस कों तथा वैदान्तियों के मत में वेद पौरुषेय है अथवा अपौरुषेय?

536. पुरुषों का ज्ञान अपूर्ण किस लिए होता है?

537. पुरुषों की रचना में दोष क्यों होते हैं?

538. वेद किससे स्वयं प्रकाशित हुए?

539. वेद परमेश्वर का कौन सा स्वरुप है?

540. वेद का स्मरण कर्ता कौन है?

541. कौन मन्त्र द्रष्टा हैं?

542. प्रत्येक कल्प में परमेश्वर वेद का ज्ञान किसको देता है?

543. प्रलय काल में वेद कहाँ रहते हैं?

544. यास्क के मत में ऋषि शब्द का क्या अर्थ है?

545. वेद के विषय में निरुक्त कार का क्या मत है?

546. आचार्यसायण के मतानुसार वेद पौरुषेय है अथवा अपौरुषेय?

547. वेद भाष्यकारों के मतमें वेद किसके स्वरुप हैं?

548. क्या अनादि है?

549. क्या अनन्त है?

550. पूर्वमीमांसकों के अनुसार वेद नित्य है अथवा अनित्य?

551. पूर्वमीमांसकों के मत में वेद का उत्स्रष्टा कौन है?

552. शास्त्रयोनित्वत् इस सूत्र का सामान्य अर्थ क्या है?

553. किस दर्शन में वेद को ईश्वर की वाणी कहा है?

554. नैयायिकों के मत में शब्द नित्य है अथवा अनित्य?

555. नित्यता कितनी हैं। और कौन-कौन सी हैं?

556. वेदान्त दर्शन में ब्रह्म की कैसी नित्यता वर्णित है?

557. कूटस्थ नित्यता का साधारण लक्षण बताओ?

558. प्रलय काल में वेद कहाँ लीन हो जाते हैं?

559. मीमांसा दर्शन में वेद की किस प्रकार की नित्यता का वर्णन है?

5.9 सांख्य के मत में वेद

सांख्य दर्शन में वेद की नित्यता को स्वीकार नहीं किया गया किन्तु वेद को अपौरुषेय स्वीकार किया है। वेद ऋषि गण कर्तृक और दृष्ट हैं। अत: वेद का कोई रचयिता नहीं है। और न कोई अपने मतानुसार वेद प्रामाण्य अथवा वेद के आविर्भाव का विषय स्वीकार करता है। अत: वेद अपौरुषेय हैं। वेद के कर्ता का कोई भी स्वरुप नहीं है। अत:- न पौरुषेयत्वं तत्कर्तु: पुरुषस्य अभावात् (सांख्यसूत्रं 5-46)। श्रुति तथा स्मृती के अनुसार प्रतिपादित वेद की नित्यता सांख्य के मत में गुरु शिष्य परम्परा में वेद का अविच्छिन्न प्रवाह है। ऋषिगण के द्वारा उच्चारित वैदिक शब्दों का समूह गुरु शिष्य परम्परा में आज भी अक्षुण्ण रूप से उच्चारण होता है। परमेश्वर की तरह ही तथा सांख्य के पुरुष की तरह ही अनादि नित्यता तथा कूटस्थ नित्यता वेद की नहीं है। क्योंकि प्रत्येक मन्त्र का द्रष्टा कोई ऋषि है। अत: उस ऋषि से पूर्व उस मन्त्र का अस्तित्व नहीं था। मन्त्र द्रष्टा से लेकर गुरु परम्परा पर्यन्त वेदाध्ययन निरवच्छिन्न भाव से चलता है। अत: जैसे पूर्वकाल में वेदोच्चारण होता था। उसके समान उच्चारण से आज भी वही उच्चारण प्रथा आदि काल से ही चल रही है। इसलिए वेद के सजातीय उच्चारण प्रवाह की नित्यता स्वीकार की जाती है अर्थात् प्रवाह नित्यता सांख्य दर्शन में स्वीकृत है। न की अनादि अनन्त नित्यता है।

टिप्पणी

5.10 वैयाकरणों के मत में वेद

महाभाष्यकार भगवान् पतञ्ज्लि ने पाणिनिप्रणीत 'तेन प्रोक्तम्' इस सूत्र के भाष्य में वेद की नित्यता के प्रसङ्ग में कहा कि-वेद का अर्थ नित्य है किन्तु शब्द राशि अथवा वर्णानुपूर्वी अनित्य है। उन्होंने कहा कि- अर्थ नित्य है, किन्तु यह वर्णानुपूर्वी ही तो है। प्रत्येक महाप्रलय के अनन्तर वेद की वर्णानुपूर्व्य अक्षर परम्परा का विनाश होता है। प्रत्येक कल्प में पुन ऋषि गण वेद का स्मरण करते हैं। वर्णराशी के लोप होने पर भी वेद के अर्थ नित्य ही रहते हैं। वर्णानुपूर्व्य के भेद से नाना प्रकार की शाखाओं की उत्पत्ति हुई। जैसे ऋग्वेद के इक्कीस, सामवेद के हजार भेद (सहस्रवर्त्मा सामवेदाः) हैं। अतः महाभाष्यकार पतञ्ज्लि के मतानुसार वेद के अर्थ नित्य हैं, तथा वर्णानुपूर्वी अनित्य है। अर्थात् आंशिक रूप में नित्य तथा आंशिक रूप में अनित्य हैं।

न्याय दर्शन में वेद और शब्द की नित्यता स्वीकार नहीं की गयी है। वेद की अनाद्यनन्त नित्यता अर्थात् कूटस्थ नित्यता स्वीकार नहीं की जाती है। परन्तु प्रवाह नित्यता स्वीकार की जाती है। और वहाँ मन्त्रायुर्वेद की तरह ही उसका प्रमाण है आप्त प्रमाण से न्याय दर्शन के सूत्र भाष्य में वात्स्यायन ने कहा कि- मन्वन्तरयुगान्तरेषु चातीतानागतेषु सम्प्रदायाभ्यास-प्रयोगा विच्छेदो वेदानां नित्यत्वम् इति अर्थात् अतीत, अनागत, मन्वन्तर, प्रलय, कल्प तथा सम्प्रदाय क्रम में उसके अभ्यास और प्रयोग निरवच्छिन्न भाव से चलते रहते हैं वही वेद की नित्यता है। यही प्रवाह नित्यता है।

भाष्यकार सायणाचार्य वेद की अनादि अनन्त नित्यता स्वीकार नहीं करते हैं। उनके मतानुसार वेद की नित्यता एक कल्पस्थायी है। प्रत्येक कल्प में वेद अभिव्यक्त होकर प्रलय काल में परमेश्वर में लीन हो जाते हैं। अर्थात् पुनः प्रत्यावर्तित होते हैं। अतः वेद भाष्यकार आचार्यसायण के मतानुसार वेद की प्रवाह नित्यता है।

पाठगत प्रश्न

560. सांख्य के मत में वेद नित्य है अथवा अनित्य?

561. वैयाकरणों के मत में वेद नित्य है अथवा नहीं?

पाठ का सार

वशिष्ठ और विश्वामित्र का आख्यान, च्यवान भार्गव तथा मानवी सुकन्या का आख्यान, ऊर्वशी-पुरूवरा का उपाख्यान, शुनःशेप का उपाख्यान इत्यादि उपाख्यान हमने यहाँ जाने। इनके आलावा भी अनेक उपाख्यान हैं। परन्तु विस्तार के भय से उनका यहाँ वर्णन नहीं किया गया।

इसके बाद हमने वेद के पौरुषेयत्व के विषय में कुछ मतों को जाना। पूर्व मीमांसा दर्शन

वेदान्त दर्शन तथा सांख्य दर्शन में वेद अपौरुषेय है केवल न्याय दर्शन में ही पौरुषेय है। पूर्व मीमांसा दर्शन में वेद की कूटस्थ नित्यता स्वीकार की गई है। वेदान्त दर्शन सांख्य दर्शन तथा न्याय दर्शन में वेद की प्रवाह नित्यता स्वीकृत है न कि कूटस्थ नित्यता। वैयाकरणियों के मत में वेद के अर्थ नित्य हैं परन्तु शब्द राशी अनित्य है। श्रुति स्मृति आदिग्रन्थों में वेद की नित्यता स्वीकार की गई है। वेदान्त सांख्य और न्याय के मत में वेद का कारण ब्रह्म है। वेद के उत्सर्जन से वेद प्रामाण्य और प्रवाह नित्य है। पूर्व मीमांसकों के मत में परमेश्वर ने वेद का उत्सर्जन नहीं किया। उनके मत में शब्द नित्य है। वे जैमिनि न्याय दर्शन में प्रमाणित शब्द के अनित्यत्व का खण्डन करके शब्द के नित्यत्व का प्रतिपादन करते हैं। उनके मत में शब्द के नित्यत्व से वेद का भी नित्यत्व सिद्ध होता है।

पाठान्त प्रश्न

562. उर्वशी पुरुरवा की एक रहस्य वादिनी व्याख्या लिखो?
563. वसिष्ठ विश्वामित्र के उपाख्यान को संक्षेप से लिखो?
564. उर्वशी के तीन शर्त कौन से थे?
565. पुरुरवा ने उर्वशी से कैसे अविच्छिन्न समागम प्राप्त किया?
566. च्यवान भार्गव तथा मानवी सुकन्या का आख्यान कहाँ-कहाँ प्राप्त होता है?
567. उर्वशी के तीन शर्तो के नाम लिखो?
568. उर्वशी-पुरुरवा के आख्यान का प्रतिपादन करो?
569. च्यवान भार्गव तथा मानवी सुकन्या का आख्यान लिखो?
570. वसिष्ठ विश्वामित्र का आख्यान संक्षेप में लिखो?
571. आख्यानों का तात्पर्य लिखिए?
572. शुन:शेप उपाख्यान को लिखिए?
573. न्याय दर्शन के मत में वेद का प्रतिपादन कीजिए?
574. मैमांसिको के मत में वेद का प्रतिपादन कीजिए?
575. सांख्य दार्शनिकों के मत में वेद का प्रतिपादन कीजिए?
576. वैयाकरणियों के मत में वेद का प्रतिपादन कीजिए?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-1

577. हरिश्चन्द्र और विश्वामित्र

578. वरुण का

579. अजीगर्त।

580. ऋग्वेद में।

581. विश्वामित्र का।

582. विश्वामित्र शुन:शेप के लिए।

उत्तर-2

583. उर्वशी को।

584. राजा को नग्न देखकर।

585. उर्वशी एक अप्सरा थी।

586. समय को स्वीकार करके विचार करके किया।

587. वह सदा घृताहार करेगी।

588. उर्वशी के बीना गन्धर्वों को स्वर्ग नीरस और निर्जीव लगने लगा।

589. गन्धर्वों ने कपट से भेड़ चुराया।

590. भेड़ की करुण धवनि को सुनकर, और चोरों से भेड़ की रक्षा के लिए।

591. राजा का नग्न रूप देखकर।

592. कुरुक्षेत्र के एक जलाशय में हंसी के स्वरूप में स्वप्रिया को देखा।

593. अग्नि विद्या के अनुष्ठान से।

594. विक्रमोर्वशीय नामक नाटक।

595. पुरुरवा।

उत्तर- 3

596. मानवी सुकन्या।

597. च्यवन।

598. मानवी सुकन्या।

599. सौख्य का स्तम्भ'।

उत्तर- 4

600. ऋग्वेद में।

601. वसिष्ठ और विश्वामित्र।

602. क्षत्रीय।

603. ब्राह्मणत्व प्राप्ति के लिए।

उत्तर- 5

604. नारी चरित्र की उदात्तता और तेजस्विता का प्रतिपादन।

605. शारीरिक तपस्या का।

606. पुरुषकार का।

607. ऋषि के गौरव, प्रेम महिमा, और कवि की साधना अभिव्यक्त करता है।

608. परमेश्वर के प्रति प्रगाढ श्रद्धा, जीवात्मा के साथ प्रेम, विश्व कल्याण के लिए यही मङ्गलमय मार्ग है।

उत्तर- 6

609. सृष्ट का।

610. पौरुषेय।

611. नित्य।

612. परम पुरुष के द्वारा।

613. परमेश्वर।

उत्तर- 7

614. अपौरुषेय।

615. वे अपूर्ण हैं अत: उनका ज्ञान भी अपूर्ण है।

616. भ्रम प्रमाद विप्रलिप्सा और इन्द्र के अपूर्ण होने कारण दोष उत्पन्न होते हैं।

617. परमेश्वर के साथ से।

618. प्रज्ञा स्वरुप।

619. ब्रह्मा।

620. वेद मन्त्रों को जिसने देखा।

621. ब्रह्म में।

622. परब्रह्म में अभिन्न रुप से।

623. मन्त्र द्रष्टा।

624. वेद स्वयम्भू अपौरुषेय है।

625. अपौरुषेय।

626. महेश्वर के निश्वास स्वरुप।

627. जिसका आदि नहीं है।

628. जिसका अन्त नहीं है।

629. नित्य।

630. ब्रह्म।

631. ब्रह्म वेद चतुष्ट की योनि।

632. वैशेषिक दर्शन में।

633. अनित्य।

634. दो प्रकार से। कूटस्थ नित्यता और प्रवाह नित्यता।

635. कूटस्थ नित्यता।

636. जिसके आविर्भाव के साथ तिरोभाव होता है।

637. परब्रह्म में।

638. कूटस्थ नित्यता।

उत्तर-8

639. अनित्य

640. नित्य।

पांचवां पाठ समाप्त

6

वैदिक यज्ञ

प्रस्तावना

वैदिक काल से भारतीय संस्कृती में यज्ञों का अनुष्ठान शुभ कार्य का सूचक होने से महान फल लाता ही है इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। यज्ञ शुद्धी भवन की क्रिया विशेष होता है। इस क्रिया में अग्नि पवित्रता के प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठापित की जाती है। आयुर्वेद के औषधीय-विज्ञान के मतानुसार यज्ञ में अग्नि से उत्पन्न धुएँ से वायु शुद्ध होती है यह गुण यज्ञ के प्रचार और प्रसार में बहुत ही सहायक सिद्ध होता है। जैसे कि याग के माहात्म्य के विषय में भगवान ने भगवद्गीता में कहा गया है कि- अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृताम वर (8/4)। यज्ञशब्द के तीन अर्थ हैं -- 1- देवपूजा, 2-दान, और 3-संगतिकरण। संगतिकरण का अर्थ संस्थापन है। यज्ञ का एक प्रमुख उद्देश्य धर्मिक प्रवृत्ति और सत्प्रयोजन की सिद्धि में लोगों का एक मिलनसार साधन होना है। इस कलयुग में संघ में शक्ति मुख्य है। परास्त हुए देवताओं की पुन: विजय के लिए प्रजापति ने उनकी पृथक्-पृथक्-शक्तियों का एकीकरण करके एक संघ-शक्ति के रूप में दुर्गा-शक्ती का प्रादुर्भाव किया। और उससे सभी आपदाएं दूर हो गई। मानवजाति की समस्याओं का समाधन समूह शक्ती संघ में गूहित है, अकेला मानव दुर्बल और स्वार्थी हो जाता है।

यज्ञ का तात्पर्य त्याग होता है। अपना प्रिय पदार्थ अग्नि तथा वायु के माध्यम से सकल संसार के कल्याण के लिए यज्ञ के द्वारा बाँटा जाता है। वायु के शोधनसे सभी के आरोग्य वर्धन का अवसर प्राप्त होता है। आहूत वायु प्राणी मात्र का स्वास्थ्य वर्धन करती है, और रोग निवारण में सहायक होती है। यज्ञकाल में उच्चरित वेदमन्त्रों से लोगों के अंत:करण में सात्त्विक शुद्धता उत्पन्न होती है। इस प्रकार स्वल्प प्रयास से ही लोगों का महान् उपकार होता है। यदि माता अपने रक्त-मांस के एक भाग को एक नवजातक के निर्माण के लिए नही छोड़ती, प्रसव वेदना को सहन नहीं करती, नवजातक को दुग्ध नहीं पिलाती, पालन-पोषण आदि में यत्न नहीं करती, सब नि:स्वार्थ भाव से नहीं करती, तो मनुष्यों का जीवन सम्भव नहीं है।

टिप्पणी

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे–

- यज्ञ आदि का भेद जान पाने में;
- होम की विधि आदि जान पाने में;
- इष्ट्यादी के विषय में विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- पशु यागों की विधि जान पाने में;
- सोम आदि यागों की विधि आदि जान पाने में;
- सत्र याग के विषय में ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- स्वयं भी यागादि के विषय में लघु प्रबन्ध रचना कर पाने में।

6.1 यागों का सामान्य परिचय

यागों के सामान्यत: पांच प्रकार देखे जाते हैं- होम, इष्टि, पशु, सोम, और सत्र। वैदिक याग प्रकृति और विकृति के भेद से दो प्रकार के हैं। प्रकृतियाग प्रधानयाग कहलाते हैं। प्रत्येक प्रकृतियाग की बहुत सी विकृतियाँ हैं। समान जातीय यागों का मूल स्वरूप प्रकृति याग कहलाता है। उसी प्रकृतियाग के आश्रय में विकृतियाग अनुष्ठीत होते हैं। विकृतिया का दूसरा नाम अङ्गयाग है। प्रकृतियाग अंगी है। पांच प्रकार के प्रकृतियागों की प्रकृति यहाँ दिखाई गयी है।

6.1.1 होम

होम याग दर्वीहोम कहलाता है। इस याग में प्रतिदिन प्रात: काल और सायंकाल गृहस्थ के अग्निकुण्ड में दूध, दही, पुरोडाश आदि की आहुति दी जाती है। सूर्य और अग्नि इस होमयाग के देवता हैं। प्रात: सूर्य को तथा सायं को अग्नि उद्देश्य करके मन्त्रपाठ आहुति दी जाती है। क्योंकि दर्वी के अग्निकुण्ड में आहुति दी जाती है। अत: इसे दर्वीहोम भी कहते हैं। होमजातीय यागों की प्रकृति अग्निहोत्र है। वैदिक काल में ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य के लिए प्रतिदिन अग्निहोत्र अनिवार्य था। उनको स्वयं ही यह यज्ञ करना होता था, पुरोहित के द्वारा इसे करने की विधि नहीं थी। क्षत्रिय और वैश्य तो पुरोहित से करवाते थे। लेकिन ब्राह्मण को प्रतिदिन स्वयं अग्रिहोत्र करना होता था।

ब्राह्मण प्रतिदिन अग्निहोत्र करे ''ब्राह्मणोऽहरह: अग्निहोत्रं जुहुयात्'' यह श्रुति प्रमाण है। शतपथ ब्राह्मण की उक्ति है ''एतद्वै जरामर्यसत्रं जरया ह्येवास्मात् मुच्यते मृत्युना वा'' अर्थात् अग्रिहोत्र ही जरामर्यसत्र कहा जाता है। इसी कारण मृत्यु के बीना इस याग के नित्यानुष्ठान

से ब्राह्मण की निष्कृति नहीं है। यह ब्राह्मण का नित्य कर्म है। आज भी दाक्षिणात्य और महाराष्ट्र में बहुत से अग्निहोत्रकारी ब्राह्मण दिखते हैं। इस याग में प्रातः सूर्य तथा सायं अग्नि को उद्देश्य मानकर आहुति दी जाती है। एक ही मन्त्र प्रातः और सायं दोनों समय पढ़ा जाता है। प्रातः केवल ''सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः'' तथा सायं सूर्य शब्द के स्थान पर अग्नि शब्द का प्रयोग करके ''अग्निर्ज्योतिः ज्योतिरग्निः'' ऐसा पढ़ा जाता है। सायंकाल में सूर्य उसका तेज अग्नि में प्रतिष्ठापित करके अस्त हो जाता है, अतः सूर्य के स्थान पर अग्नि का पाठ विहित है। प्रातःकालीन आहुति सूर्योदय से पूर्व तथा, सायंकालीन आहुति सूर्य के अस्तगमन के बाद देनी चाहिए इस विषय में ब्राह्मण ग्रन्थों में ऐसा विचार है। एक पक्ष में प्रातः सूर्योदय से पूर्व होम का विधान है, उनके मत में यदि ऐसा नहीं करते तो आदित्य आहुति को स्वीकार नहीं करता है। सूअर उस आहुति को स्वीकार करता है। दूसरे पक्ष में इसके विपरीत मतं प्रदर्शित किया गया है। सूर्योदय होने पर आहुति का दान निष्फल होता है। इस प्रकार दोनों पक्षों के मतानुसार आहुति प्रदान करनी होती है। श्रौत सूत्र में इस विवाद का समाधान विहित है। वेद के शाखा भेद के अनुसार ही आहुति के समय का भी भेद किया गया है। जैसे- बह्वृच्-छन्दोमय शाखा के द्विजातिगण सूर्योदय से पूर्व होम करें। इस कारण वे अनुदित होमी कहलाते हैं। दूसरी जगह कठ-तैत्तरीय-मैत्रायण शाखा के ब्राह्मण उदय के बाद में ही होम करें ऐसा विधान है। इसलिए वे उदित होमी कहलाते हैं। किन्तु दोनों ही सूर्योदय से पूर्व ही गार्ह पत्याग्नि का चयन करके होम कुण्ड का प्रज्वालन करें।

अग्निहोत्र का प्रधान आहुति द्रव्य दुग्ध है, इसलिए यजमान एक गाय का पालन करता है। वह अग्निहोत्री गाय कहलाती है। यज्ञवेत्ता मृदा के एक पात्र से दुग्ध गर्म करता है। वह उष्ण दूध अग्निहोत्रवनी इस नाम से दर्व्य अग्नि में आहूत किया जाता है। प्रातः दो आहुति एक सूर्य, और दूसरी प्रजापति को उद्देश्य करके दी जाती है। जिस दिन अग्निहोत्र आरम्भ किया जाता है। उसी दिन सायंकाल में भी अग्निहोत्र करना होता है। उसी कारण यह अग्निहोत्र नाम से प्रसिद्ध होता है **स्तम्भ श्रौत सूत्र के मत में।**

पहले ही कहा गया है कि ब्राह्मण को स्वयम् ही यह करना होता है। यदि ब्राह्मण अस्वास्थ्य के कारण अक्षम हो तो वह कार्य उसके पुत्र को, और पुत्राभाव में पुरोहित करे। किन्तु पूर्णिमा तथा अमावास्या पर अस्वस्थ होते हुए भी ब्राह्मण को ही करना चाहिए। अविवाहित को अग्निहोत्र का अधिकार नहीं है। विवाहित है किन्तु जो विपत्नीक हो गया, उसको भी अधिकार नहीं है। अतः पुनर्विवाह करना होता है। ऐतरेयब्राह्मण में लिखा है कि यदि उसकी पत्नी मर चुकी है तो पुनर्विवाह करना चाहिए अथवा श्रद्धा को पत्नी रूप में कल्पित करके ब्राह्मण अग्निहोत्र करे।

पाठगत प्रश्न

641. होमयाग का दूसरा नाम क्या है?

642. होमयाग की प्रकृति क्या है?

643. किनके लिए अग्निहोत्र आवश्यक था?

644. अग्निहोत्र करने का अधिकार किसको है?

645. विपत्नीक अग्निहोत्री क्या करे?

6.1.2 इष्टि

इष्टि याग की प्रकृति दर्श पूर्णमास है। दर्शशब्द का अर्थ सूर्येन्दु सङ्गम अर्थात् अमावस्या है। पौर्णमासी अर्थात् पूर्णिमा। यह यज्ञ पूर्णिमा और अमावास्या को किया जाता है। विवाहित, सस्त्रीक आहिताग्नि ब्राह्मण तथा क्षत्रिय अथवा शूद्र भी इस याग के अधिकारी हैं। आहिताग्नि शब्द का अर्थ जिसने गार्ह पत्याग्नि को प्रतिष्ठित किया है। अमावास्या पर दो दिन तथा पूर्णिमा पर दो दिन इस याग का अनुष्ठान करना चाहिए। यह याग पूर्णिमा की प्रातः आरम्भ होता है तथा दुसरे दिन अर्थात् प्रतिपदा के मध्याह्न में समाप्त होता है। अमावास्या पर भी इसी प्रकार का अनुष्ठान विहित है। इस याग का प्रथम दिवस पूर्णिमा हो। अर्थात् अमावास्या पर इसका आरम्भ न करें। इस याग में चार पुरोहित होते हैं - होता, अधवर्यु, अग्नीध्र, और ब्रह्मा। पुरोहितों में तारतम्य नहीं है। सोमयाग में ब्रह्मा सर्वश्रेष्ठ होता है। सभी उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हैं। किन्तु इष्टियाग में सभी पुरोहितों का अधिकार समान होता है। यद्यपि विविध गौण आहुतियाँ तथा देवताओं के नाम इष्टियाग में होते हैं, तथापि उसमें आहुति ही मुख्य होती है। पहली आहुति अग्नि को उद्देश्य करके पुरोडाश की दी जाती है। दूसरी आहुति उपांशु के रूप में प्रसिद्ध है। वह विष्णु-प्रजापति-अग्नि-सोम आदि के लिए निवेदन की जाती है। तीसरी आहुति अग्नि और सोम को उद्देश्य करके पुरोडाश को अर्पित की जाती है। अमावस्या पर तो पुरोडाश निष्ठ पहली आहुति अग्नि के लिए इष्ट होती है। और दूसरी आदि आहुतियों का देवता इन्द्र होता है। और हव्य द्रव्य यथा क्रम दही और दूध हैं। इष्टियाग की समाप्ति पर अग्नि स्विष्टकृत् आहुति अग्नि के लिए अर्पित की जाती है। इसके बाद पुरोहित यज्ञ की आहुति का अवशिष्ट अंश प्रसाद के रूप में ग्रहण करते है, और वह ईडा भक्षण कहलाता है। सभी हव्य द्रव्यों के मिश्रण से ईडा प्रस्तूत किया जाता है। अनुयाज और पत्नीयाज के बाद यजमान के प्रतीक रूप में कुश निर्मित मूर्ति को अग्नि में निक्षिप्त की जाती है। वह कुशमूर्ति कुश पत्थर कही जाती है। वह मूर्ति जब अग्नि में दग्ध होकर भस्मसात् होती है, तब यजमान इस प्रकार चिन्तन करता है कि उसका पार्थिव शरीर दग्ध हो गया। तथा यज्ञ के द्वारा उसकी आत्मा ने विष्णु सायुज्य प्राप्त कर लिया। यह अनुध्यान यजमानों को प्रेरणा देता है। यजमान सोचता है कि वह विष्णु के साथ एकीभूत हो गया। और ''विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधो पदम्'' इस मन्त्र का उच्चारण करके त्रिपद जाता है। इष्टियाग नित्य और काम्य दोनों प्रकार का हो सकता है। जो निरन्तर पूर्णिमा तथा अमावास्या पर इसका अनुष्ठान करते हैं उनके लिए नित्य। और जो नित्य नहीं करते

हैं, केवल कामना सिद्धि के लिए ही करते हैं उनके लिए तो काम्य है। काम्यानुष्ठान में धान्य से पुरोडाश का निर्माण करना चाहिए, वहाँ गेहूँ का व्यवहार निषिद्ध है।

शतपथ ब्राह्मण के मत में दर्शपूर्ण मास सभी यागों की प्रकृति है। इस ब्राह्मण के आदि में ही इष्टी की आलोचना देखी जाती है। इष्टियाग के बहुत से प्रकार हैं। पुत्र की प्राप्ति के लिए पुत्रेष्टि, अनावृष्टि के समय वृष्टी के लिए होने वाला इष्टि याग, खेत की प्रथम फसल देवता को अर्पण करने के लिए आग्रायणेष्टि इत्यादि। अग्निप्रीत्यर्थक पुरोडाशयाग, इन्द्रप्रीत्यर्थक पुरोडाशयाग, और इन्द्रप्रीत्यर्थक पयोद्रव्ययाग तीनों यागों का समुह दर्शयाग होता है। अष्ट कपाल पुरोडाशयाग, उपांशुयाग, और एकादशकपाल पुरोडाशयाग इन तीनों यागों का समुह पौर्णमासयाग कहलाता है। इन समान फलदायक छः यागों का समूह दर्शपौर्ण मासयाग कहलाता है। यह दर्शपौर्णमासयाग तीस वर्षात्मक होता है।

पाठगत प्रश्न

646. इष्टियाग की प्रकृति क्या है?

647. दर्श शब्द का क्या अर्थ है?

648. इष्टियाग के चार पुरोहित कौन से हैं?

649. सोमयाग में सर्वश्रेष्ठ कौन है?

650. पुरोहितों के प्रसाद भक्षण को क्या कहते हैं?

6.1.3 पशु

दैक्ष तथा प्राजापत्य पशु सभी पशुयागों की प्रकृति है। यह ही निरूढ पशुयाग के नाम से प्रसिद्ध है। आहिताग्नि त्रैवर्णिक पुरुष इस याग के अधिकारी हैं। इस याग को प्रतिशरद ऋतु में एकवार करने का निर्देश किया गया है। चाहे तो दो बार अथवा छह बार भी किया जा सकता है। यदि एक बार ही सम्पादन करना हो तो उसका वर्षा ऋतु में सम्पादन करना चाहिए। यदि दो बार करना हो तो प्रथम सूर्य की उत्तरायण वेला में तथा द्वितीय दक्षिणायन के समय में करना चाहिए। यदि छह बार करना हो तो प्रत्येक ऋतु में एक एक सम्पादन करना चाहिए।

पशु इस याग का आहूतिद्रव्य है। इसलिए यह याग पशुयाग कहलाता है। इस याग के देवता प्रजापति, सूर्य, इन्द्र अथवा अग्नि होते हैं। इस याग में छह पुरोहित अपेक्षित होते हैं - अधवर्यु, प्रतिप्रस्थाता, होता, मैत्रावरुण, अग्नि, और ब्रह्मा। इष्टि मूलक यागों में होता ही अनुवाक्य और याज्य उभयविध मन्त्रों का व्यवहार करता है। किन्तु पशुयाग में होता केवल याज्य मन्त्रों का उच्चारण करता है। मैत्रावरुण नामक ऋग्वेदीय पुरोहित अनुवाक्य

टिप्पणी

मन्त्रों का उच्चारण करता है। प्रैषमन्त्रों को भी मैत्रावरुण ही पढ़ता है।

पशुओं की आहूति के लिए खूंटे की अपेक्षा होती है। पलाश खदिर विल्व रोहितक इन चारों वृक्षों में से किसी भी एक की काष्ठ से खूंटे का निर्माण होता है। प्रत्येक खूंटे से विशिष्ट ऐहिक पारलौकिक फल का लाभ होता है। यज्ञ वेदी की पूर्व दिशा में खूंटा स्थापित करना चाहिए। साधारण तया अन्ग विहीन आदि दोष रहित बकरे ही बली के लिए लाए जाते हैं। मन्त्र पूत बकरे को पुरोहित पलाशवृक्ष की शाखाओं से स्पर्श करके ''अग्नये त्वा जुष्टमुपाकरोमि'' इस मन्त्र का पाठ करता है। इसे उपाकरण कहते हैं। बलित्व से प्रदास्यमान पशु श्वास के रोधन से मर जाता है। इस प्रकार के निधन को संज्ञपन कहते हैं। निहत पशु के अङ्ग पुरोहित समान रूप में काटता है। यज्ञ स्थल की उत्तर पूर्व दिशा में पशु संज्ञपन व्यवच्छेद आदि के निमित्त एक स्थान निर्दिष्ट है। पशु का वसा अर्थात् हृदय की मेद को अधवर्यु नामक पुरोहित आहवनी याग्नि में आहुत करता है। एक मिट्‌टी के पात्र में पशु के अङ्गशामित्र प्रवेश के बाद शामित्र नामक अग्नि कुण्ड में पकाए जाते हैं। याग के समय एक पुरोडाश को यज्ञाग्नि में आहुत किया जाता है। केवल प्रतिप्रस्थाता के अलावा सभी यजमान और पुरोहित समर्पित पुरोडाश के अवशेष को खाते हैं। इष्टियाग की आलोचना में कहा गया कि यह कर्म ईडा भक्षण नाम से प्रसिद्ध है। तदनन्तर पशु के पक्के हुए अ्ंग मृत्पात्र से निकालकर टुकड़े टुकड़े करके अधवर्यु आहवनीयाग्नि में आहुति देता है। मिटटी के पात्र में पशु के मांस का वसा नामक जो रस सञ्चि्त होता है, उसकी भी पुरोहित आहुति देता है। इसके बाद ग्यारह अनुयाज और पत्नी संयाज अनुष्ठीत किये जाते हैं।

इस पशुयाग में जो पशु के संज्ञपन श्वास रोधन आदि किये जाते हैं वे पशुवध नहीं माने जाते। वैदिक विधानों के अनुसार यह न तो वध और न ही पाप होता है। यज्ञ में कोई पशु आहुत होता है तो वह पशु अपना पार्थिव शरीर छोड़कर जिस देव को उद्देश्य करके वह आहूत किया गया उस देव के समीप जाता है। यज्ञ से यह पशु अनायास ही दैवी रूप को प्राप्त करता है। पशु को उद्देश्य करके इस प्रस्ंग में ऋक्संहिता का एक ऋम्मन्त्र उल्लिखित है –

''न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवा –
इदेसि पथिभिः सुगेभिः।'' इति।

अर्थात् हे पशू, तू मृत्युलोक को नहीं जा रहा है और न हम तेरी हिंसा कर रहे हैं। तू सरल पथ से देव के समीप जा रहा है। मनु ने भी इस मत का समर्थन किया – यज्ञे वधोऽवधः। अर्थात् यज्ञ मं किया गया वध अवध है। यज्ञ में पशु नहीं मारे जाते हैं। अपितु उसको देवत्व की प्राप्ति होती है।

पुरोडाश के ईडा भक्षण की तरह ही पशुयाग में आहूति के अवशेष पशुमांस को खाने का विधान देखा जाता है। इस पशुमांस के भक्षण के विषय में दो विपरीत मत हैं। कुछ तो पशु को यजमान का चिह्न स्वरूप मानते हैं। पशु के द्वारा यजमान स्वयं की

आहूति देकर देवत्व को प्राप्त करता है। अतः यजमान यदि पशुमांस को खाता है तो वह यजमान के लिए स्वमांस भक्षण के समान होगा। अतः यह निषिद्ध है। किन्तु ऐतरेय ब्राह्मण में इस मत को समालोचित और खण्डित किया गया है। अग्नि और सोम इन दोनों देवताओं की सहायता से इन्द्र ने वृत्र का वध किया। अतः अग्नि और सोम ने इन्द्र से एक पशु माँगा। इन्द्र ने भी प्रार्थित वर प्रदान कर दिया। यहाँ यज्ञकाल में इन्द्र द्वारा प्रदत्त वर की परिपूर्ति के लिए अग्नि और सोम को पशु बली का विधान है। यजमान के प्रतीक के लिए पशुबली नहीं दी जाती। अतः पुरोहितों के लिए अवशिष्ट पशु मांस का भक्षण दोष रहित है, तथा निषिद्ध भी नहीं है। आज भी दाक्षिणात्य पुरोहित पशुयाग में आहूत पशु का अवशिष्ट मांस प्रसाद के रूप में ही खाते हैं।

पाठगत प्रश्न

651. सभी पशु यागों की क्या प्रकृति है ?
652. पशु याग में आहुति के रूप में क्या दिया जाता है?
653. पशु याग के देव कौन हैं?
654. पशु याग के छह पुरोहित कौन से हैं?
655. खूंटा किन वृक्षों की काष्ठ से निर्मीत होता है?

6.1.4 सोम

सभी प्रकार के सोम याग की प्रकृति अग्निष्टोम है। बहुत से ब्राह्मणों में सोमयाग की विवृति देखी जाती है। सोमर रस ही सोम याग की प्रधान आहुति है। पाँच दिन तक यह याग चलता है। वहाँ पहले दिन यजमान पुरोहितों को अभिनन्दन करता है, और दक्षिणा की प्रति श्रुति देकर तथा यज्ञ का नियोजन होता है। दूसरे दिन प्रायणीय-इष्ट का अनुष्ठान किया जाता है। जिस इष्टी से यज्ञ का आरम्भ होता है वह इष्टि प्रायणीय-इष्टि कहलाती है। तदनन्तर दश द्रव्यों के विनिमय से शूद्र के साथ सोमलता का क्रयण किया जाता है। सोम जैसे देवताओं का वैसे ही ब्राह्मणों का राजा है। तीसरे दिन यज्ञस्थल की पूर्व दिशा में प्राग्वंश-नामक महा वेदी का निर्माण होता है। चौथे दिन निरूठ पशुबन्ध याग की प्रक्रिया के अनुसार अग्नि और सोम को उद्देश्य करके एक पशुयाग किया जाता है। अन्तिम दिन अर्थात् पाँचवे दिन प्रकृत अग्निष्टोम का अनुष्ठान होता है। पूर्व के चार दिनों में अनुष्ठित अनुष्ठान अग्निष्टोम अनुष्ठान की भूमिका स्वरूप होते हैं। पाँचवे दिन सोमरस का निष्काशन करना चाहिए। यह अनुष्ठान सोमाभिषव अथवा सोमसवन कहलाता है।

सभी प्रकार के सोमयाग की प्रकृति हि अग्निष्टोम याग है, वह ज्योतिष्टोम भी कहलाता है। इस याग में सोम लता का रस ही प्रधान आहुति द्रव्य है। ऐसे याग में जो बारह

टिप्पणी

स्तोत्र गाए जाते हैं, उनमें अन्तिम स्तोत्र को अग्निष्टोम कहते हैं। क्योंकि अग्निष्टोम नामक सामगान से यज्ञ समाप्त होता है, अत: तज्जन्य याग भी अग्निष्टोम कहलाता है। बहुत से ब्राह्मण यागों में सोमयाग की विवृति देखी जाती है। ऐतरेयब्राह्मण में विशेषत: अग्निष्टोम याग का विवरण है। इस ब्राह्मण में चालीस अध्याय हैं। वहाँ प्रारम्भ के सोलह अध्यायों में अग्निष्टोम याग के ऋग्वेदीय पुरोहितों का कर्तव्य विहित है।

प्रति संवत्सर वसन्त-ऋतु में त्रैवर्णिक यजमान सपत्नीक इस याग का अनुष्ठान करें। बहुत दूर दुर्गम प्रदेश से सोमलता को लाकर यत्न से उसकी रक्षा की जाती थी। अब सोमलता दुष्प्राप्य हो गई। अत: उसके स्थान पर पूतिका-लता का विधान किया जाता है। वैदिक युग में ही सोमलता दुष्प्राप्य थी। शतपथ ब्राह्मण में कहा है कि यदि सोमलता प्राप्त नहीं होती, तो पूतिका से यज्ञ सम्पन करें। इस याग में सोलह पुरोहित अर्थात् सभी अपेक्षित हैं। यजमान और ब्राह्मण मिलकर कुल सत्तरह लोग होते हैं। किसी वेदग्रन्थ में देखा जाता है कि - 'सदस्य' - नामक पुरोहित सत्तरह संख्या का परिपूरक होता है। यज्ञ के प्रथम दिन ही यजमान पुरोहितों का अभिनन्दन करता है तथा दक्षिणा की प्रतिश्रुति देकर यज्ञ का नियोजन करता है। यह रीति ऋात्विजवरण कहलाती है। तदनन्तर दीक्षणीय-इष्टी का अनुष्ठान होता है। यजमान और उसकी पत्नी यज्ञ में दीक्षित होते हैं, इस प्रकार दीक्षा से उन दोनों का नया जन्म अर्थात् आध्यात्मिक जन्म होता है। दूसरे दिन प्रात: प्रायणीय-इष्टी का अनुष्ठान विहित है। जिससे इष्ट् यज्ञ का आरम्भ होता है वह प्रायणीय इष्टि कहलाती है। इस इष्टी में पथ्यास्वति, अग्नि, सोम, सविता, और अदिति इन पांच देवाओं का आह्वान किया जाता है। अदिति पुरोडाश तथा अन्य चार देवओं के लिए तेज घृत व आज्य आहुतित्व का विधान है। याज्ञिक परिभाषा में घृत यदि तरल हो तो वह आज्य कहा जाता है, किन्तु पीण्डिभूत हो तो घृत कहलाता है। ''हविर्विलीनमाज्यं स्याद् घनीभूतं घृतं विदु:'' यह श्रुति है। प्रायणीय इष्टी के बाद सोमलता क्रयण का अनुष्ठान देखा जाता है। यह सोमक्रय कहलाता है। दशद्रव्यों के विनिमय से किसी छोटी सोमलता का क्रय किया जाता है। वे दश द्रव्य एकवर्षीय गोवत्स, सुवर्ण, एक बकरा, एक दूध देने वाली गाय और उसका बछड़ा, एक सांड, शकट वहन के लिए एक बैल, एक छोटा सांड, एक गोवत्स, और एक वस्त्र। सोम देवताओं तथा ब्राह्मणों के राजा हैं। अत: राजकीय सम्मान सहित सोम का वहन किया जाता है। पुरोहित गणों के द्वारा चालित दो बैलों के द्वारा वाहित दो शकटों से सोम यज्ञ स्थल पर लाया जाता है। राजा सोम यजमानों के मान्य अतिथि हैं। सोम के लिए आतिथ्येष्टि नामक इष्टी का विधान है यहाँ इस इष्टी में नौ मृत्क-पाल विष्णु को उद्देश्य करके पुरोडाश को अर्पण किये जाते हैं। आतिथ्येष्टी के बाद प्रवर्ग्य नामक अनुष्ठान, और तदनन्तर उपसत्-इष्टी का अनुष्ठान किया जाता है। तीसरे दिन यज्ञ स्थल की पूर्व दिशा में प्राग्वंश-नाम का महावेदी का निर्माण किया जाता है। चौथे दिन निरूठ पशुबन्धयाग की प्रक्रियानुसार अग्नि और सोम को उद्देश्य करके एक पशुयाग विहित है। इस दिन दक्षिणस्थ दिशा में हविर्विधन वेदी में सोम ले जाया जाता है। यह अनुष्ठान हविर्विधन प्रणयन कहलाता है। माध्यन्दिन सवन में पशुमांस और पुरोडाश की आहुति निर्दिष्ट है, सायन्तन अर्थात् तीसरेसवन में पशु के नाना-अङ्ग आहुति

के रूप में दिए जाते हैं। एतदनन्तर पत्नीसंयाज अनुष्ठित है। पुरोहित इस दिन प्रत्यूषा पूत सलिल में अवगाहन करके सोम सवन करते हैं। विहङ्ग काकली के आरम्भ से पूर्व होता प्रातः अनुवाक पढ़ता है। एक प्रस्तर खण्ड पर सोमलता को स्थापित करके उसके ऊपर 'वसतीवरी' नामक जल का सिञ्चन करते हैं। दूसरे पत्थर पर सोमलता के पेषण से रस निकाला जाता है। ग्रह नामक पात्र में निष्काशित सोमरस स्थापित किया जाता है, बकरे के चर्म से निर्मित 'दशापवित्र' नामक तित उसे उसका परिशोधन किया जाता है। द्रोणकलश नामक पात्र में विशुद्ध रस स्थापित किया जाता है। प्रत्येक दिन तीन बार सोमरस के निष्काशन का विधान है, प्रातः मध्याह्यण और सायंकाल। इन तीनों सवनों का नाम यथाक्रम प्रातःसवन, माध्यन्दिनसवन, तृतीयसवन है। आहुति के अवशिष्ट सोमरस का चमस से पुरोहितगण और यजमान को पान कराया जाता है। माध्यन्दिन सवन के बाद पुरोहितगण को दक्षिणा दी जाती है। गौ, अश्व, गधा, बकरा, भैसा, तिल, दाल मांस धन्य और जौ दक्षिणा के रूप में दीये जाते हैं। तृतीयसवन के बाद अवभृथ स्नान का अनुष्ठान किया जाता है। और यह अनुष्ठान अवभृथ-इष्टिनाम से जाना जाता है। यजमान और अन्य सभी पुरोहित अवभृथ स्नान के लिए जलाशय को जाते हैं। यह अवभृथ-इष्टि ही अग्निष्टोम का अन्तिम अनुष्ठान है। वरुण और अग्नि इसके इष्ट देवता हैं। चार प्रयाजों और दो अनुयाजों का अनुष्ठान विहित है। वरुण को उद्देश्य करके एक पुरोडाश अर्पण करते हैं। अवभृथ-इष्टी में सभी आहुतियाँ जल में ही दी जाती हैं, न की अग्नि में। यजमान अवगाहन रत पुरोहितों के शिर पर जल सिञ्चता है। दीक्षणीय-इष्टिकाल में यजमान और उसकी पत्नी पांच दिन तक परिधृत वस्त्र अवभृथ स्नान के अनन्तर छोड़ कर उन्नेता नामक पुरोहित द्वारा प्रदत्त नवीन वस्त्र का परिधान करते हैं। जलाशय से यज्ञ स्थल की और प्रत्यागमन के समय में यजमान उदयनीय नामक अन्तिम अनुष्ठान का आचरण करता है। उदयनीय-इष्टी में दूध-मधु-दही-शर्करा-आदि के मिश्रण से निर्मित चरु आहुति के रूपमें दी जाती है।

पाठगत प्रश्न

656. अग्निष्टोम का दूसरा नाम क्या है?

657. अग्निष्टोम में मुख्य आहुति कौन सी है?

658. किस ब्राह्मण में अग्निष्टोम का विवरण विस्तृत रूप से है?

659. देवता और ब्राह्मणों का राजा कौन है?

660. याज्ञिक परिभाषा में द्रुत घृत का क्या नाम?

661. सोमयाग के लिए कितने दिन अपेक्षित हैं?

662. प्रतिदिन कितनी बार सोमरस के निष्काशन का विधान है?

663. अग्निष्टोम का अन्तिम अनुष्ठान क्या है?

टिप्पणी

6.1.5 सत्र

हमारी लौकिक संस्कृती में बहुत से याग हमारे द्वारा परिलक्षित तथा पालित हैं। वस्तुतः तो वैदिकों के लिए याग बहुत पुण्य प्रदायक हैं। हम यहाँ बहुत से यागों के विषय में जान सकते हैं। हम जान सकते हैं कि कौन सा याग कितने दिनों में समाप्त होता है, किस प्रकार उन यागों का अनुष्ठान करना चाहिए इत्यादि।

सत्र याग की प्रकृति गवामयन नामक यज्ञ है। गवामयन याग सोमयाग के अन्तर्गत आता है। अतः गवामयन की प्रकृति अग्निष्टोम है। सत्र और गवामयन के मध्य श्रेणी विन्यास पर्यालोचना की जाती है। अतः कहा जाता है कि - यज्ञ को जातिगत दृष्टी से देखें तो गवामयन याग सोमयाग के अन्तर्गत आता है परन्तु काल की दृष्टी से उनके स्वरूप वश श्रेणी विन्यास किया जाता है। जो याग एक दिन समाप्त होता है वह एकाहयाग कहलाता है। जो याग एकाधिक दिवसीय अथवा बारह दिनों से कम दिनों में सम्पन्न होते हैं वे अहीनयाग होते हैं। बारह दिनों से अधिक दिन जिस याग में लगते हैं वह सत्रयाग कहलाता है। सामवेद के पञ्चविंश ब्राह्मण में विविध सत्र याग की विधि और अनुष्ठान का स्वरूप वर्णित है। गवामयन याग के सम्पादन के लिए एक वत्सर अपेक्षित है। अतः गवामयन याग सत्रयाग के अन्तर्गत आता है। सत्रयाग तीन भागों में विभक्त है - प्रथमार्ध में 180 दिन, द्वितीयार्ध में 180 दिन और तृतीयार्ध में 180 दिनों की अपेक्षा है। सौकर्य के लिए गवामयन याग के अन्तर्गत यागों के अनुष्ठान काल आदि की सूची नीचे उपस्थापित है -

	याग का नाम	**अनुष्ठानकाल-दिनसंख्या**
प्रथम से छह मास में	अतिरात्रयाग	1
	चतुर्विंशस्तोमयुक्त-उक्थ्य	1
	चत्वारः अभिप्लवषडहः (4*6=24) एकः पृष्ठ्यषडहः (1*6=1) 24+6=30(पञ्चकृत्वः आहुतिः = 30*5= 150	150
	त्रयः अभिप्लवषडहः (3*6)	18
	एकः पृष्ठ्यषडहः (1*6)	6
	अभिजित्	1
	त्रयः स्वरसामः	3
	कुल दिवस	- 180

	विषुवदिवसः (एकविंशयागः)	1
शेष मास में	त्रयः स्वरसामः	3
	विश्वजित्	1
	एकः पृष्ठ्यषडहः	6
	त्रयः अभिप्लवषडहः (3*6)	16
	एकः पृष्ठ्यषडहः (1*6=6) चत्वारः अभिप्लवषडहः (4*6 = 24) 24+6=30 (चतुःकृत्वः आहुतिः = 30*4 = 120	120
	त्रयः अभिप्लवषडहः	18
	एकः गोष्टोमः एकः आयुष्टोमश्च	2
	दशरात्रः	10
	महाव्रतः	1
	अतिरात्रः	1
	सम्पूर्ण दिवस –	180
	महायोग– 180+1+180	361

इस सूची से स्पष्ट ही ज्ञान होता है कि आदि 180 दिनों और अन्तिम 180 दिनों के अनुष्ठान में विपरीतानुक्रम का अनुसरण किया जाता है।

आदि के 180 दिनों के अनुष्ठान में प्रथमदिन में अतिरात्र और अन्तिम दिन में स्वर साम विहित हैं परन्तु अन्तिम 180 दिनों के अनुष्ठान में प्रथम दिन स्वर साम और अन्तिम दिन में अतिरात्र विहित है। अतः विपरीत अनुक्रमानुसरण वश दो की दर्पण प्रतिविम्ब से तुलना की जाती है। उपर्युक्त आवली में दोनों प्रकारों के षडह का उल्लेख दिखाई देता है, अभिप्लव षडह और पृष्ठ्य षडह। षडह याग छह दिनों में निष्पन्न होने वाला याग है। अभिप्लव षडह के छः दिन –

पहले दिन – ज्योतिष्टोम।

दूसरे दिन – गोष्टोम।

तीसरे दिन – आयुष्टोम।

चौथे दिन – गोष्टोम।

पांचवे दिन - आयुष्टोम।

छठे दिन - ज्योतिष्टोम।

अभिप्लव षडह के प्रथमर्ि दन तथा अन्तिम दिन ज्योतिष्टोम याग का विधान है। अतः कहा भी है - "उभयतो ज्योतिरभिप्लव षडहः।" दोनों ज्योतिष्टोम यागों के मध्यस्थ दिन उक्थ्यनाम से जाने जाते हैं। परन्तु पृष्ठ्य षडह के प्रथमदिन ज्योतिष्टोम याग होने पर भी अन्तिमदिन उक्थ्ययाग विहित होता है, इस दिन ज्योतिष्टोम याग नहीं होता है। गवामयन यज्ञ की अनुष्ठानावली और काल विभाग अच्छी तरह से परिलक्षित किये जाये तो ज्ञात होता है कि सूर्य की वार्षिकगति से इसका सौसादृश्य है। सम्पूर्ण याग दो विभाग में विभक्त है। और प्रतिभाग के अनुष्ठान काल में छः माह लगते हैं प्रतिमास में तीस दिनों का अनुष्ठान भी विहित है। दोनों भागों का मध्यस्थ विषुव दिवस है। आदित्य की वार्षिक गति के दोनों भागों में भी विपरीत क्रम दिखता है। सूर्य के उत्तरायण में होने से दिन के स्थिति काल की वृद्धि होती है, दक्षिणायन में दिन के स्थिति काल का ह्रासहोता है। यह वृद्धि ह्रास समानानुपात से ही होते हैं।

गवामयन याग सोमयाग के अन्तर्गत आता है अतः सोमयाग की प्रकृति अग्निष्टोम है। इसलिए दोनों यागों के समान संख्यक पुरोहित और समानाहुति द्रव्य प्रयुक्त होते हैं। 360 दिनों से अधिक दिनों में निष्पाद्य सभी सत्र यागों की प्रकृति गवामयन याग है और 360 दिन से कम दिनों में निष्पाद्य सकल सत्र यागों की प्रकृति द्वादशाहनामक याग है।

पाठगत प्रश्न

664. सत्रयाग की क्या प्रकृति है?
665. गवामयन याग किसके अन्तर्गत आता है?
666. जो याग एक ही दिन में समाप्त हो जाते है उनके नाम लिखो?
667. जो याग एक से अधिक दिन तक किन्तु बारह दिवसों से कम दिनों तक है उसका क्या नाम है?
668. बारह दिनों से अधिक दिन जिस याग में अपेक्षित हैं, उस याग का क्या नाम है?

पाठसार

दूसरा एक याग गवामयन याग है। जो सत्रयाग की प्रकृति है। यह गवामयन याग सोमयाग के अन्तर्गत आता है। इस कारण गवामयन याग की प्रकृति अग्निष्टोम है। एक ही दिनमें सम्पन्न याग एकाह याग कहलाता है। बारह दिनमें सम्पन्न याग अहीन याग कहाता है। उससे अधिक दिनों में सम्पन्न याग सत्र याग होता है। गवामयन याग में अनुष्ठानावली

का काल विभाग के साथ सूर्य का वार्षिकगत सादृश्य है। सोमयाग की प्रकृति अग्निष्टोम है अतः दोनों के समान संख्यक पुरोहित समानाहुति द्रव्य प्रयोजन होते हैं। 360 दिनों से अधिक दिनों में जो याग सम्पादित होते हैं उन यागों की प्रकृति गवामयन याग होता है। और 360 दिनों से कम दिनों में जो याग निष्पन्न होते है उनकी प्रकृति द्वादशाहनामक याग है। इस प्रकार यहाँ संक्षेप से सोम-सत्र-पशु-आदि और कुछ याग विस्तार से वर्णित हैं। इनके अतिरिक्त भी अनेक याग हैं। उनका विस्तार के भय से यहाँ वर्णन नहीं किया जा सका। ऐसे कुछ याग वैदिक काल में आर्यों के द्वारा अनुष्ठीत होते थे, परन्तु आज काल के ग्रास से प्रायः बहुत से लुप्त हो गये। तथापि अभी भी ब्राह्मणों द्वारा ये याग बहुत सी जगह किये जाते हैं। हमें वैदिक रीति की अवश्य ही रक्षा करनी चाहिए।

पाठान्त प्रश्न

669. याग के विषय में विस्तार से व्याख्या लिखो?

670. अग्निष्टोम याग के विषय में संक्षेप से आलोचना करो?

671. सोमयाग में पांच दिनों में अनुष्ठित अनुष्ठानों का संक्षेप से विविरण लिखो?

672. सोमरस के विषय में संक्षिप्त टिप्पणी लिखो?

673. सोमयाग में पाँच दिनों में विहित अनुष्ठान का विवरण लिखो?

674. इष्टियाग कब-कब अनुष्ठीत होते हैं?

675. तीन आहुतियाँ किनको दी जाती हैं?

676. इष्टियाग के अन्तमें पुरोहित क्या करते हैं?

677. इष्टियाग किनके लिए नित्य है और किनके लिए काम्य है?

678. इष्टियाग के काम्यानुष्ठान का क्या-क्या वैशिष्टय है?

679. होम की दर्वी होम यह अभिध कैसे दी गई?

680. होमयाग में किस समय आहुति दी जाती है?

681. होमयाग की आहुति के प्रदान के विषय में कैसी मति होती है।

682. अस्वस्थ होने पर ब्राह्मण और यजमान क्या करें?

683. अग्निहोत्र विधी में अविवाहित तथा विपत्नीक को क्या करना चाहिए?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-1

684. दर्वीहोम।

685. अग्निहोत्र।

686. ब्राह्मणों का।

687. सपत्नीकों का।

688. पुनर्विवाह।

उत्तर-2

689. दर्शपूर्णमास।

690. सूर्येन्दुसङ्गम।

691. होता, अधवर्यु, अग्नीध्र, और ब्रह्मा।

692. ब्रह्मा।

693. ईडाभक्षण।

उत्तर-3

694. दैक्ष अथवा प्राजापत्य।

695. पशु।

696. प्रजापति, सूर्य अथवा इन्द्र, और अग्नि

697. अधवर्यु, प्रतिप्रस्थाता, होता, मैत्रावरुण, अग्नि और ब्रह्मा।

698. पलाश खदिर विल्व रोहितक इन चार वृक्षों में से किसी की भी।

उत्तर-4

699. ज्योतिष्टोम।

700. सोमरस।

701. ऐतरेय ब्राह्मण में।

702. सोम।

703. आज्य।

704. पाँच।

705. तीन बार।

706. अवभृथ-इष्टि

उत्तर-5

707. गवामयन नामक यज्ञ।

708. सोमयाग में।

709. एकाहयाग।

710. अहीनयाग।

711. सत्रयाग।

छठा पाठ समाप्त

7

वैदिक देवता

प्रस्तावना

ब्राह्मण वेदविधि का अनुसरण करके यज्ञादि करते हैं, और उससे स्वर्गादि प्राप्ति, मानवों के अच्छे जीवन तथा प्राकृतिक दुर्योग आदि से स्वयं की तथा दुसरे की रक्षा, इत्यादि रूप फल प्राप्त करते हैं। और वह फल देवों की सन्तुष्टी के लिए देव ही पाते हैं। अतः वेदोक्त कर्म का लक्ष्य देवों को सन्तुष्टि प्रदान करना है। कौन देव? इस विषय में इस पाठ में विस्तार से आलोचना प्रस्तुत है। देवों के स्थान भेद से तथा काल भेद से भु, अन्तरीक्ष तथा द्युलोक के देव होते है इसका विवरण इस पाठ में प्राप्त होता है। देवों में कौन मूल है इस विषय में यास्क और कात्यायन ने अपने अपने मत दिए है। वे इस अध्याय में बताए जाएंगे। देव साकार है या निराकार इस विषय में पण्डितों के कुछ अभिप्राय है, वे भी यहाँ बताए गये है। कुछ मुख्य देव हैं यथा- इन्द्र, अग्नि, रुद्र, वरुण इत्यादि। और पाठान्त में इन देवों के स्वरूप विषय में संक्षेप में आप जान सकेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे–

- देवताओं का सामान्य परिचय जान पाने में;
- देवताओं का विभाजन जान पाने में;
- देवता विषय में यास्क मत और कात्यायन मत जान पाने में;
- देवता के साकार चिन्तन कर पाने में।

- इन्द्र का स्वरूप जान पाने में;
- अग्नि के स्वरूप को जान पाने में;
- वरुण का स्वरूप जान पाने में;
- अश्विन का स्वरूप तथा रुद्र का स्वरूप को जान पाने में।

7.1 देवताओं का सामान्य परिचय

7.1.1 देवता पद का निर्वचन

दिवादिगणीय दिव्-धातु से अच्प्रत्यय होने पर देवः ऐसा रूप सिद्ध होता है। दीव्यति प्रकाशते इति देवः। दिव्-धातु के क्रीडाविजिगीषादि बहुत अर्थ है। यहाँ द्युति अर्थ वाली या कान्ति अर्थ वाली ग्रहण की है। देव शब्द से तल् प्रत्यय करने पर देवता बनता है। देव और देवता शब्द दोनों पर्याय हैं।

देव शब्द के निर्वचन के प्रसङ्ग में निरुक्तकार यास्काचार्य कहते है – ''देवो दानाद् वा दीपनाद् वा द्योतनाद् वा भवति'' इति। अर्थात् जो दान करता है, जो चमकता है और जो अन्य को प्रकाशित करता है वह देव है। यज्ञादि में वेदमन्त्रों से देवों की स्तुति की जाती है। लेकिन उन देवों द्वारा यजमान की अभीष्ट की सिद्धि होती है। इस प्रकार से देवकामना को पूरा करने वाले हैं। मन्त्रों के देव चैतन्य स्वरूप है। देवों का प्रकृत स्वरूप ब्रह्म ही है और ब्रह्म स्वयं प्रकाश स्वरूप है। वो ब्रह्म एक ही है तथ भिन्न रूप से प्रकाशित होता है। कहा भी है – **''एकं सद्विप्रा बहुध वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः''** इति। और उसके प्रकाश से ही ये समस्त जगत प्रकाशमान है। अतः द्योतनात् देवः ये सिद्ध हो जाता है।

वेद में बहुत से देवों के नाम मिलते हैं। वैदिक साहित्य में प्रधान रूप से दो ग्रन्थों में वेद के देवता तत्व का प्रतिपादन करते हैं। एक तो शौनक द्वारा रचित बृहद्देवता ग्रन्थ, और दूसरा यास्कर्षि विरचित निरुक्त का दैवत काण्ड। वेद का प्रत्येक मन्त्र किसी देव को उद्देश्य करके ही प्रयुक्त है। अतः वेद के सही ज्ञान के लिए देवता ज्ञान आवश्यक है। बृहद्देवता में कहा है–

> **वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नतः।**
> **दैवतज्ञो हि मन्त्राणां तदर्थ मवगच्छति॥ इति॥**

अर्थात् वेद के प्रतिमन्त्र के देवता का ज्ञान प्रयास पूर्वक अर्जित करना चाहीए। क्योंकि देवता ज्ञान होने पर ही मन्त्र का अर्थहृदयगत होता है। वेद में बहूत से देवों के तथा बहुत सी देवियों के नाम मिलते हैं। कुछ देव इस प्रकार है – अग्नि, वायु, इन्द्र, सूर्य, विष्णु, सोम, वरुण, पूषा, मरुत्, रुद्र, सविता, अर्यमा, अपान्नपात्, अश्विन, आदित्य, द्यौ,

ऋभु, यम आदि अनेक है। कुछ देवियाँ इस प्रकार है - वाक्, उषा, अदिति, रात्रि, पृथ्वी, सरस्वती, श्री, धिषणा जैसी अनेक है। कुछ देवता के नाम द्वन्द्व समास में सर्वदा कीर्तित है यथा - मित्रावरुणौ, इन्द्राग्नी, सूर्याचन्द्रमसौ, द्यावापृथिव्यौ, अग्नीषोमौ इत्यादि। अश्विन देवता सदा युगलरूप में तथा यमजरूप मर कल्पित है, अतः अश्विनौ ये द्विवचन प्रयोग दिखता है। प्राचीन रोम के क्यास्टर (Castor) तथा पोलुक्स् (Pollux) जिस प्रकार युगल है वैसे ही अश्विन देव भी युगल रूप में स्वीकृत है। विश्वे देवाः ये सर्वदा बहुवचनान्त रूप में प्रयुक्त है, क्योंकि ये गोष्ठी वाचक और बहुदेवता वाचक शब्द है।

पाठगत प्रश्न

712. बृहद्देवता-ग्रन्थ किसकी रचना है ?

713. कुछ देवों के नाम लिखो।

714. कुछ देवियों के नाम लिखो।

715. द्वन्द्व समास से कौनसे देव कहलाते हैं ?

716. विश्वेदेवाः यहां बहुवचन क्यों है ?

7.2 देवताओं का विभाजन

निरुक्तकार यास्क के मत में वेद के देव स्थान भेद और काल भेद से तीन प्रकार में विभक्त है। यथा भूलोक के देव, अन्तरिक्ष लोक के देव और द्युलोक के देव। वहां अग्नि, आप, पृथ्वी, सोम भूलोक के देव है। इन्द्र, मरुत्, अपान्नपात् (विद्युत्), पर्जन्य जैसे अनेक अन्तरिक्ष के देव है। सूर्य मित्र, वरुण, द्यु, पूषा, सविता, आदित्य, अश्विनी कुमार, ऊषा, रात्रि इत्यादि देव द्युलोक के हैं। उन तीनो में प्रत्येक लोक का एक देव प्रधान है और अन्य उसकी भिन्न अभिव्यक्तियां है। भूलोक के देवों में **अग्निः**, अन्तरिक्ष के इन्द्र और द्युलोक के सूर्य ये मुख्य देव हैं। यास्क ने भी कहा है - "तिस्र एवं देवता इति नैरुक्ता अग्निः पृथ्वी स्थानो वायुर्वेन्द्रो वाऽन्तरिक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानः" इति। इन तीनों देव के भिन्न कर्म और भिन्न विशेषण हैं अन्य देव के नाम करण के अनुसार प्रयोजन है। अग्नि के विशेषण भेद से या कार्य भेद से वैश्वानर, जातवेदा, नाराशंस, सुसमिद्ध, तदनुपात् इत्यादि नाम, और भी वायु से मातरिश्वा, इन्द्र, रुद्र, अपान्नपात् अनेक देवों के नाम तथा सूर्य से आदित्य, विष्णु, मित्र, वरुण, पूषा, भग, ऊषा, अश्विनीकुमार, सविता ये नाम उत्पन्न हुए। यास्क का ये मत कपोल कल्पित नहीं है, अपितु ऋग्वेद में इस मत का समर्थन किया है, "सूर्यो नो दिवस्पातु वातोऽन्तरिक्षादग्निर्नः पार्थिवेभ्यः" (10.151.1) इति। ऋग्वेद में सभी देव के नाम नहीं उल्लेखित है, केवल तीन नाम उल्लेखन से उनका मुख्यत्व प्रतिपादित होता है। देवों का निवास स्थल पृथ्वी, अन्तरिक्ष

द्युलोक यथाक्रम से भूः, भुवः, स्वः इन नामों से जाने जाते है। वैदिक ग्रन्थ में देवों की संख्या तैंतिस 33 स्वीकृत है। वहां 11 भूलोक में, 11 अन्तरिक्ष में और 11 द्युलोक में रहते है। शतपथ ब्राह्मण में भी 33 देवों को स्वीकृत किया गया है। किन्तु ऋक्संहिता में 3.1.9 तथा 10.52.6 संख्या के मन्त्र में 3339 देव है ऐसा कहा गया है। पौराणिक काल में ये संख्या 33 करोड़ तक हो गई थी। मुख्य अग्नि वायु और सूर्य में अग्नि निकटतम (अग्निर्वै देवानामवमः), तथा सूर्य अधिक दूर (सूर्यो देवानां परमः)। अन्य देवों का इन्ही दोनों में अन्तर्भाव हो जाता है। सूक्ष्म विचार से ज्ञात होता है कि वे तीनों देव परमात्मा की ही तीन अभिव्यक्तियां है। देवता के विचार में निरुक्त में यास्क ने कहा है कि -देवतायाः एक आत्मा बहुध स्तूयते (निरुक्ते 7-4)'। जैसे एक ही देह के भिन्न-भिन्न अङ्ग होते है वैसे ही एक ही अङ्गि आत्मा के वे भिन्न देव अङ्ग स्वरूप होते हैं – एक ही आत्मा के अन्य देव प्रत्यङ्ग होते हैं। वेद की संहिता में भी देवों का स्वरूप स्पष्ट बताया गया है–

एकं सद्विप्रा बहुध वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः। (ऋ. 1.164.64)
एकं सन्तं बहुध कल्पयन्ति। (ऋ. 10.114.5)

ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के 55 वें सूक्त के प्रत्येक मन्त्र के अन्तिम पाद में -'महद्देवानामसुरस्त्वमेकम्' ऐसा कहा गया है। असून् प्राणान् राति ददाति इति असुरः, प्राण को देने वाला वह परमात्मा ही है। ऋग्वेद के अपर मन्त्र में कहा है - 'एकं वै इदं विभु बभूव सर्वम्' इति। परमात्मा से ही देवों की उत्पत्ति हुई है- शुक्लयजुर्वेद में स्पष्ट शब्दों में कहा है - 'एतस्यैव सा विसृष्टिरेष उ ह्येव सर्वे देवाः इति। इस प्रकार ये सब देव एक ही परमात्मा के अंश है, ऐसा ज्ञान होता है।

वेद में वर्णित देव किसी न किसी पार्थिव वस्तु या पार्थिव प्राकृतिक पदार्थ के प्रतीक है। प्रत्येक पार्थिव पदार्थ की चौतन्य सत्ता या अधिष्ठाता कोई न कोई देव होता है। यथा 'यमान पार्थिव अग्नि का चैतन्यमयी देवता अग्नि, चक्षुर्ग्राह्य सूर्य का अधिष्ठाता सूर्यदेव, आदित्यदेव, या सविता हैं। एवं पार्थिव पवन वायु, झञ्झावात आदि के देव मरुत हैं, विद्युत के अपान्नपात्, मेघ के पर्जन्य हैं। सूर्य का गगन में स्थान भेद से तथा पृथ्वी पर आवर्तन होने से, स्थान भेद से और काल भेद से सूर्य के मित्र-वरुण-सवितृ-भग-पूषा-आदित्यादि नाम होते है। वज्र के देव रुद्र, इस विषय में वेद में बहुत वर्णन प्राप्त होता है। वज्र से सभी जीव डरते हैं, शिर पर वज्राघात से मृत्यु ही हो जाती है। अत एव रुद्र का मन्त्र में सदैव विद्रूप और संहारक रूप में भीषण वर्णन मिलता है। रुद्र की शिवमूर्ति ऋग्वेद में नही है। शुक्लयजुर्वेद में रुद्राष्टाध्ययी में रुद्र का भीषण रूप तथा कल्याण रूप दोनों को वर्णित किया गया है। 'घोरञ्च मे घोरतरञ्च मे' यहाँ भीषणत्व तथा 'शिवाय च शिवतराय च' यहां कल्याणत्व घोषित है।

पाठगत प्रश्न

717. भूलोक के देव कौन है ?

718. अन्तरिक्ष के देव कौन है ?

719. द्युलोक के देव कौन है ?

720. असुर शब्द का अर्थ क्या है ?

721. देवों का निवास स्थान विषय में निरुक्त में क्या कहा गया है ?

722. वायु कौन से देव उत्पन्न करते है ?

723. अग्नि को निकटत्व कहने वाली श्रुति कौन सी है ?

724. वज्र के देव कौन है ?

725. रुद्र का कल्याणत्व किस श्रुति से प्रतीत होता है ?

7.3 देवता विषय में यास्कमत और कात्यायनमत

निरुक्तकार यास्क के मत में सभी देवों का मूल **अग्निः** ही है। उनके मत का समर्थन ब्राह्मण ग्रन्थ में स्थित प्रमाण से मिलता है 'अग्निः सर्वा देवताः' इति। पार्थिवाग्नि ही अन्तरिक्ष में इन्द्ररूप में तथा विद्युद्रूप में द्युलोक में सूर्यरूप में प्रकटित होती है। द्युलोक के सभी देव सुर्य के तथा अन्तरिक्ष के सभी इन्द्र के नाना प्रकाश स्वरूप है। सूर्य और इन्द्र अग्नि के रूप भेद मात्र है। त्रिलोक के सभी देवता अग्नि के नाना अभिव्यक्ति मात्र है ऐसा मान के अग्नि एक ही देव है इसके निरूपण के लिए यास्क ने ऋग्वेदीय मन्त्र उद्घृत किया - 'तमू अकृण्वन् त्रेधा भुव' इति (10.88.10)। ये अग्नि तीन प्रकार की है अर्थात् पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक ये तीनों स्थान भेद से भिन्न है। बृहद्देवता ग्रन्थ में देखें तो -

> **इहाग्निभूतस्तु ऋषिभिर्लोके स्तुतिभिरीडितः।**
> **जातवेदा स्तुतो मध्ये स्तुतो वैश्वानरो दिवि॥ इति॥**

कात्यायन ने इस मत का समर्थन नहीं किया। 'सर्वानुक्रमणी' इस ग्रन्थ में वैदिक देवता का मूल सूर्यःया आदित्य है ऐसा कहा है। सभी देवों की उत्पत्ति का बीज सूर्य का ही लक्षण तथा वर्णन प्राप्त होता है। निःसन्देह रूप से उन्होंने स्पष्ट कहा है - 'एक एव महानात्मा वेदे स्तूयते, स सूर्य इति व्याचक्षते' इति, तथा एकैव देवता स्तूयते आदित्य इति' इति च। आदित्य के कार्य या गुणों के आधार पर देवों के नाम हुए। वैसे ही दिवस में आदित्य का नाम सूर्य, रात्री में वह अकृश्य होता है तब वह वरुण है। रात्रि

समाप्ति पर अल्प अन्धकार में ये सविता है। अन्धकार के नष्ट होने पर यह अश्विन है। सूर्योदय से पहले पूर्व दिशा रक्त वर्ण युक्त होती है तब ये उषा कहलाता है। उदित मात्र होने तक ये भग है। मध्याह्न में गगन मण्डल के मध्य भाग में जब होता है तब ये विष्णु कहलाता है - इसी प्रकार 12 आदित्य होते है। ऐतरेय ब्राह्मण में आदित्य का अस्त होना वर्णित है - 'आदित्यो वा अस्तं गच्छन् अग्नावनुप्रविशति' इति।

यहाँ यास्क और कात्यायन के मत में समन्वय प्रदर्शित किया है। यास्क के अग्नि का तथा कात्यायन के सूर्य का सकल देवतात्व परस्पर विरुद्ध होने पर भी यास्क द्वारा उनका समन्वय प्रदर्शित किया है। देवता के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है कि – मनुष्यों में जैसे पिता से ही पुत्र की उत्पत्ति है वैसे देवों में नहीं है। क्योंकि देव इतरेतर जन्मा तथा इतरेतर प्रकृति वाले होते है, अर्थात् परस्पर संयोग से उत्पन्न होते है। श्रुति में भी कहा है कि - 'अग्नेर्वा आदित्यो जायते' इति। अग्नि से जैसे सूर्य का जन्म वैसे ही सूर्य से आदित्य का जन्म हुआ ऐसा तात्पर्य है। पदार्थ विज्ञान की दृष्टि से भी यास्क ने ये प्रमाणित किया है - सूर्य की रश्मि काँच या मणि का भेदन कर शुष्कतृण के उपर गिरती है तो अग्नि उत्पन्न होती है। इस प्रकार सूर्य अग्नि का जनक हुआ। जैसे मिट्टी से निर्मित घट शुरई थाली आदि परस्पर भिन्न हैं परन्तु मिट्टी की दृष्टि से सभी एक ही है परन्तु देव की दृष्टि से सभी देव भिन्न हैं परन्तु एकत्व की दृष्टि से सभी में परमात्मा का स्वरूप निहित है।

पाठगत प्रश्न

726. तमू अकृण्व त्रेधा भुवे इसका क्या तात्पर्य है ?

727. बृह देवता में अग्नि का निवास त्रय सूचक श्लोक कौन सा है ?

728. अग्नेर्वा आदित्यो जायते इससे क्या ज्ञात होता है ?

7.4 देवता का साकार और निराकार

देव साकार है या निराकार, शरीर धारी है या अशारीरक इस विषय में नाना दर्शनों में नानानिरूक्तकारों ने नाना मत बताएं हैं। वैदिक काल में भी इसमे मत भेद था आलोचना द्वारा साकार और निराकार का समन्वय प्रदर्शित किया गया है। यास्क ने साकार या शारीरिक इस अर्थ में पुरुषविध शब्द और निराकार या अशारिक इस अर्थ में अपुरुषविध शब्द प्रयुक्त किया है। वहां देवः पुरुषविधः साकारः इस विषय में युक्त से आलोचना करते है -

1) देवों का शरीर पुरुष के शरीर के समान नही होता है तो कर्मादि भी नही होने चाहिए। तब उनकी स्तुति भी उन्माद प्रलापवद् ही होनी चाहिए। और फिर मन्त्र

भी निरर्थक होने चाहिए। और भी ऋग्वेद में बहुत से संवाद सूक्त हैं यथा सरमापणि संवाद, ऊर्वशी पुरुरवा संवाद, यमयमी संवाद इत्यादि। सूर्य सूक्त में सूर्य के विवाह में बहूत से देवों का आवाह्न दिखाई देता है। इस प्रकार देवों का शरीर चैतन्य नही होता है तो आलाप, विवाह या प्रणय कथा की प्रासंगिकता कैसे हो सकती है ?

2) वेदमन्त्रों में मनुष्य में समान देव के भी पाणि-पाद या नयन -कर्ण इत्यादि सम्यक् वर्णित हैं। जैसे- शुक्लयजुर्वेदीय पुरुषसूक्त में वेद पुरुष का बड़ा ही विस्तृत वर्णन है।

3) वेद में देवों के अश्व, रथ, वज्र, गृह, पत्नी, दुर्ग आदि का भी वर्णन प्रमाणित करता है कि मनुष्य के समान देव भी शरीरधारी हैं। इन्द्र और सूर्य में अश्व का, रूद्र का वज्र निर्माण, इन्द्र का वज्र प्रयोग, अग्नि इन्द्र सविता देव की रथ की कहानियाँ वेद में बहुत प्राप्त होती है। अग्नि इन्द्र रुद्र का यथा क्रम अग्नायी-इन्द्राणी-रुद्राणी स्त्रीयों का भी वर्णन प्राप्त होता है।

4) मनुष्य जैसे कर्मादि करते हैं, वेद में देवों के भी कर्मादि वर्णित हैं। जैसे इन्द्र सोम रस पीते है, युद्ध करते हैं, वृत्र को मरते हैं और अश्व चलाते हैं। अग्नि यज्ञ की हवि ग्रहण करते हैं, मरुत वंशीं बजते हैं, रुद्र भीषण गर्जन करते हैं, विष्णु विशाल नेत्रों से समग्र जगत् का निरीक्षण करते हैं, ऐसी कथाएं वेदों में मिलती हैं।

इस प्रकार कुछ लोग इस युक्ति चतुष्टय से देवों का साकारत्व प्रतिपादित करते है और कुछ इन युक्ती का खण्डन करके देवों का निराकारत्व प्रमाणित करते हैं। और वे युक्तियाँ इस प्रकार हैं -

1) मनुष्यों के शरीर प्रत्यक्ष दृश्य हैं, अग्नि वायु सूर्य आदि का शरीर प्रत्यक्ष प्रमाण से नहीं सिद्ध है, इस कारण उनका साकारत्व नहीं स्वीकार ने योग्य है।

2) स्तुति कृत उसी से देवों के शरीर होते हैं ये कारण अयुक्त हैं। क्योंकि वेद में अचेतनों की भी स्तुति विंहित है। जैसे - अक्षक्रीडा, ओषधिवृक्ष, पत्थर, उलूखमूषल इत्यादि का वर्णन प्राप्त है।

3) देव कर्म करते हैं इससे वे पुरुषवत् है ये युक्ति सही नहीं है क्योंकि अचेतन भी कर्म करते हैं ऐसा वेद में प्राप्त होता है। जैसे सोमरस के निष्कासन के लिए जो पत्थर के टुकड़े थे उनके लिए कहा गया है -'अभिक्रन्दति हरितेभिरासभि:' इति। एक अन्य जगह भी कहा है -'होतुश्चित् पूर्व हविरद्यमाशते' यहां पत्थर के टुकड़े होता से पहले ही हवि का भोग करते है, ऐसा कहा है।

4) पुरुष भोग्य द्रव्य ही देवों के साकारत्व को प्रमाणित नही कर सकते हैं, क्योंकि वेद में अपुरुषविध अशरीरि भी पदार्थ में भोग्यद्रव्यों का प्रयोग करते दिखते है, यथा 'सुखं रथं युयुजे सिन्धुरश्मिन्' यहाँ नदी और रथ योजना की कथा कही गई है।

जैमिनी के मत में तो देवों का अलग रूप नहीं है। मन्त्रमयी देवता हैं। मन्त्र को छोड़कर देवों की पृथक् सत्ता नहीं है। यज्ञादि क्रिया में जब मन्त्र उच्चारित होते हैं तब मन्त्ररूप में देवों का आविर्भाव होता है। इस मत के समर्थन करते हुए उक्ति भी कही गई है की देवों का पृथक रूप से शरीर होता है यदि एक ही क्षण में भिन्न-भिन्न यज्यों में एक साथ सम्पूर्ण यज्ञ में उपस्थिति सम्भव नहीं है। इसलिए उसे मन्त्रमयी स्वीकार किया है। इससे यह पता चलता है की उनका मन्त्रोच्चारण काल में ही आविर्भाव होता है। महाभाष्यकार भी इसीलिये कहते है - 'एक इन्द्रशब्द: क्रतुशते प्रादुर्भूत:' इति। वेदान्त दर्शन में वेदव्यास ने तथा पूर्वमीमांसास्थ जैमिनि इससे समर्थित नहीं हैं। शङ्कराचार्य भी ब्रह्म सूत्र भाष्य में वेदव्यास को समर्थन देते है।

पाठगत प्रश्न

729. साकार शब्द के दो पर्यायवाची लिखो।

730. कुछ संवाद सूक्त के नाम लिखो।

731. 'अचेतनानां स्तुति:' विहिता इसका क्या तात्पर्य है ?

732. देवों के साकारत्व के विषय में जैमिनि का क्या मत है ?

7.5 इन्द्र का स्वरूप

इदि-धातु से निष्पन्न इन्द्र शब्द परमेश्वर वाचक है। इन्द्र सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, शासक, स्थावर और जङ्गम के तथा चेतन अचेतन पदार्थ के नियन्त्रक हैं। वेद के देवों में इन्द्र का स्थान महत् है। गुरुत्व, महिमाशाली, शौर्य और वीर्य और सूक्त संख्या में इन्द्र अद्वितीय हैं। ऋग्वेद में प्राय:दो सौ सूक्तों द्वारा इन्द्र का आह्वान किया है। उसका रूप वर्णन भी ऋषियों ने किया। वो अधार ओष्ठ से चारु, नासिका से उन्नत, और वर्ण से उज्ज्वल है। वैदिक काल में आर्यों की शरीराकृति कैसी थी इस विषय में विद्वान् इन्द्र का रूप वर्णन दिखाकर ही सिद्धान्तमत को पुष्ट करते है। कपिशवर्ण से युक्त अश्व उसके रथ को ले जाते हैं। त्वष्टा एक सहस्र सुवर्ण वज्रों को बनाकर उसको समर्पित करता है। उन वज्र राशि से उसने असुरों का नाश किया।

सम्वर-अहि-वृत्र-अर्वुद-विश्वरूप आदि असुरों का इन्द्र ने नाश किया। वृत्र ने जल को रोका इसलिए इन्द्र में उसका नाश कर धरा पर जल गिराया। इन्द्र स्थल पर अश्व से तथा नदी में नाव से चलते हैं। उसके शत्रुओं द्वारा अजेय व् नए-नए दुर्गों में कुछ लौह से, और कुछ पत्थरों से निर्मित थे। ये देवों के अधिपतित्व का वर्णन है। इन्द्र सोम को आनन्द से पीता है सभी सूक्त में कीर्ति व्याप्त है। उसकी पत्नी इन्द्राणी या शची है। और वह नाना वर्ण से युक्त परिधान धारण करती है। इद्र का अन्य एक नाम शतक्रतु

भी है। क्रतु शब्द का अर्थ यज्ञ या कर्म है। शतक्रतु इसका अर्थ अनन्त कर्म कर्ता हुआ। इन्द्र युद्ध जय, असुर वध, दुष्टों का नाशक, जल निष्कासन इत्यादि कर्म करता था। बलवीर्य के सभी सर्व कर्म इन्द्र के ही है। और कहते है -'या च का च बलकृतिः इन्द्रकर्मैव तत्' इति। वृत्र का हन्ता वह ही है, अतः वृत्रघ्न नाम भी है। उपासकों के प्रति वह दयालु है तथा उनको बहुत धन देता है। अतः मघवा नाम भी है।

इन्द्र के सभी सूक्त त्रिष्टुप में ही हैं। त्रिष्टुप्छन्द, अन्तरिक्ष लोक, माध्यन्दिन सोम सवन, ग्रीष्मऋतु, सोमपान, वीरत्व पूर्ण कर्म, असुर वध ये सब विषय इन्द्र के साथ नित्य सम्बद्ध है। इन्द्र का असुर वध ऐतिहासिक वृत्तान्त और प्राकृतिक विघ्न चिह्न इन विषयों में विद्वत्सभा में नाना मत है। कुछ इन्द्र का असुर वध को आर्यों द्वारा अनार्य के वध का प्रतीक कहते हैं, और कुछ सुर्य द्वारा असुरनाश भी कहते हैं। अन्य कुछ असुर के साथ मेघ का तथा इन्द्र के साथ वज्र-विद्युत्-वायु का समावेश करते है।

पाठगत प्रश्न

733. इन्द्र शब्द किस धातु से निष्पन्न है ?
734. इन्द्र के अश्व किस वर्ण के हैं ?
735. इन्द्र की पत्नी कौन है ?
736. इन्द्र का शतक्रतु नाम करण क्यों हैं ?
737. इन्द्र के स्तुतिपरक सूक्त किस छन्द में रचित है ?
738. इन्द्र का वृत्रघ्न ये नामकरण क्यों है?
739. इन्द्र को क्यों मघवा कहा जाता है ?

7.6 अग्नि स्वरूप

इन्द्र से परम तथा गुरुत्व दृष्टी में अग्नि का नाम आता है। ऋग्वेद में दो सौ सूक्त से अग्नि का आवाहन और स्तुति विहित है। उसका आनन और पृष्ठ देश घृतवर्ण से युक्त है। केशराशि स्फुलिङ्ग वर्ण युक्त है। 'मश्रु पीले रंग से युक्त है। दन्तपङ्क्ति सुवर्ण के समान चमकदार हैं। देवों में यह निकटतम हैं (अग्निर्वै देवानामवमः)। देवसाक्षात् रूप से हवि ग्रहण नहीं करते हैं, अग्नि द्वारा ही देव हवि का आस्वादन करते हैं। अतएव अग्नि को देवों का मुख कहा है (अग्निर्वै मुखं देवानाम्)। वैदिक आर्यो के गृह में गार्हपत्याग्नि होती थी। अग्नि का रथ हिरण्य वर्णीय और उज्ज्वल है। कपिश वर्णीय अश्व उसके रथ को ले जाते हैं। ये देवों का प्रतिनिधि है, पुरोवर्ती होकर देवों का आह्वान करता है, इसलिए वह पुरोहित कहलाता है। होता, अधवर्यु, पुरोहित और ब्रह्मा ये चार नाम

अग्नि को उद्देश्य करके प्रयुक्त हैं। द्युलोक-भूलोक-अन्तरिक्षलोक सर्वत्र ही इसका गमन है। ऋग्वेद के आदिसूक्त अग्निसूक्त से ही अग्नि की प्रधानता स्पष्ट हो जाती है। दो अरणि के घर्षण से अग्नि उत्पन्न होती है। इसी को ही अग्नि मन्थन कहा जाता है। अतएव दो अरणीयाँ पार्थिव अग्नि की माता-पिता कहलाती हैं। अग्नि के सभी सूक्त गायत्री छन्द में वर्णित/लिखित है।

पाठगत प्रश्न

740. अग्निमुखाः देवाः इति क्यों कहा गया है ?

741. अग्नि को पुरोहित क्यों कहा जाता है ?

742. अग्नि को उद्देश्य करके कौन सी संज्ञा प्रयुक्त होती है ?

743. ऋग्वेद का आदि सूक्त कौन सा है ?

744. अग्नि के मन्त्र कौन से छन्द में है?

7.7 वरुण का स्वरूप

ऋग्वेद के बारह सूक्तों में वरुण की स्तुति की गई है। ऋग्वेद के मुख्य देवों में से ये एक है। ये मित्र का सहचर, अतः समास प्रकरण में मित्रा-वरुणौ ये प्रयोग मिलता है। दिवसीय सूर्य का नाम मित्र है। रात्री कालीन सूर्य का नाम वरुण है। निरुक्त में वृ-धातु से वरुण शब्द निष्पन्न है। आवृणोति सतः पदार्थान् इति वरुणः। अतएव सूर्य रात्रि में भी रहता है ये आर्य जानते थे, ऐसा ज्ञात होता है, और भी ऐतरेय-कौषीतकि-पञ्च्विंशब्राह्मण में ये विषय सुस्पष्ट उल्लिखित है। वरुण नैतिकी जगत में नियम का रक्षक है। उसी के नियन्त्रण से सूर्य-चन्द्र-नक्षत्रादि अपनी कक्षा में ही घूमते हैं। अतएव धृतव्रत, धर्मपति उसी की संज्ञा है। विहगऊर्ध्व को जहाँ जाते है, दिक्चक्र वाले पोत जहां जाते है, सब वह देखता है। रात्रि में चौर्य-व्यभिचारादि पाप उससे परोक्ष नहीं होते है। अतएव वरुण के तुष्ट होने पर पाप नष्ट होते हैं। अतएव उसको आर्य सम्राट् या चर कहते है।

पाठगत प्रश्न

745. वरुण शब्द किस धातु से निष्पन्न है ?

746. सूर्य का दिवस में और रात्रि में दो नाम क्या है ?

747. सूर्य चन्द्रादी को कक्ष में घुमने से कौन नियन्त्रित करता है ?

748. वरुण को चर क्यों कहा जाता है ?

7.8 रुद्र का स्वरूप

ऋग्वेद में रुद्रदेव का स्थान माहात्म्य इन्द्र-अग्नि-वरुणादि देवों की अपेक्षा बहुत न्यून है। किन्तु यजुर्वेद और अथर्ववेद में रुद्रदेव का स्थान अतीव महत्त्वपूर्ण है। यजुर्वेद में एक सम्पूर्ण अध्याय रुद्रदेव सम्बन्धि है। और वह अध्याय रुद्राध्याय कहलाता है। जन्म के बाद ये देव रोया था इसीलिये रुद्र का रुद्रत्व कारण है। और कहा भी है - ''स जात एवारोदीत् तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्'' इति।

यजुर्वेदीय रुद्राध्याय के अनुसार रुद्र एक बलवान् सुसज्जित योद्धा है। रुद्र के हस्त में सुवर्ण निर्मित धनुष और बाण हैं। उसका धनु सहस्र जनों को भी मारने में समर्थ है। और उसके हाथ में कृपाण है। ये सभी वज्रायुध उसके हाथ में सर्वदा सुशोभित होते है। शरीर के रक्षण के लिए उसके शिर पर छत्र रखा है और चर्मवस्त्र से आच्छादित हैं। रुद्रदेव का धनु सर्वदा ही बाण सहित ही रहता है। उसके आयुध इतने भयङ्कर हैं कि ऋषि भी इनसे अपने प्राण, पुत्र-पौत्र गो, अश्वादी प्राणियों की रक्षा के लिए सर्वदा प्रार्थना करते हैं। इसलिए यजुर्वेद में कहा है - ''मा न स्तोके तनये मा न आयुषि मा न गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः''।

ऋग्वेद में रुद्रदेव की बलशालित्व के कारण स्तुति है। ये स्वर्ग के रक्त वाराह कहलाते हैं। वह मरुतों का पिता है। रुद्र का रूप सौन्दर्य भी बहुत जगह प्राप्त होता है। साथ ही उसकी बाहू बलिष्ठ, देह आदित्य के सामान चमकती हुई, सुवर्ण निर्मित आभूषणों से भूषित उसकी देह, कनक कान्ति से युक्त जटा कलाप है। इसके त्री अम्बक अर्थात् लोचन है। अम्बकत्रय होने से इसका नाम त्र्यम्बक है। जटावत्व के कारण कपर्दी भी कहते है। ''इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने'' इति श्रुति। अनेक रूप धारण करने से रुद्र को पुरुरूपः भी कहते है।

जिस रुद्रदेव का संहारक रूप प्राप्त होता है वैसे ही उसकी शिवमूर्ति भी बहुत जगह प्राप्त होती है। वह सभी वैद्यों में श्रेष्ठ वैद्य है। ''भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि'' इति श्रुति। ऋग्वेद में भी कहा है ''शतं हिमा अशीय भेषजेभिः'' इति। अर्थात् तेरे द्वारा प्रदत्त औषध से मैं भली प्रकार सौ वर्ष तक जीवित रहूं। वेद में रुद्र को भयंकर से भयंकर कहा है तो वहीं उसे शिव से शिवतर अर्थात् कल्याणकारी भी कहा है।

पाठगत प्रश्न

749. रुद्र के रुद्रत्व का क्या कारण है ?

750. क्यों रुद्र को त्र्यम्बक कहा जाता है ?

751. किसका नाम कपर्दी है ?

752. रुद्र के भिषक्तव अर्थात वैद्य का प्रमाण किस श्रुति में मिलता है ?

753. रुद्राध्याय किस वेद में है ?

7.9 अश्विन का स्वरूप

द्युलोक के दो देव हैं, अश्विनौ। ये परस्पर यमज या युग्मक है। अश्वाः अनयोः सन्ति इति अश्विनौ। ये दीप्तिमान और कमल मालाधारी हैं। ये अधिक मधु पीते हैं। ऋग्वेद में अश्विनों को रुद्र और सिन्धु का पुत्र कहा है। वे दोनों पूर्व में राजा थे। परंतु पुण्यकर्म से देवत्व को प्राप्त कर लिया। सूर्य कन्या सूर्य ने स्वयम्बर सभा में अश्विनौ को पति रूप में परिगृहीत किया। अश्विनों के साथ सूर्या रथ से जाती है। उसका रथ मधुमय है। उसके रथ को कभी अश्व, कभी विहङ्ग, कभी वृषभ और कभी पक्षयुक्तहय अर्थात् गरुड़ ले जाते है। उषाकाल और सूर्योदय के मध्य में अश्विन का आविर्भाव होता है। अर्थात् उषा के आगमन के बाद ये उसका अनुकरण करते हैं।

विपत्ति में प्राणियों का रक्षण उनका मुख्यकर्म है। ऐसे ही एक बार समुद्र में भुज्यु नाम के राजा का पोत भङ्ग होने पर अश्विनों की प्रार्थना की और अश्विनों ने उस राजा की प्राण रक्षा की अत्रि को तमोमयकार गृह से छुड़ाया। इसीलिये ऋग्वेद में कहा है - ''ऋषीसे अत्रिमश्विनावनीतमुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति'' इति। न केवल मनुष्यों को अपितु मनुष्येतर प्राणियों की भी प्राण रक्षा वो ही करते हैं ऐसे ऋग्वेद में बहुत उदाहरण प्राप्त होते हैं। ऐसे ही एक बार वृक-वर्तिका-संग्राम में वर्तिका पक्षि की वृक् से रक्षा की तब ऋग्वेद में कहा - ''आस्नो वृकस्य वर्तिकाममीके, युवं नरा नासत्यामुमुक्तम्'' इति। स्वर्ग लोक के चिकित्सक रूप में ये दोनों बहुप्रसिद्ध हैं। इन दोनों को स्ववैद्य भी कहते है। इनकी चिकित्सा से अन्धे भी दृष्टि शक्ति को प्राप्त कर लेते हैं। रोगी रोग मुक्त हो जाते हैं। अश्विनों ने ही च्यवन नाम के वृद्ध ऋषि को यौवन प्रदान किया।

पाठगत प्रश्न

754. अश्विन कौन हैं ?

755. ये अधिक क्या पीते है सोम या मधु?

756. अश्विन के पत्नी कौन है ?

757. अश्विनों का मुख्य कर्म क्या है ?

758. वृक-वर्तिका-संग्राम में अश्विनों ने किससे और किसकी रक्षा की ?

पाठसार

हमारा मानव जीवन जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र भेद से चतुर्विध होता है। वैसे ही वेदोक्त देवों का भी वर्ण भेद होता है। और कहा भी है महाभारत के शान्ति पर्व में-

आदित्याः क्षत्रियास्तेषां विशश्च मरुतस्तथा।
अश्विनौ तु स्मृतौ शूद्रौ तपस्युग्रे समास्थितौ॥
स्मृतास्त्वङ्गिरसो देवा ब्राह्मणा इति निश्चयः।
इत्येतत्सर्वदेवानां चातुर्वर्ण्यं प्रकीर्तितम्॥

वेद में प्रत्येक मन्त्र किसी न किसी देव को उद्देश्य करके ही प्रयुक्त है। वेद में अग्नि-वायु-इन्द्रादि देवों के तथा वाक्-उषा-आदित्यादि देवियों का वर्णन प्राप्त होता है। और वही भूलोक के देव में अग्नि, अन्तरीक्ष के देव इन्द्र, द्युलोक के सूर्य मुख्य देव है। यास्क मत में मुख्य देव अग्नि हैं तथा कात्यायन मत में मुख्य देव सूर्य हैं कुछ पण्डित देवों का साकारत्व तथा कुछ निराकारत्व प्रतिपादन करते हैं। वेद में मुख्यतया वर्णित इन्द्र अग्नि वरुण देवों का विस्तृत रूप से व्याख्यान प्राप्त होता है। रुद्र भी वेद में बहुत से मन्त्रों से प्रशंसित हैं और परस्पर यमज अश्विनी कुमार विपत्ति में प्राणियों की रक्षा करते हैं, उनके विषय में भी संक्षेप से ज्ञात होता है इस पाठ में।

पाठान्त प्रश्न

759. संक्षेप से देवों का विभाजन करो ?

760. वरुण का स्वरूप लिखो।

761. अग्नि का स्वरूप लिखो।

762. इन्द्र का असुरवध इससे क्या-क्या द्योतित होता है ?

763. इन्द्र का माहात्म्य वर्णन करो।

764. इन्द्र के रूप का वर्णन करो।

765. देवों का साकारत्व युक्ति पूर्वक बताओ।

766. वेदों का मन्त्रमय शरीरत्व प्रमाणित करो।

767. सूर्य के स्थान भेद से नाम कैसे भिन्न है ?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

देवताओं का सामान्य परिचय

768. शौनक द्वारा

कुछ देव अग्नि, वायु, इन्द्र, सूर्य, विष्णु, सोम, वरुण, पूषा, मरुत्, रुद्र, सविता, अर्यमा, अपान्नपात्, अश्विन, आदित्य, द्यौ, ऋभु, यम इत्यादि।

769. कुछ देवियाँ वाक्, उषा, अदिति, रात्रि, पृथ्वी, सरस्वती, श्री, धिषणा आदि अनेक।

770. मित्रावरुणौ, इन्द्राग्नी, सूर्याचन्द्रमसौ, द्यावापृथिव्यौ, अग्नीषोमौ इत्यादय

771. गोष्ठिवाचकत्व तथा बहुदेवता वाचकत्व से

देवों का विभाजन

772. अग्नि, आप, पृथ्वी तथा सोम भूलोक के देव है और इन्द्र, मरुत्, अपान्नपात् (विद्युत्), पर्जन्य अन्तरिक्ष के देव हैं।

773. सूर्यः मित्रः, वरुणः, द्युः, पूषा, सविता, आदित्यः, अश्विनी कुमार, ऊषा, रात्रि इत्यादि देव द्युलोक के है

774. असून् प्राणान् राति ददाति इति असुरः, प्राणदेने वाला वह परमात्मा ही है।

775. तीन ही देवता है नैरुक्तकार के मत में

776. अग्नि पृथ्वी स्थान वायु और इन्द्र अन्तरिक्ष स्थानीय सूर्य द्युस्थानीय इति।

777. वायु के मातरिश्वा, इन्द्र, रुद्र, अपान्नपात् अनेक हैं।

778. अग्निर्वै देवानामवमः इति।

779. रुद्र।

780. शिवाय च शिवतराय च

देवताविषय में आचार्य यास्क का मत और कात्यायन मत

781. सूर्य और इन्द्र अग्नि की ही अभिव्यक्ती है ऐसा मानकर अग्नि ही एक व अभिन्न देव है ऐसा निरूपण करते हुए यास्क ने ऋग्वेद में उद्धृत किया है –'तमू अकृण्वन् त्रेधा भुवे' इति (10.88.10)।

782. ये अग्नि भूत लोक में ऋषियों द्वारा स्तुतियों से याद किया जाता है। जात वेदास्तुति के मध्य में तथा वैश्वानर दिन में।।

टिप्पणी

783. अग्नि से जैसे सूर्य का जन्म वैसे सूर्य से आदित्य का जन्म हुआ

देवताओं का आकार चिन्तन-

784. शारीरिक, और पुरुषविध।

785. संवाद सूक्त जैसे सरमापणि संवाद, ऊर्वशी पुरुरवा संवाद, यमयमी संवाद इत्यादि

786. यथा अक्षक्रीडा, ओषधिवृक्ष, प्रस्तर, उलूखमूषल इत्यादि का वर्णन वेद में प्राप्त होता है।

787. देवों का पृथक्तया रूपादि नहीं है।

इन्द्र का स्वरूप

788. इदि-धातू से निष्पन्न।

789. कपिश वर्णीय।

790. इन्द्राणी या शची।

791. शतक्रतु का अर्थ अनन्त कर्म कर्ता। इन्द्र युद्धजय, असुरवधा, दस्युओ का नाश, जलसंवादसूक्त यथा सरमापणि संवाद, ऊर्वशीपुरुरवा संवाद, यमयमी संवाद इत्यादि का निष्कासन कर्म करता है।

792. त्रिष्टुप्छन्द से।

793. वृत्र का हन्ता है वह।

794. उपासकों के प्रति वह दयालु तथा उनको बहुत धन देता है।

अग्नि का स्वरूप-

795. देव साक्षात् हवि नहीं खाते है, अग्नि द्वारा ही देव हवि का आस्वादन करते है।

796. देवों का यह प्रतिनिधि है, पुरोवर्ती होकर देवों का आवाह्न करता है।

797. होता अधवर्यु पुरोहित तथा ब्रह्मा ये चार संज्ञा है।

798. अग्निसूक्त।

799. गायत्री छन्द में।

वरुणस्वरूप

800. वृ धातू से

801. मित्र और वरुण।

802. वरुण द्वारा।

803. वह दिवस में धरा पर जहां कही भी होता है, सब कुछ देखता है, और भी रात में चौर्य-व्यभिचारादि पाप उसकी आखों से परोक्ष में नही होता है, इसलिए उसको सम्राट् या चर कहा जाता है।

इन्द्रस्वरूप

804. जन्म के बाद ये देव रोया था अतः वह रुद्र कहलाया।

805. तीन अम्बक होने से त्र्यम्बक कहलाता है।

806. जटावान होने से रुद्र का नाम कपर्दी है।

807. ''भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि'' इति श्रुति।

808. रुद्राध्याय यजुर्वेद में है।

अश्विन का स्वरूप

809. अश्विन द्युलोक के दो यमज युग्मक देव है।

810. मधु पीते है।

811. सूर्य की कन्या सूर्या है।

812. विपत्ति में प्राणियों की रक्षा उनका मुख्य कर्म है।

813. वृक-वर्तिका-संग्राम में अश्विनों ने वृक से वर्तिका की रक्षा की।

सातवां पाठ समाप्त

टिप्पणी

वैदिकसूक्त

भूमिका

इस जगत में कीट पतङ्ग से लेकर सभी प्राणियों की सुख प्राप्ति और दु:ख परिहार के लिए दो प्रवृत्तियां रात दिन देखी जाती हैं। सुप्रसिद्ध और सर्वविदित जो सुख अच्छे कर्मानुष्ठान से उत्पन्न होते हैं। दु:ख बुरे कर्मानुष्ठान से उत्पन्न होते हैं। और उसके अनुष्ठान के बिना कर्म स्वरूप का ज्ञान नहीं होता है। अत: सुख की इच्छा दु:ख की अनिच्छा के लिए पुरुष को अवश्य ही पहले कर्मो के स्वरूप का शोभनीयत्व और अशोभनीयत्व जानना चाहिए। उस ज्ञान के बिना वेदार्थ ज्ञान दुष्कर है। अत: विद्वानों के द्वारा वेद के अर्थ अध्येय, और विचारणीय हैं। और वह वेद ऋक् यजु साम अथर्व भेद से चार प्रकार से विभक्त हैं। कहीं-कहीं पर तीन प्रकार भी दिखाए गये हैं। प्रत्येक वेद भी अनेक शाखाओं से युक्त हैं। उन शाखाओं में प्रत्येक मन्त्र ब्राह्मण भेद से विभिन्न हैं। वहाँ मन्त्र वैदिक तत्त्वों में प्रसिद्ध कर्म समवेतार्थ स्मारणैक फल हैं। और विधिबोधक वाक्य की ब्राह्मण संज्ञा है। विधि कर्मो के इष्ट साधनत्व बोधन मुख से इष्ट साधन में पुरुष को प्रवर्तित करता है। निषेध तो अनिष्ट साधन भत बोधन मुख के द्वारा अनिष्ट साधन से निवर्तित करता है। और ब्राह्मण भी कर्म ब्राह्मण, उपसना ब्राह्मण और ज्ञान ब्राह्मण तीन भागों में विभक्त है। कर्म काण्ड में भी नित्य नैमित्तिक काम्य के भेद से तीन कर्म विख्यात हैं। इन कर्मो से ज्ञान संपत्ति के लिए वेदार्थ ज्ञान की अपेक्षा है।

भारत वर्ष में वेद की संहिता ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषदों का महद् वैशिष्ट्य है। संस्कृत पाठशाला और महाविद्यालय वेद के अध्ययन और अध्यापन के ग्राहक हैं। इस पाठ्यांश में मन्त्रों और पदपाठ व्याख्या का सम्यक् समावेश है। ऋग्वेद के सारसंग्रहों का परिचय भी यहाँ प्राप्त करेंगे। इस सूक्ताध्ययन से अध्येताओं का महान् उपकार हो, बहुत प्रयत्न और उत्तमता से इसका अध्ययन छात्र करें, वेद का व्याकरण लौकिक व्याकरण से भिन्न है। शब्द भी बहुलता से भिन्न होते हैं। स्वर भेद में अर्थ भेद होता है। प्रकरण भेद में भी अर्थ भेद होता है। काव्यात्मक शैली बहुत जगह वेद में परिलक्षित है। अत: मन्त्रों का सामने से जो अर्थ दिखाई देता है उससे भिन्न ही अर्थ होता है। व्याख्या के भेद से भी अर्थ में भेद होते हैं। तात्पर्य भेद से भी अर्थ में भेद होता है। अत: मन्त्रों का यही अर्थ है यह निर्णय सुदुष्कर ही है। तथापि प्रमाण भूत आचार्य श्रीमान सायण का भाष्य ही कुछ सुबोध के लिए परिवर्तन से छात्रोपयोगित्व समास आदि यहाँ दीये जाते हैं। मन्त्रान्वय, मन्त्रव्याख्या, मन्त्र का सरलार्थ, कुछ शब्दों का व्याकरण इस रूप से यहाँ मन्त्र की व्याख्या की गयी है।

8

सूर्यसूक्त और सञ्ज्ञानसूक्त

प्रस्तावना

वेदो में ज्ञान राशि और शब्द राशि हैं। वेद अपौरुषेय है यह ही परम्परा है। जीव मात्र की इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट परिहार के लिए अलौकिक उपायों को बताने वाला वेद है। वेद से ज्ञाप्यमान उपाय प्रत्यक्षत था अनुमान प्रमाण से अगम्य हैं। केवल वेद के शब्दों से ही वे उपाय जाने जा सकते हैं। ईश्वर ने भी सृष्टिकरण में वेद ज्ञान का आश्रय लेकर जगत् का सृजन किया। अत: यह वैदिक ज्ञान निर्भ्रान्त और प्रमाद रहित है। ऋक् यजु: साम तथा अथर्व भेद से चार प्रकार से वेद विभक्त है। स्तुत्यात्मक ऋग्वेद है। उस ऋग्वेद के मण्डल तथा अष्टक रूप से दो प्रकार से विभाजन किया गया है।

इस पाठ में सूर्यसूक्त तथा सञ्ज्ञानसूक्त दो सूक्त विद्यमान हैं। पहले सूर्यसूक्त उपस्थापित किया गया है।

मण्डल रूप से विभाग करने पर सूर्य सूक्त प्रथम मण्डल का एक सौ पन्द्रहवाँ सूक्त है (म 1, 1 15)

सूर्य सूक्त अतीव महत्त्वपूर्ण सूक्त है। द्युलोक में विद्यमान देवों में सर्वाधिक स्थूल देव सूर्य है जो भौतिक सूर्य के सदृश ही है। समग्र लोक का प्रकाशक सूर्य है। सूर्य देवता की स्तुति में भौतिक सूर्य से ही विशेष गुणों का वर्णन होता है। ऋग्वेद के दश सूक्तों में सूर्य की स्तुति का विधान है। यास्क के मतानुसार सूर्य शब्द धातू अथवा षु-धातू से निष्पन्न होता है। उनके मतानुसार सूर्य का इस प्रकार निर्वचन किया गया है - सरते: वा सुवतेर्वा इति अर्थात् जो अन्तरिक्ष में गतिप्रदान करता है, लोगों को अपने कार्य के प्रति प्रेरित करता है। वह सूर्य कहलाता है। बृहद्देवताकार शौनक के मतानुसार जो प्राणियों के मध्य विचरता है। इस प्रकार सूर्य शब्द की निरुक्ति की गई है। इस सूर्य सूक्त के कुत्स ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, और सूर्य देवता हैं।

टिप्पणी

उद्देश्य

यह पाठ पढकर आप सक्षम होंगे-

- सूक्तों का माहात्म्य जानने में;
- सूक्तोक्त देवता का स्वरूप जान पाने में;
- सूक्त में स्थित मन्त्रों का संहिता पाठ जानने में;
- सूक्त में स्थित मन्त्रों का पदपाठ रचने में;
- सूक्त में स्थित मन्त्रों का अन्वय करने में;
- सूक्तोक्त मन्त्रों की व्याख्या करने में;
- वैदिक शब्दों को जान पाने में;
- लौकिक और वैदिक शब्दों के भेदों के ज्ञानवान् होंगे;
- वैदिक व्याकरण के अंशो को जान पाने में।

॥ सूर्यसूक्त ॥

8.1 मूल पाठ

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा
जगतस्तस्थुषश्च ॥1॥

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय
भद्रम्॥2॥

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति
सद्यः॥3॥

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते
सिमस्मै॥4॥

टिप्पणी

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सुर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशंदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं
भरन्ति॥5॥

अद्या देवा उदिता सुर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत
द्यौः॥6॥

8.1.1 मत्र व्याख्या (सूर्यसूक्त)

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्यः। आत्मा।
जगतस्तस्थुषश्च्॥1॥

पदपाठः - चित्रम्। देवानाम्। उत्। अगात्। अनीकम्। चक्षुः। मित्रस्य।
वरुण्णस्य। अग्नेःआ। अप्राः। द्यावापृथिवी इति। अन्तरिक्षम्।
सूर्यः। आत्मा। जगतः। तस्थुषः। च॥1॥

अन्वय- देवानां चित्रम् अनीकं मित्रस्य वरुणस्य अग्ने: चक्षु उत् अगात्। द्यावापृथिवी अन्तरीक्षम् आ अप्राः, सूर्यः जगतः तस्थुषः च आत्मा॥

व्याख्या- देवों का। ''दीव्यन्तीति देवा रश्मयः''। अथवा देवजनों का। अनीक अर्थात् समूह रूप विचित्र आश्चर्य कर सूर्य मण्डल उद् अगात् अर्थात् उदयान्चल को प्राप्त था। कैसा? वायु जल और अग्नि का यह उपलक्षण है। उस उपलक्षित जगत का चक्षु अर्थात् प्रकाशक है अथवा चक्षु इन्द्रिय स्थानीय है और द्युलोक पृथ्वी लोक तथा अन्तरिक्ष को धारण करता है। अपने तेज से परिपूर्ण करता है। ऐसे भूत मण्डल का अन्तर्वर्ती सूर्य अन्तर्यामिता से सभी का प्रेरक परमात्मा इस अचल जगत तथा स्थावर का आत्मा स्वरूप है। वही सब स्थावर जगङ्गमात्मक कार्य वर्ग का कारण है और कारण से कार्य पृथक नहीं होता। और भी पारमर्ष सूत्र में कहा गया है- 'तदनन्यत्व मारम्भण शब्दादिभ्यः' (ब्र0सू0 2.1.14)॥ जो स्थावर जङ्गमात्मक सभी प्राणियों का जीवात्मा है। सूर्य के उदित होने पर मृत प्राय सभी जगत् पुनः चेतन युक्त हो जाता है और भी - 'योसौ तवन्नुदेति स सर्वेषां भूतानां प्राणानादायोदेति' (तै0आ0 1.14.1)॥

सरलार्थ- देवों के उज्ज्वल मुख तुल्य वायु जल तथा अग्नि का चक्षुरिन्द्रिय तुल्य सूर्य ऊर्ध्व लोक जाता है। आकाश, अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी को अपने प्रकाश से प्रकाशित करता है। सूर्य स्थावर तथा जङ्गम प्राणियों की आत्मा है।

व्याकरण

- उदगात् - उत्पूर्वक गा धातू का लुङ् लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप है।

टिप्पणी

- आप्राः – आ उपसर्ग पूर्वक प्र धातू के लुङ् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- जगतः – गम्-धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर जगत् रूप सिद्ध होता है। षष्ठी एकवचन में।
- तस्थुषः –स्था धातु से क्वसु प्रत्यय करने पर यह रूप सिद्ध होता है।

सूर्यो देवीमुषसं रोचमाना मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय
भद्रम्॥2॥

पदपाठः – **सूर्यः। देवीम्। उषसम्। रोचमानाम्। मर्यः।न। योषाम्।**
अभि। एति। पश्चात्॥ यत्र। नरः। देवऽयन्तः। युगानि।
विऽतन्वते। प्रति। भद्राय। भद्रम्॥2॥

अन्वय- सूर्यः रोचमानां देवीम् उषसं पश्चात् मर्यः योषां न अभि एति। यत्र देवयन्तः नरः प्रति भक्ताय भक्तं युगानि वितन्वते।

व्याख्या- सूर्या देवी दानादि गुण से युक्त रोचमान दीप्यमान उषा को भय मुक्त करता है और उषा के प्रादुर्भाव के बाद उसको अभिलक्ष्य करके चलता है। वहाँ एक दृष्टान्त है। 'मर्यो न योषाम्' अर्थात् जैसे कोई मनुष्य सुन्दर जाती हुई युवति स्त्री के पिछे चलने लगता है वैसे ही सूर्य गुणमयी एवं प्रकाशमान उषा देवी के पीछे-पीछे चलते हैं। जब सुन्दरी उषा प्रकट होती है, तब प्रकाश के देवता सूर्य की आराधना करने के लिए कर्म निष्ठ मनुष्य अपने कर्तव्य कर्म का सम्पादन करते है। सूर्य कल्याण रूप हैं और उनकी आराधाना से कर्तव्य कर्म के पालन से कल्याण की प्राप्ति होती है।

सरलार्थ- युवा पुरुष जैसे युवति के पीछे जाता है वैसे ही सूर्य दीप्तिमयी उषा देवी के पीछे चलते हैं। उस उषा के प्रकाश के समय यजमान कल्याण प्रददेवों के कल्याण फल के लाभ के लिए यज्ञ कर्म करते हैं।

व्याकरण -

- रोचमानाम् – रुच्-धातु से शानच् प्रत्यय और स्त्रीलिंग की विवक्षा में टाप् करने पर द्वितीया के एकवचन में यह रूप बनता है।
- मर्यः – मृङ्-धातु से यति प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवन में यह रूप है।
- युगानि – युज्-धातु से घञ् प्रत्यय करने पर द्वितीया बहुवचन का यह रूप बनता है।
- देवयन्तः – दिव्-धातु से क्यच् शतृ प्रत्यय करने पर प्रथमा बहुवचन में यह रूप बनता है।
- वितन्वते – विपूर्वक तनु के आत्मनेपद के लट् लकर के प्रथमपुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

भद्रा अश्वा॑ हरितः॒ सूर्य॑स्य चि॒त्रा एत॑ग्वा अनु॒माद्या॑सः।
नम॒स्यन्तो॑ दि॒व आ पृ॒ष्ठम॑स्थुः॒ परि॒ द्यावा॑पृथि॒वी य॑न्ति
स॒द्यः॥3॥

पदपाठः – भ॒द्राः। अश्वा॑ः। ह॒रितः॑। सूर्य॑स्य। चि॒त्राः। एत॑ऽग्वाः।
अ॒नु॒ऽमाद्या॑सः॥ न॒म॒स्यन्तः॑। दि॒वः। आ। पृ॒ष्ठम्। अ॒स्थुः॒। परि॑।
द्यावा॑पृथि॒वी इति॑। य॒न्ति॒। स॒द्यः॥3॥

अन्वय– सूर्यस्य भद्राः हरितः अश्वाः चित्राः एतग्वाः अनुमाद्यासः नमस्यन्तः दिवः पृष्ठम् आ अस्थुः। सद्यः द्यावापृथिवी परियन्ति॥3॥

व्याख्या– सूर्य का यह रश्मि मण्डल अश्व के समान उन्हें सर्वत्र पहुँचाने वाला चित्र विचित्र एवं कल्याण रूप है। यह प्रतिदिन तथा अपने पथ पर ही चलता है एवं अर्चनीय तथा वन्दनीय है। यह सब को नमन की प्रेरणा देता है और स्वयं द्युलोक के ऊपर निवास करता है। यह तत्काल द्युलोक और पृथ्वी लोक का परिमंत्रण कर लेता है॥

सरलार्थ– सूर्य के कल्याणकारी हरित वर्णीय विचित्र गन्तव्य मार्ग में स्वयं ही गमनशील आनन्दकारी सबके स्तुत्य अश्वों ने द्युलोक को आरूढ कर रखा है। वे शीघ्र ही आकाश और पृथ्वी को चारों ओर से व्याप्त करेंगे।

व्याकरण –

- अश्वाः – अश्-धातु से क्वन् प्रत्यय करने पर प्रथमा बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- एतग्वाः – इण् गतौ धातु से तन् प्रत्यय में एत् बनने पर उससे एत् पूर्वक गम्-धातु से ड्व प्रत्यय करने पर यह रूप सिद्ध होता है।
- अनुमाद्यासः – अनुपूर्वक मद्-धातु से यति प्रत्यय करने पर यह रूप सिद्ध होता है।
- अस्थुः – स्था धातु से लुङ् लकार में प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- यन्ति – इण् गतौ धातु से लट् लकार के प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न

815. सूर्यसूक्त के ऋषि, छन्द, और देवता कौन हैं?

816. चित्रम् का अर्थ बताओ?

टिप्पणी

817. आप्रा: यह रूप कैसे सिद्ध होता है?

818. तस्थुष: रूप कैसे सिद्ध होता है?

819. भद्रा: का क्या अर्थ है?

820. सूर्य के अश्व कैसे थे?

821. एतग्वारूप कैसे सिद्ध होता है?

822. अनुमाद्यास: रूप कैसे सिद्ध होता है?

823. देवयन्त: रूप कैसे सिद्ध होता है?

824. यन्ति यहाँ क्या धातु है?

8.1.2 मूलपाठ

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जंभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते
सिमस्मै ॥4॥

पदपाठः – **तत्। सूर्यस्य। देवऽत्वम्। तत्। महिऽत्वम्। मध्या। कर्तोः।**
विऽततम्। सम्। जभार। यदा। इत्। अयुक्त। हरितः।
सधऽस्थात्। आत्। रात्री। वासः। तनुते। सिमस्मै॥4॥

अन्वय– तत् सूर्यस्य देवत्वं तत् महित्वं कर्तोः मध्या विततं सं जभार। यदा इत् हरितः सधस्थात् अयुक्त आत् रात्री सिमस्मै वासः तनुते॥4॥

व्याख्या– सूर्य सर्व प्रेरक आदित्य का वह देवत्व सर्वान्तर्यामी प्रेरक सूर्य का यह ईश्वरत्व और महत्व है की वे प्रारम्भ किये हुए, किन्तु अपरि समाप्त कृत्यादि कर्मों को जैसे का तैसे छोड़कर अस्ताचल जाते समय अपनी किरणों को इस लोक से अपने आप में समेट लेते हैं। साथ ही उसी समय अपने किरणों और घोड़ों को एक स्थान से खींचकर दूसरे स्थान पर नियुक्त कर देते हैं। उसी समय रात्रि अंधकार के आवरण से सबको आवृत्त कर देती है। इस विषय में निरुक्त में भी कहा गया है कि – 'तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्ये यत्कर्मणां क्रियमाणानां विततं संह्रियते यदासौ अयुक्त हरणानादित्यरश्मीन् हरितोश्वानिति वाथ रात्री वासस्तनुते सिमस्मै वासरमहरवयुवती सर्वस्मात् (निरु – 4.11)।

सरलार्थ– वही सूर्य का देवत्व है, वहीं सूर्य की महिमा है जो लोगों के द्वारा अनुष्ठित कर्मों में अपने प्रसारित किरण जाल को पृथिवी पर बिछाते हैं। जिससे वह सरस हरणशील अश्वों को रथ अथवा पृथ्वी के किरण जाल को पृथक् करता है तब रात्रि सब के लिए कृष्ण वस्त्र धारण करती है।

व्याकरण -

- वितत‌म् - विपूर्वक तन्-धातु से क्त प्रत्यय करने पर यह रूप सिद्ध होता है।
- संजभार - सम्पूर्वक भृ धातू से लिट् लकार प्रथम पुरुषैकवचन में यह रूप बनता है।
- अयुक्त - युज्-धातु के आत्मनेपद लुङ् लकार के प्रथम पुरुषैकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- सधास्थात् - सहपूर्वक स्थधातू से कप्रत्यय करने पर पञ्च्मी एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- तनुते - आत्मनेपदि तन्-धातु से लटलकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- सिमस्मै - सर्वनाम पर्याय वाचक सिम शब्द के चतुर्थी एकवचन का यह रूप है।
- रात्री - रात्रिशब्द का स्त्रीलिंग की विवक्षा में ङीप् के प्रथमा एकवचन का यह रूप है।

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सुर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं
भरन्ति ॥

पदपाठः - **तत्। मित्रस्य। वरुणस्य। अभिऽचक्षे। सूर्यः। रूपम्। कृणुते। द्योः। उपऽस्थे॥ अनन्तम्। अन्यत्। रुशत्। अस्य। पाजः। कृष्णम। अन्यत्। हरितः। सम्। भरन्ति॥**

अन्वय- तत् मित्रस्य वरुणस्य अभिचक्षे सूर्यः द्योः उपस्थे रुपं कृणुते। अस्य हरितः अनन्तम् अन्यत् रुशत् पाजः सं भरन्ति, अन्यत् कृष्णम्॥

व्याख्या- प्रेरक सूर्यप्रातः काल मित्र वरुण और समग्र सृष्टि को सामने से प्रकाशित करने के लिए प्राची के आकाशीय क्षितिज में अपना प्रकाशक रूप प्रकट करते हैं और इनकी रसभोगी रश्मियाँ अथवा हरे घोड़े बलशाली रात्रि कालीन अंधकार के निवारण में समर्थ विलक्षण तेज धारण अन्धकार की सृष्टि होती है।

सरलार्थ- मित्र और वरुण के दर्शन के लिए सूर्य द्युलोक के मध्य भाग में प्रकाश मान रूप को प्रकट करता है। उसके हरित वर्णीय अथवा रसहरणशील अश्व एक समय में ही प्रकाश और अन्धकार को लाते हैं।

व्याकरण

- अभिचक्षे - अभिपूर्वक चक्ष्-धातु से क्विप् प्रत्यय के वैदिक तुमर्थकैकार में यह रूप बनता है।

टिप्पणी

- द्योः – द्योशब्द का षष्ठी एकवचन में यह वैदिकरूप सिद्ध होता है।
- उपस्थे – उप पूर्वक् स्था धातू से क प्रत्यय के सप्तमी एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- कृणुते – कृ धातु से लट लकार प्रथमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- पाजः – पा धातु से असुन्प्रत्यय करने पर यह रूप सिद्ध होता है।
- भरन्ति – भृ धातु से लट् लकार प्रथमपुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

अद्या देवाः। उदिता सुर्यस्य निरंहसः पिपृघ्ता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत
द्यौः॥6॥

पदपाठः – **अद्य। देवाः। उत्ऽईता। सूर्यस्य। निः। अंहसः। पिपृत। निः। अवद्यात्॥ तत्। नः। मित्रः। वरुणः। ममहन्ताम्। अदितिः। सिन्धुः। पृथिवी। उत। द्यौः॥6॥**

अन्वय- देवाः अद्य सूर्यस्य उदिता अंहसः निष्पिपृत निः अवद्यात्। नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ममहन्ताम्॥

व्याख्या- हे प्रकाशमान सुर्य रश्मियों आज सूर्योदय के समय इधर उधर बिखरकर तुम लोग हमे पापों से निकाल कर बचा लो। न केवल पाप से ही, प्रत्युत जो कुछ निन्दित है, ग्रहणीय है, दुःख दारिद्रय है, सबसे हमारी रक्षा करो। जो कुछ हमने कहा है, मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोक के अधिष्ठाता देवता उसका आदर करें, अनुमोदन करें, वे भी हमारी रक्षा करें॥

सरलार्थ- इस मन्त्र में देवों के प्रति कहा गया है कि हे देवों सूर्यरश्मियां आज सूर्य के उदित होने पर पापों से हमें मुक्ति दें, अपशब्द भाषण से भी मुक्ति दें। हमारी इस प्रार्थना का मित्रादि देवता अनुमोदन करे।

व्याकरण

- उदिता – उत्पूर्वक इण्-धातु से क्त प्रत्यय और डादेश करने पर वैदिक रूप उदिता बनता है।
- अद्या – 'निपातस्य च' इससे दीर्घ होता है।
- अवद्यात् – वद्-धातु से यति प्रत्यय करने पर वद्य रूप। तथा न वद्य अवद्य, पञ्चमी एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- पिपृत – पृ धातु से लट् मूलक लोट लकार के प्रथमपुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- ममहन्ताम् – मम्ह् अथवा मह् धातु से लिट् मूलक लोट् लकार के प्रथमपुरुष बहुवचन में यह रूप बनता है।

पाठगत प्रश्न

825. सूर्य का दूसरा क्या नाम था?
826. सिम शब्द का अर्थ क्या है?
827. सिमस्मै में किस अर्थ में चतुर्थी विभक्ति है?
828. सधास्थात् यहाँ किस अर्थ में कौन सा प्रत्यय है।
829. रात्री में कौन सा प्रत्यय है?
830. अयुक्त रूप कैसे सिद्ध होता है?
831. हरित: का क्या अर्थ है?
832. पाज: रूप कैसे सिद्ध होता है?
833. अद्या में किस सूत्र से दीर्घ होता है?
834. ममहन्ताम् रूप कैसे सिद्ध होता है?

8.2 सूर्य का स्वरूप

वेद में अनेक देवों में सूर्यदेव का विशिष्ट स्थान है। ऋग्वेद में सुवर्ण कान्ति तेज: स्वरूप सूर्य चराचर विश्व के आत्मत्व पूजित है। कृष्ण यजुर्वेद में आदित्य विश्व का प्राण स्वरूप है ऐसी व्याख्या है। अत: सूर्य से सभी प्राणियों की उत्पत्ति हुई। जैसे कि ''असौ वा आदित्य: प्राण: प्राणमेवैनानुत्सृजति''। ऋग्वेद में सूर्य श्रेष्ठ ज्योति के स्वरूप में स्तुत है। जैसे कि ''इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमम्'' (ऋग्वेद: 10/170/3)। निरुक्तकार के मत में सूर्य द्युलोकस्थ देवों का प्रतिनिधि है। ''सूर्यो द्युस्थान:'' (निरुक्त 7/5/2)। पुरुष सूक्त में सूर्य की उत्पत्ति विराट्-पुरुष की चक्षु से हुई ऐसा प्रमाण प्राप्त होता है। जैसे की कहा गया है चक्षो: सूर्य: अजायत''। सूर्य देव अनीक अर्थात् देवों के मुख स्वरूप हैं। हमारा प्रत्यक्ष देव सूर्य है। उषा उसकी भार्या है। जैसे युवक युवती का अनुसरण करता है वैसे ही सूर्य दीप्तिमती उषा देवी के पीछे दोड़ता है। ऋग्वेद में बहुत सी जगह सूर्यदेव के रथ का वर्णन प्राप्त होता है। सूर्य के रथ में सात अश्व हैं। सूर्य की रश्मियाँ ही यहाँ अश्व हैं। सूर्य के उदित होने पर उसकी रश्मियाँ अश्व की तरह ही बहुत वेग से सभी दिशाओं में विस्तरित होती हैं। अत: रश्मियों को अश्व कहा जाता है और ये रश्मियाँ पृथिवी के पृष्ठ भाग से जलीयांश का हरण करती हैं। अत: रसहरण शीलत्व के कारण हरित कही जाती है। एक दिन में ही ये द्युलोक और पृथिवी लोक की प्रदक्षिणा करती हैं ''परि द्यावा पृथिवी यन्ति सद्य:'' यह श्रुति है। सूर्य की रश्मियाँ अन्धकार को

दूर करने में समर्थ हैं। सूर्य की रश्मियाँ जब पृथ्वी लोक में आ जाती हैं तब पृथ्वी पर दिन होता है। किन्तु जब सूर्य अपने रश्मि रूपी अश्वों को पृथ्वीलोक से हटाता है तब पृथ्वी पर अन्धकार विस्तृत हो जाता है। उससे रात्रि उत्पन्न होती है। इस प्रकार सूर्य ही रात और दिन का कारण है।

सूर्य सभी प्राणियों का प्रेरक भी है। सूर्य के उदित होते ही सभी प्राणी अपने अपने कर्म में संलग्न हो जाते हैं और भी सूर्य उरुचक्षा है। अर्थात् वह मनुष्यों के सभी पाप पुण्य के कर्मों का अवलोकन करता है। ऋग्वेद में कहीं-कहीं सूर्य और अग्नि अभिन्नत्व रूप से प्रतिपादित हैं। दिन में जो सूर्य होता है वह ही रात्री में अग्नि होता है।

सूर्यदेव का यही माहात्म्य है कि वह स्वतन्त्र है। मनुष्यके प्रारम्भ किये हुए कृषि कर्म समाप्त न होने पर भी प्रातः से विस्तृत अपना रश्मिजाल अस्त होते समय अपने में ही समेट लेता है। तब पृथ्वी लोक को अंधकार आच्छादित कर लेता है। जगत् के प्रकाश के लिए रश्मिजाल का क्षणमात्र से प्रसारण और पुनः संहरण यह अल्प महिमा वाले के लिए सम्भव नहीं है, अतः सूर्यदेव का यह अत्यधिक माहात्म्य है।

8.3 सूर्य सूक्त का सार

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के इस सूर्य सूक्त के सूर्य देवता, कुत्स ऋषि, और त्रिष्टुप् छन्द है। इस सूक्त में ऋषि भगवान् सूर्य की स्तुति करते हुए कहते हैं कि, जगत के चक्षुरिन्द्रिय स्थानीय सूर्य उदय को प्राप्त करके द्युलोक पृथ्वी और अन्तरिक्ष को अपने तेज से सम्पूर्ण पूरित कर दिया। ऐसा मण्डलान्तर्वर्ती सूर्य अन्तर्यामितया सबका प्रेरक परमात्मा ही है। वही स्थावर जंगमात्मक कार्य वर्ग का कारण है। सूर्य के उदित होने पर मृत प्राय सब जगत् पुनः चेतनयुक्त हो जाता है। सूर्य ही दानादि गुणों से युक्त दीप्यमान उषा को प्राप्त करता है। अर्थात् उषा प्रादुर्भावानान्तर उसको अभिलक्ष्य करके चलती है। जैसे कोई मनुष्य लावण्यमयी जाती हुई युवती के पीछे जाता है, उसी तरह इस प्रकार के सूर्य के प्रति भद्र कल्याण रूप और कर्मफलकी स्तुति करते हैं। इस प्रकार हमारे द्वारा नमस्यमान सूर्य अन्तरिक्ष के पृष्ठभाग ऊपरिप्रदेश पूर्वभाग लक्षण को प्राप्त करता है अथवा, दु:ख हरणशील सूर्य की रश्मियाँ भद्रादि लक्षण विशिष्ट दिन के पृष्ठ भाग नभ:स्थल में रहती हैं। उदय के समय मित्र और वरुण का लक्षित सब जगत का सविता रूप सबका निरूपक और प्रकाशक तेज कर्ता है। और भी इस सूर्य की रस हरणशील रश्मियाँ हरे रंग के अश्व अथवा अनन्तर अवसान रहित सब जगत में व्यापक दीप्यमान श्वेत वर्ण बलयुक्त निशा के अंधकार के निवारण में समर्थ और अंधकार का विलक्षण तेज अपने आगमन से निष्पादित करता है। यह सब सूर्य का माहात्म्य है। हे सूर्य रश्मियाँ आज इस समय सूर्य के उदय के होने पर इधर-उधर प्रसारित तुम हमें अहंस पापों को पालती हैं।

चित्रं देवानामुदगाननीकं, चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं, सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥ 1 ॥

प्रकाशमान रश्मियों का समूह, अथवा राशि देवगण सूर्य मण्डल के रूप में उदित हो रहे हैं। ये मित्र वरुण अग्नि और सम्पूर्ण विश्व के प्रकाशक ज्योतिर्मय नेत्र है। इन्होंने उदित होकर द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष को अपने देदीप्यमान तेज से सर्वतः परिपूर्ण कर दिया है। इस मण्डल में जो सूर्य हैं, वे अन्तर्यामी होने के कारण सबके प्रेरक परमात्मा हैं तथा जंगम एवं स्थावर सृष्टि की आत्मा हैं।

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां, मयो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्ति युगानि, वितन्वते प्रति भद्राय भद्राम्॥ 2॥

इस मन्त्र में ऋषि कुत्स ने कहा कि, सूर्य दानादिगुणयुक्त एवं दीप्यमान उषा के पीछे पीछे चलते है, जैसे कोई मनुष्य सर्वांग सुन्दरी युवती का अनुगमन करे। जब सुन्दरी उषा प्रकट होती है, तब प्रकाश के देवता सूर्य की आराधना करने के लिए कर्मनिष्ठ मनुष्य अपने कर्तव्य कर्म का सम्पादन करते हैं। सूर्य कल्याण रूप हैं और उनकी आराधना से कर्तव्य कर्म के पालन से कल्याण की प्राप्ति होती हैं।

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य, चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः, परिद्यावापृथिवी यन्ति सद्यः॥3॥

सूर्य का यह रश्मि मण्डल अश्व के समान उन्हें सर्वत्र पहुँचाने वाला चित्र विचित्र एवं कल्याण रूप है। यह प्रतिदिन तथा अपने पथ पर ही चलता है एवं अर्चनीय तथा वन्दनीय है। यह सबको नमन की प्रेरणा देता है और स्वयं द्युलोक के ऊपर निास करता है। यह तत्काल द्युलोक और पृथ्वी लोक का परिमन्त्रण कर लेता है।

तत्सूर्यस्य देवस्य तन्माहित्वं, मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादात्त्रात्री वास्ततनुते सिमस्मै॥4॥

सूर्य सर्व प्रेरक आदित्य का वह देवत्व। सर्वान्तर्यामी प्रेरक सूर्य का यह ईश्वरत्व और महत्व है की वे प्रारम्भ किये हुए, किन्तु अपरिसमाप्त कृत्यादि कर्मों को ज्यों का त्यों छोड़कर अस्तांचल जाते समय अपनी किरणों को इस लोक से अपने आप में समेट लेते हैं। साथ ही उसी समय अपने किरणों और घोड़ों को एक स्थान से खींचकर दूसरे स्थान पर नियुक्त कर देते हैं। उसी समय रात्रि अंधकार के आवरण से सबको आवृत्त कर देती है।

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे, सूर्योरूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यदुशदस्य पाजः, कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति॥5॥

प्रेरक सूर्यप्रातः काल मित्र-वरुण और समग्र सृष्टि को सामने से प्रकाशित करने के लिए प्राची के आकाशीय क्षितिज में अपना प्रकाशक रूप प्रकट करते हैं। और इनकी रस भोजी रश्मियाँ अथवा हरे घोड़े बलशाली रात्रिकालीन अंधकार के निवारण में समर्थ विलक्षण तेज धारण अन्धकार की सृष्टि होती है।

टिप्पणी

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य, निरंहसः पिपृता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौ।। 6।।

हे प्रकाशमान सुर्य रश्मियों आज सूर्योदय के समय इधर उधर बिखरकर तुम लोग हमें पापों से निकालकर बचा लेना केवल पाप से ही, प्रत्युत जो कुछ निन्दित है, ग्रहणीय है, दुःख दारिद्रय है, सबसे हमारी रक्षा करो। जो कुछ हमने कहा है, मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोक के अधिष्ठाता देवता उसका आदर करें, अनुमोदन करें, वे भी हमारी रक्षा करें।।

वरुण अनिष्ट निवारयिता रात्री का अभिमानी देव है, अदिति जल का अभिमानी देवता है, पृथ्वी भूलोक की अधिष्ठात्री देवता है, द्यौ द्युलोक का अभिमानी देव है।

पाठ का सार (सूर्यसूद्रांश में)

सूर्यसूक्त के आदि मन्त्र में सूर्य का स्वरूप वर्णित है। यह सूर्य कैसा है? यह प्रश्न मन में उदित होता है। उसका उत्तर प्रथम मन्त्र में ही दिया गया है। कहा जाता है कि सूर्य देवों के उज्ज्वल मुख के तुल्य है मित्र वरुण और अग्नि के चक्षु इन्द्रिय के तुल्य है। वह अपने आलोक समूह से समग्र जगत् में व्याप्त हो गया है। वह सभी स्थावर तथा जङ्गम की आत्मा है। द्वितीय मन्त्र में सूर्य का एक स्वभाव प्रकट किया गया है। वहाँ कहा गया है कि जैसे कोई युवा पुरुष युवती के पीछे चलता है वैसे ही सूर्य भी दीप्तिमयी उषादेवी के पीछे चलता है। तृतीय मन्त्र में सूर्य के अश्वों के विषय में कहा गया है। वहाँ कहा जाता है कि उसके अश्व हरितवर्णीय, कल्याणकारी, विचित्र, गन्तव्य मार्ग में स्वयं ही गमनशील, और सबके द्वारा प्रणम्य हैं। चतुर्थ मन्त्र में सूर्य का देवत्व वर्णित है। लोगों के द्वारा अनुष्ठित कर्मों में अपने प्रसारित किरण जाल से पृथ्वी की रक्षा करता है। वह जब रस हरणशील अश्वों को अपने रथ से पृथक् करता है तब रात्रि आ जाती है। पंचम मन्त्र में उसके अश्वों की महिमा का वर्णन है। वहाँ कहा गया है कि उसके रसहरण शील अश्व एक समय में ही प्रकाश और अन्धकार लाते हैं। तथा षष्ठ मन्त्र में सूर्य के प्रति प्रार्थना की गयी है कि हे देव! सूर्य उदित होने पर पापों का अपसारण करके हमारी रक्षा कर। अपशब्द युक्त वचनों से हमें पृथक् करें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक ये प्रार्थना स्वीकार करते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण सूर्य सूक्त में सूर्य के स्वरूप, सूर्य के अश्वों का स्वरूप, सूर्य का माहात्म्य ये विषय वर्णित हैं।

संज्ञान सूक्त

ऋग्वेद का संज्ञान सूक्त भी बहुत प्रसिद्ध है प्रकृत सूक्त के केवल इस प्रथम मन्त्र के अग्नि देवता हैं। और बचे हुये मन्त्रों के संज्ञान ही देवता हैं। इस सूक्त के संवनन अंङ्गिरस

हैं। ये सभी मन्त्र अनुष्टुप और त्रिष्टुप छन्द से ही सुशोभित हो रहे हैं। प्रकृत पाठ के उत्तरार्ध में इस संज्ञान सूक्त का वर्णन प्राप्त होता है।

8.4 संज्ञान सूक्तस्य सामान्य-परिचयः

संज्ञान सूक्त ऋग्वेद संहिता के दशम मण्डल के अन्तर्गत आये सूक्तों में अन्यतम सूक्त है। इस संज्ञा नसूक्त में चार मन्त्र ही हैं। इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में अग्नि देवता की स्तुति विहित है। यहाँ अग्निदेवता की स्तुति के अवसर पर अग्नि देवता को उद्देश्य करके यह कहा गया कि हे अग्निदेव! आप सभी उपासकों की यथेष्ट अभिलाषा को प्राप्त करवाते हैं। अतः हमारे लिए भी धनादि के रूप में अभिलषित पदार्थों को वैसे ही प्रदान करें।

इस सूक्त के अवशिष्ट तीन मन्त्रों में संज्ञान देवता की उपासना विहित हैं तथा सभी के साथ मिलकर संभाषण, विरोध को छोड़कर ऐक्य भाव से निवास, और परस्पर सौहार्द पूर्ण व्यवहार- इनके विधान की कामना की गयी है। जिस प्रकार प्राचीन काल में हमारे पूर्वज परस्पर सौहाद र्और सांमन्जस्य से व्यवहार करते थे, उसी प्रकार से ही परस्पर क्रियाकलाप की प्रार्थना भी की गयी है। ऋत्विज तथा यजमान की भी ऐक्यमत की कामना भी इस सूक्त में विहित है।

8.5 मूल पाठ (संज्ञानसूक्त)

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥1॥

सङ्गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते॥2॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥3॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥4॥

8.5.1 अब मूलपाठ को जानेंगे (सञ्ज्ञानसूक्त)

इस सूक्त के आङ्गिरा ऋषि, अनुष्टुप् और त्रिष्टुप् छन्द, अग्नि और संज्ञान देवता हैं।

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर॥1॥

टिप्पणी

पदपाठः - **सम्ऽसम्। इत्। युवसे। वृषन्। अग्ने। विश्वानि। अर्यः।आ॥**
इळः। पदे। सम्। इध्यसे। सः। नः। वसूनि। आ। भर॥

अन्वय- वृषन् अग्ने, अर्यः विश्वानि आ संसम् इत् सम् युवसे इडस्पदे समिध्यसे सः नः वसूनि आ भर।

व्याख्या- हे वृषन् कामानाओं की वर्षित अग्नि ईश्वर समस्त सुखों को प्रदान करने वाले हे अग्नि। आप सब में व्यापक अन्तर्यामी ईश्वर हैं। आप यज्ञवेदी पर प्रदीप्त किये जाते हैं। हमें विभिन्न प्रकार के ऐश्वर्य को प्रदान करें।

सरलार्थ- हे अभिष्ट फलदायक अग्नि तू प्रभु रूप से सब को सभी दिशाओं से योजित करके बैठ, यज्ञवेदि के मध्य में सम्यक् रुप से प्रज्वलित होकर बैठ। वहीं तू, हमारे लिए धन का आहरण कर।

व्याकरण -

- युवसे- यु-धातु से लट् लकार आत्मनेपद मध्यम पुरुष एकवचन में युवसे रूप बनता है।
- समिध्यसे- सम्पूर्वक इन्ध-धातु से लट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन में समिध्य से यह रूप कर्म वाच्य का रूप है।
- भर- भृ-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में भर यह रूप सिद्ध होता है।

सङ्गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते॥2॥

पदपाठः - **सम्। गच्छध्वम्। सम्। वदध्वम्। सम्। वः। मनांसि।**
जानताम्। देवाः। भागम्। यथा। पूर्वे। सम्ऽजानाघ्नाः।
उपऽआसते।

अन्वय- सं गच्छधवं सं वदधवं वः मनांसि सं जानताम्। यथा पूर्वे देवाः सञ्जानानाः भागम् उपासते।।

व्याख्या- हे स्तोताओं हे धर्म निरत विद्वानों आप परस्पर एक होकर रहें, एक होकर चलें। परस्पर मिलकर प्रेम से वार्तालाप करें। एकमत होकर ज्ञान प्राप्त करें। जिस प्रकार श्रेष्ठजन एकमत होकर ज्ञानार्जन करते हुए ईश्वर की उपासना करते हैं, उसी प्रकार आप भी एकमत होकर व विरोध त्यागकर अपना काम करें।

सरलार्थ- (हे स्तुतिकारी) (आप) साथ-साथ चले, साथ-साथ बोले, आपके मन समान हों। जैसे प्राचीनकाल के देवता साथ-साथ यज्ञभाग को ग्रहण करते थे उसी प्रकार तुम भी करो।

व्याकरण –

- गच्छध्वम्– गम्-धातु से लोट आत्मनेपद के मध्यम पुरुष बहुवचन में गच्छध्वम् रूप सिद्ध होता है।
- वदध्वम्– वद्-धातु से लोट् लकार आत्मनेपद मध्यमपुरुष बहुवचन में वदध्वम् रूप सिद्ध होता है।
- संजानताम्– सम्पूर्वक ज्ञा-धातु से लोट् लकार आत्मनेपद मध्यमपुरुष बहुवचन में संजानताम् रूप सिद्ध होता है।
- सञ्ज्ञानाना:– सम्पूर्वक ज्ञा-धातु से शानच्प्रत्यय के प्रथमा बहुवचन में सञ्ज्ञानाना: रूप सिद्ध होता है।
- उपासते– उपपूर्वक आस्-धातु से लट् लकार आत्मनेपद प्रथमपुरुष बहुवचन में उपासते रूप बनता है।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मंत्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥3॥

पदपाठः – **समानः। मन्त्रः। सम्ऽइतिः। समानी। समानम्। मनः। सह।**
चित्तम्। एषाम्॥ समानम्। मन्त्रम्। अभि। मन्त्रये। वः।
समानेन। वः। हविषा। जुहोमि॥

अन्वय– एषां मन्त्र: समान:, समिति: समानी, मन: समानम्, चित्तं सह। व: समानं मन्त्रम् अभिमन्त्रये व: समानं हविषा जुहोमि॥3॥

व्याख्या– हम सबकी प्रार्थना एक समान हो, भेद भाव से रहित परस्पर मिलकर रहें, अंत:करण मन चित विचार समान हों। मैं सबके हित के लिए समान मन्त्रों को अभिमंत्रित करके हवी प्रदान करता हूँ।

सरलार्थ– (स्तोताओं का) यह मनन समान हो, इनका मेल समान हो, हृदय के साथ मन भी समान हो। तुम्हारे लिए एक ही स्तुति उच्चारित हो। मैं तुम्हारे लिए एक ही हवि की आहुति देता हूँ।

व्याकरण

- **समिति:**– सम्पूर्वक इ-धातु से क्तिन् प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में समिति: रूप बनता है।
- **अभिमन्त्रये**– अभिपूर्वक मन्त्र-धातु से लट् लकार के आत्मनेपद के उत्तमपुरुष एकवचन में अभिमन्त्रये रूप सिद्ध होता है।
- **जुहोमि**– हूँ-धातु से लट्लकार उत्तमपुरुष एकवचन में जुहोमि रूप बनता है।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥4॥

पदपाठः – समानी। वः आऽकूतिः। समाना। हृदयानि। वः॥ समानम्।
अस्तु। वः। मनः। यथा। वः। सुऽसह। असति॥

अन्वय– वः आकूतिः समानी, वः हृदयानि समानाः, वः मनः समानम् अस्तु यथा वः सुसह असति।

व्याख्या– तुम सबके संकल्प एक समान हों, तुम्हारे हृदय एक समान हों, और मन एक समान हों, जिससे तुम्हारा कार्य परस्पर पूर्ण रूप से संगठित हों।

सरलार्थ– (हे ऋत्विक् यजमान) हमारा अभिप्राय समान हो, तुम्हारा अन्तःकरण समान हों, तुम्हारा मन समान हों। तुम्हारा मेल शोभनीय हों (यही प्रार्थना है)।

व्याकरण–

- आकूतिः– आपूर्वक कू-धातु से क्तिन् प्रत्यय होने पर यह रूप सिद्ध होता है।
- समाना– समानानि इसका वैदिक रूप है।
- असति– अस्-धातु से लट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में वैदिक रूप सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न

835. सञ्ज्ञान सूक्त का ऋषि, छन्द, और देवता क्या है?

836. वृषन् का क्या अर्थ है?

837. युवसे यह रूप कैसे सिद्ध होता है?

838. भर यह रूप कैसे सिद्ध होता है?

839. वदध्वम् यह किस लकार का रूप है?

840. समानी में क्या प्रत्यय है?

841. वः का क्या अर्थ है?

842. आकूतिः का क्या अर्थ है?

843. असति यह रूप किस धातु का है?

844. असति का लौकिक रूप क्या है?

पाठ का सार

8.6 संज्ञानसूक्त का सार

सभी इच्छाओं के पूरयिता अग्नि देव को उद्देश्य करके इस प्रकृत संज्ञान सूक्त में प्रार्थना की गयी है कि- सबका अभीष्ट प्रदाता जो अग्निदेव सब प्राणी समूह का सम्यक मेल करवाता है। और पृथिवी में अर्थात् वेदी में जो अग्निदेव प्रज्वालित होते हैं। वैसे अग्निदेव हम सबके लिए धन प्रदान करें।

एक साथ स्तोतृगण के प्रति कहा जाता है कि - आप सब के साथ मिलकर चलें, मिलकर बोलें। आपके मनमें समान समय में ही ज्ञान प्राप्त हों। जैसे प्राचीन काल में ज्ञान में समान होकर देव यज्ञभाग को स्वीकार करते थे, वैसे ही आप सब भी एकमत होकर धन को स्वीकार करो।

और सभी स्तोताओं की स्तुति एक विधा ही हों। उनकी प्राप्ति भी एक ही हो। आपकी समान स्तुति मेरे द्वारा अभिमन्त्रित है। और आपकी समान हवि से मुझे आहूत किया जाए।

और अन्त में यजमानों को उद्देश्य करके कहा जाता है कि - आपका सङ्कल्प समान हों। आपका हृदय समान हों। तथा मन भी समान हो। और जिससे आपका सहभाव शोभनिय हो यह प्रार्थना है।

पाठान्त प्रश्न

(सूर्यसूक्त)

845. सं समिद्युवसे.. इस मन्त्र को पूरा करके इसकी व्याख्या करो?धातु।

846. सूर्य के अश्व स्वरूप की समन्त्र व्याख्या करो।

847. सूर्य स्वरूप की समन्त्र व्याख्या करो।

848. अद्या देवा उदिता... इस मन्त्र को पूरा करके इसकी व्याख्या करो।

849. तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे... इस मन्त्र को पूरा करके इसकी व्याख्या करो।

(संज्ञानसूक्त)

850. संज्ञान सूक्त का सार लिखो।

851. संगच्छध्वम्.. इस मन्त्र को पूरा करके व्याख्या करो।

टिप्पणी

852. समानो मन्त्रः समितिः... इस मन्त्र को पूरा करके इसकी व्याख्या लिखो।

853. समानी व आकूतिः... इस मन्त्र को पूरा करके इसकी व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तरभाग- (सूर्यसूक्त।)

854. कुत्स ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, सूर्य देवता।

855. आश्चर्यकर।

856. आ उपसर्ग पूर्वक प्रा धातु से लुङ् के प्रथमपुरुष एकवचन में।

857. स्था धातु से क्वसु प्रत्यय करने पर।

858. कल्याण।

859. भद्र हरित चित्र यह अनुमाद्यास नमन करेंगे।

860. इण्गतौ धातु से तन्प्रत्यय से एत सिद्ध होने पर एत पूर्वक गम्-धातु से ड्वप्रत्यय करने पर।

861. अनुपूर्वक मद्-धातु से यति प्रत्यय करने पर।

862. देव्यु-धातु से क्यच् और शतृ के प्रथमाबहुवचन में।

863. इण्धातुः।

उत्तरभाग- (सूर्यसूक्त॥)

864. आदित्य।

865. सर्व।

866. सप्तम्यर्थ में।

867. अधिकरणार्थ में।

868. ङीप्प्रत्यय।

869. युज्-धातु से आत्मनेपदी लुङ् लकार के प्रथमपुरुष एकवचन में।

870. रसहरणशील।

871. पाधातु से असुन्प्रत्यय करने पर।

872. निपातस्य च।

873. मम्ह् अथवा मह् धातु से लिट् मूलक लोट् लकार के प्रथमपुरुष बहुवचन में।

उत्तरभाग- (संज्ञानसूक्त॥)

874. ऋषि- आङ्गिरा। छन्द- 1, 2, 4 अनुष्टुप, 3 त्रिष्टुप्। देवता- 1 अग्नि, 2, 3, 4 संज्ञान।

875. कामों का वर्षित।

876. यु-धातु से लट् लकार के आत्मनेपद के मध्यमपुरुष एकवचन में युवसे रूप सिद्ध होता है।

877. भृ-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन भर यह रूप बनता है।

878. लोट्लकार में।

879. ङीप्प्रत्यय।

880. तुम्हारा।

881. आपूर्वक कु-धातु से क्तिन्प्रत्यय करने पर।

882. अस्-धातु से।

883. अस्ति।

अठवाँ पाठ समाप्त

टिप्पणी

9

पूषन्सूक्त और उषस्सूक्त

प्रस्तावना

इस पाठ से दो सूक्तों को हम आत्मसात करेंगे।

वेद में पूसन्सूक्त (म-6.54) प्रसिद्ध सूक्त है। पूषा यह शब्द पोषण अर्थक पुष्-धातु से बना है। यास्क के मत के अनुसार से आदित्य का रूप किरणों के द्वारा पुष्ट होता है, इसलिए वह पूषा कहलाता है। बृहद्देवताकार शौनक के मतानुसार से पूषा पोषण करता हुआ पृथ्वी को पोषित करता है, तथा किरणों के द्वारा अन्धकार को हटाता है। पूषा वस्तुत सूर्य ही है। लोगो ने बाद में इसको भिन्न रूप देकर सूर्य से अलग विशिष्ट रूप का उसमें आरोप किया है। जो सभी लोगों के लिए आवश्यक है। इस पूषन्सूक्त के भारद्वाज ऋषि है, पूषन्देवता, गयत्री छन्द है। इस सूक्त को आधार करके सायणाचार्य ने भाष्य लिखा है। वह सायनभाष्य इस नाम से विख्यात है। उस भाष्य का भी कुछ अंश दिया है।

दूसरा सूक्त उषस्सूक्त (ऋ.वे.3.59)। और वह ऋग्वेदीय है। ऋग्वेद में उषस्सूक्त के 20सूक्त है। वहां उषादेवी की स्तुति की गई है। उषादेवी के नाम लगभग 200 सूक्तों में उल्लेखित है। उषा शब्द प्रकाश अर्थक वस्-धातु से बना है। इसी प्रकार उषा शब्द का अर्थ प्रकाशिका है। उषादेवी के वर्णन काल में वैदिक ऋषियों ने अपने काव्य की प्रतिभा को दिखाया है। ऋग्वेदीय उषस्सूक्त के वामदेव ऋषि है, त्रिष्टुप् छन्द है, उषा देवता है। तीसरे मण्डल में विद्यमान उन्सठवां सूक्त है (3.59)।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- पूषन्सूक्त को जान पाने में;

टिप्पणी

- पूषन्देवता के स्वरूप को जान पाने में;
- उषादेवी विषय में जान पाने में;
- उषादेवी के महत्व को समझने में;
- उषादेवी के विषय में विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- मन्त्रों का संहिता पाठ जान पाने में;
- सूक्त में स्थित मन्त्रों का पदपाठ जान पाने में;
- अपने आप मन्त्रों की व्याख्या करने में;
- अपने आप मन्त्रों का अन्वय आदि करने में;
- मन्त्र में स्थित शब्दों का व्याकरण जानने में;
- वैदिक शब्दों को जान पाने में;
- लौकिक वैदिक शब्दो का भेद जानने में।

।।पूषन्सूक्त।।

9.1 मूलपाठ

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये।
धिये पूषन्नयुज्महि।।1।।

अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम्।
वामं गृहपतिं नय।।2।।

अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय।
पणेश्चिद्वि म्रदा मनः।।3।।

वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि।
साधन्तामुग्र नो धियः।।4।।

परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे।
अथेमघ्मभ्य रन्धय।।5।।

वि पूषघ्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम्।
अथेमस्मभ्य रन्धय।।6।।

आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे।
अथेमस्मभ्य रन्धय।।7।।

टिप्पणी

यां पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां विभर्ष्याघृणे।
तया समस्य हृदयघ्मा रिरव किकिरा कृणु॥8॥

या ते अष्टा गोओपशाघृणे पशुघ्साधनी।
तस्यास्ते सुम्नमीमहे॥9॥

उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत।
नृवत्कृणुहि वीतये॥10॥

9.1.1 मन्त्र व्याख्या (पूषन् सूक्त)

वयमुं त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये।
धिये पूषन्नयुज्महि॥1॥

पदपाठ- वयम्। ओं (ॐ) इति। त्वा। पथः। पते। रथम्। न।
वाजऽसातये। धिये। पूषन्। अयुज्महि॥1॥

अन्वय- पथस्पते पूषन्, वयम् उ वाजसातये धिये रथं न त्वा अयुज्महि।

व्याख्या- हे पुष्टि करने वाले, मार्ग के स्वामिन् हम लोग ही संग्राम का विभाग करने वाले प्रज्ञा के लिये आपको विमान आदि यान के समान प्रयुक्त करते है। उ यह पूरक है।

सरलार्थ- हे स्वामिन् हमारे द्वारा धनप्राप्ति के लिये तथा कार्य को पूर्ण करने के लिए आप हमारे सहायक है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- पथस्पते-पथ मार्ग का स्वामी सम्बोधन एकवचन में यह रूप बनता है।
- सातये-सन्-धातु से क्तिनप्रत्यय होने पर चतुर्थी एकवचन में यह रूप बनता है।
- अयुज्महि-युजिर् इस धातु से लुङ् लकार में उत्तम पुरुषबहुवचन में यह रूप बनता है।
- पूषन्-पुष्-धातु से कनिन्प्रत्यय करने पर सम्बोधन एकवचन में यह रूप बनता है।

अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयंतदक्षिणम्।
वामं गृहपतिं नय॥2॥

पदपाठ- अभि। नः। नर्यम्। वसु। वीरम्। प्रयंतऽदक्षिणम्।
वामम्। गृहऽपतिम्। नय॥2॥

अन्वय- नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणं वामं गृहपतिं अभि नः नय।

व्याख्या- हे पुष्टि करने वाले! आप मनुष्यों में उत्तम मनुष्यों के लिए हितकारी धन को प्राप्त कराते हैं, हे स्वामी आप ही हम लोगों के लिए उत्तम पति, उत्तम भार्या, प्रशंसित धन की प्राप्ति करा के उत्तम शिक्षा से धर्म आचरण की प्राप्ति कराइये।

सरलार्थ- हे स्वामी मनुष्यों को धन के प्रति, शुभ लक्षण युक्त पुरुष के समान हमारे को भी प्रशंसनीय गृहस्थ की प्रति ले जाइये।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- नर्यम्-नृशब्द से यत्प्रत्यय करने पर, नृभ्यः हितम् यह रूप बनता है।
- वामम्-वन्-धातु से मनिन् प्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।
- प्रयत- प्रपूर्वक यत्-धातु से क्तप्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।

अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय।
पणेश्चिद्वि म्रदा मनः॥3॥

पदपाठ- अदित्सन्तम्। चित्। आघृणे। पूषन। दानाय। चोदय। पणेः। चित्। वि। म्रद। मनः॥3॥

अन्वय- आघृणे पूषन्, अदित्सन्तं दानाय चोदय, पणेः चित् मनः वि म्रद।

व्याख्या- हे सब ओर से प्रकाशमान स्वामी आप देने की अनिच्छा करते हुए भी देने वाले को देने के लिए प्रेरणा दीजिये, फिर भी देने वाले को और अपने मन को भी प्रेरणा दीजिये, और जुआ खेलने वाले के भी अन्त करण को विशेष रूप से दण्ड दीजिये।

सरलार्थ- हे प्रकाशयुक्त भगवन! अनिच्छुक व्यक्ति को देने के लिए प्रेरीत करें। व्यापारी के मन को भी विशेषरूप से सरल कीजिये।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- अदित्सन्तम्- सन्नन्त दा-धातु से शतृ प्रत्यय करने पर दित्सत् इस रूप में नञ्समास करने पर द्वितीया एकवचन में यह रूप बनता है।
- चोदय-चुद्-धातु से यण लोट् लकार में करने पर मध्यमपुरुष एकवचन में चोदय यह रूप बना।
- विम्रद-विपूर्वक म्रद्-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में विम्रद यह रूप बना।

वि पथो वाजसातये चिनुहि। वि। मृधो जहि।
साधन्तामुग्र नो धियः॥4॥

पदपाठ- वि। पथः। वाजऽसातये। चिनुहि। वि। मृधः। जहि। साधन्ताम्। उग्र। नः। धियः॥

अन्वय- उग्र, वाजसातये पथः विचिनुहि, मृधाः वि जहि, नः धियः साधन्ताम्।

व्याख्या- हे तेजस्वी सेनापति आप विज्ञान अथवा धन की प्राप्ति, अथवा संग्राम के लिए मार्ग का संचय करो तथा सग्रामों में प्रवृत दुष्टों को विशेषता से मारो जिससे हमारी बुद्धियाँ कार्यो को सिद्ध करे।

सरलार्थ- हे पूषन् आप उत्तम निर्भय मार्गों को बनाओ, उनमे विपथगामियों को मारो जिससे सब की बुद्धियाँ उत्तम कर्मो की उन्नति करने के लिए प्रवृत हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

- चिनुहि- चि-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में यह रूप बना।
- मृधा:-मृध-धातु से क्विप् करने पर द्वितीया बहुवचन में यह रूप बना।
- जहि-हन्-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध हुआ।
- साधन्ताम्-आत्मनेपदि साध्-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष बहुवचन में।

परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे।
अथेमस्मभ्य रन्धय॥5॥

पदपाठ- **परि। तृन्धि। पणीनाम्। आरया। हृदया। कवे। अथ। ईम्। अस्मभ्यम्। रन्धय॥**

अन्वय- कवि, आरया पणीनां हृदया परि तृन्धि, अथ ईन् अस्मभ्यं रन्धाय।

व्याख्या- हे कवि! आप उत्तम कोड़ा से द्युत आदि व्यवहार करने वाले पुरुषो के हृदयों को सब और से मारो इसके अनन्तर हमारे लिए सब ओर से दुष्टों को पीड़ित करो और हमारे लिये सुख दीजिये।

सरलार्थ- हे प्राज्ञ जो अपवित्र शिक्षा देने वाले और छली पुरुष अपने राज्य में हो उनको अच्छे से दंड दीजिये जिससे न्यायमार्ग के बीच हम लोग सुखी हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

- तृन्धि-तृद्-धातु से लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप बना।
- रन्धाय-रध्-धातु से लोट् लकर मध्यमपुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध हुआ।
- हृदया-हृदय शब्द का द्वितीया बहुवचन में वैदिक रूप है। लोक में तो हृदयानि है।
- आरया-ऋ-धातु से अण टाप करने पर तृतीया एकवचन में यह रूप बना।

पाठान्त प्रश्न

883. पूषन्सूक्त के कौन ऋषि हैं, क्या छन्द है, और देवता कौन है?

884. उ इसका क्या अर्थ है?

885. पथस्पते यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?

886. सातये यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?

887. अयुज्महि यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?

888. पूषन् यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?

889. नर्यम् इसका क्या अर्थ है?

890. प्रयतदक्षिणम् इसका विग्रह क्या है?

891. नर्यम् यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?

892. आघृणे इसका क्या अर्थ है?

893. प्रयतम् इसका क्या अर्थ है?

894. तृन्धि यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?

895. चिनुहि यह रूप कैसे सिद्ध हुआ है?

896. मृध: इसका क्या अर्थ है?

897. हृदया इसका लौकिक रूप क्या है?

9.1.2 मन्त्र व्याख्या

विपूषन्नारया तुद पणेरिंच्छ हृदि प्रियम्।
अथेमस्मभ्य रन्धय॥6॥

पदपाठ– **वि। पूषन्। आरंया। तुद। पणे:। इच्छ। हृदि। प्रियम्॥ अथ।**
ईम्। अस्मभ्यम्। रन्धय॥6॥

अन्वय– पूषन्, आरया वितुद, पणे: (हृदि) प्रियम् इच्छ, अथ ईम् अस्मभ्यं रन्धय॥

व्याख्या– हे पूषन्, आप दुष्टों को सब ओर से अति पीड़ित करो तथा हमारे लिए हृदय में प्यार की इच्छा स्थापित करो इसके अनन्तर कोड़ों से बैलों के समान प्रशंसित व्यवहार करने वाले के असम्बन्धि जनों को विशेषता से पीड़ा दो॥

सरलार्थ– हे पूषन् आप दुष्टों को दण्ड देकर श्रेष्ठो का सत्कार कर सब को श्रेष्ठ कर्मो में प्रेरणा दो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- तुद–तुद्–धातु से लोट लकार मध्यमपुरुष एकवचन में यह रूप बना।
- इच्छ–इष्–धातु से लोट लकार मध्यमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।

टिप्पणी

आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे।
अथेमस्मभ्य रन्धय॥7॥

पदपाठ- **आ। रिख। किकिरा। कृणु। पणीनाम्। हृदया। कवे॥ अथ। ईम्। अस्मभ्यम्। रन्धय॥7॥**

अन्वय- कवे, पणीनां हृदया आ रिख, किकिरा कृण उ, अथ ईम् अस्मभ्यं रन्धाय।

व्याख्या- हे कवि! आप व्यवहार करने वालों के व्यवस्था पत्रों को सब ओर से लिखो तथा दुष्टों के हृदय को अति पीड़ा दो, इसके बाद हम लोगों के लिए सुख करो।

सरलार्थ- हे प्राज्ञ पूषन् आप व्यापारी के हृदय को अनुकूल करो और कोमल भी करो। उसके बाद वह हमारे वश में रहें।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- रिख-रिख्-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- किकिरा-कृ-धातु से अच करने पर द्वितीया बहुवचन में नपुंसकलिङ्ग में वैदिक रूप है। लोक में तो किकिराणि यह रूप बनता है।
- कृणु-कृ-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में। (कुरु इसका वैदिकरूप है -कृणु) यह रूप बनता है।

यां पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे।
तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु॥8॥

पदपाठ- **याम्। पूषन्। ब्रह्मऽचोदनीम्। आराम्। बिभर्षि। आघृणे॥ तया। समस्य। हृदयम्। आ। रिख। किकिरा। कृणु॥8॥**

अन्वय- आघृणे पूषन्, ब्रह्मचोदनीयम् आरां विभर्षि तया समस्य हृदयं आरिख, किकिरा कृणु।

व्याख्या- हे स्वामी सब ओर से न्याय के प्रकाश करने वाले आप जिस विद्या धन प्राप्ति के लिए प्रेरणा करने तथा काष्ठ के विभाग करने वाली आरी को धारण करते हो उससे तुल्य अर्थात जो सब में बुद्धिवाला है उसके हृदय को अच्छे प्रकार से लिखो और उत्तम गुणों को फैलाओ।

सरलार्थ- हे प्रकाशमान पूषन् आप विद्या और धन की प्राप्ति की प्रेरणा के समान राजनीति को धारण करो जिससे सब की न्याय व्यवस्था हो सके।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- ब्रह्मचोदनीम्-ब्रह्म उपपद से चुद्-धातु से ल्युट् लकार और ङीप करने पर यह रूप बनता है।
- विभर्षि-विपूर्वकभृ-धातु से लट लकार मध्यमपुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।

या ते अष्ट्रा गोओपशाघृणे पशुसाधनी।
तस्यास्ते सुम्नमीमहे॥9॥

पदपाठ- **या। ते। अष्ट्रां। गोऽओपशा। आघृणे। पशुऽसाधनी॥**
तस्याः। ते। सुम्नम्। ईमहे॥9॥

अन्वय- आघृणे, ते या गोओपशा पशुसाधनी अष्ट्रा ते तस्याः सुम्नम् ईमहे।

व्याख्या- हे सब ओर से पशु विद्या का प्रकाश करने वाले जो आपकी व्याप्त होने वाली जिसमे गौयें परस्पर सोती हैं और जिसमें पशुओं को सिद्ध करते हैं वह क्रिया वर्तमान है उससे आपके सुख को हम लोग मागंते हैं।

सरलार्थ- हे प्रकाशमान जिस क्रिया से पशु बढ़े उस क्रिया को बढ़ाकर सुख को मांगो। हम तुम्हारे अस्त्रों के लिए सुख शान्ति चाहते है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- अष्ट्रा-अश्-धातु से ष्ट्रन और टाप् करने पर यह रूप बनता है।
- गोओपशा-गवाम् ओपशा यहाँ तत्पुरुष समास है।
- पशुसाधनी- पशु को साधना। साध्-धातु से ल्युट् ङीप् करने पर साधनी यह रूप बनता है।
- सुम्रम्-सुपूर्वक म्ना-धातु से कप्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में यह रूप बनता है।
- ईमहे-आत्मनेपदि ईङ्-धातु से उत्तमपुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत।
नृवत्कृणुहि वीतये॥10॥

पदपाठ- **उत। नः। गोऽसनिम्। धियम्। अश्वऽसाम्। वाजऽसाम्। उत॥**
नृऽवत्। कृणुहि। वीतये॥10॥

अन्वय- नः गोषणिम् उत अश्वसां उत वाजसां धियं नृवत् वीतये कृणुहि।

व्याख्या- हे पूषन् आप हम लोगों के प्राप्ति के अर्थ गौओं को अलग-अलग करने वाली और घोड़ों का विभाग करने वाली और अन्नादि पदार्थों का विभाग करने वाली उत्तम बुद्धि को मनुष्यों के तुल्य करो।

सरलार्थ- हे पूषन् हमको गाये प्राप्त हों, घोड़े प्राप्त हों और अन्नादि की प्राप्ति की अभिलाषा को पूर्ण करके राजा के समान आनन्द को पूर्ण करो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- गोषणिम्-गोपूर्वक षणु-धातु से इप्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।
- अश्वसाम्, वाजसाम्-षष्ठी बहुवचन में वैदिक रूप है। लोक में तो अश्वानाम्, वाजानाम् यह बनता है।
- नृवत्-शब्द से मतुप्प्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।
- वीतये-वी-धातु से क्तिन् प्रत्यय करने पर वीति, उसका चतुर्थी एकवचन में रूप बनता है।
- कृणुहि-कृ-धातु से लोट लकार मध्यमपुरुष एकवचन में वैदिक रूप है। लोक में तो कुरु रूप बनता है।

पाठान्त प्रश्न

898. आरा इसका क्या अर्थ है?
899. पणिः इसका क्या अर्थ है?
900. वि तुद इसका क्या अर्थ है?
901. किकिरा इसका क्या अर्थ है?
902. किकिरा इसका लौकिक रूप क्या है?
903. किकिरा यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
904. कृणु इसका लौकिक रूप क्या है?
905. ब्रह्मचोदनीम् यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
906. अष्ट्रा यह रूप कैसे सिद्ध होते?
907. गोओपशा यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
908. सुम्रम् यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
909. ईमहे यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
910. सुम्नम् इसका क्या अर्थ है?
911. वीतये इसका क्या अर्थ है?
912. कृणुहि इसका लौकिक रूप क्या है?

9.2 पूषन्देव का स्वरूप

ऋग्वेद में वर्णित सभी देवों की प्राकृतिक शक्ति भावना से कल्पना की है। परन्तु पूष देव के विषय में वैसा कुछ भी नहीं सुना जिससे उसकी प्राकृतिक शक्ति में कल्पना की जाये ऐसा नही कह सकते हैं। पूषा-यह शब्द पुष्-धातु से निष्पन्न हुआ है, पुष् धातु का अर्थ पोषण है। अत:जो शक्ति देने वाला है और जो पोषक है उसे ही पूषा-शब्द से कहा जाता है। हमारे जगत में अन्तरिक्ष स्थानीय सूर्यदेव ही सबसे उत्तम पोषक है। वह जैसे प्राणियों के जीवन शक्ति के पोषक हैं, वैसे ही भौतिक सम्पदा की वृद्धि में भी सहायक हैं, अथवा जड़ पदार्थों का पोषण करते हैं। सूर्य के उस प्रकार के स्वरूप को ही पूषरूप से वैदिक ऋषियों के द्वारा कल्पना की गई है। अत: पूषा द्युस्थानीय देव हैं।

प्राचीन आचार्यो को भी पूष देव के पोषण करने के विषय में ज्ञान था। निरुक्तकार यास्क महर्षि ने अपने निरुक्त ग्रन्थ में पूषा शब्द की व्युत्पत्ति दिखाते समय पूष देव के भरण-पोषण के रूप का ही वर्णन किया है। और भी यास्क के द्वारा कहा गया है- 'यद्रश्मिपोषं पुष्यति तत् पूषा भवति'। (12.7) अन्य जगह उस पूषदेव को आदित्य रूप से ही वर्णन किया गया है और उसके बारे में कहा गया है- 'सर्वेषां भूतानां गोपायितादित्य:' (7.9) इति। अन्य वैदिकग्रन्थ में शौनक के द्वारा कहा गया है-

'पूष्यन् क्षितिं पोषयति प्रणुदन् रश्मिभिस्तम:।
तेनैनमस्तौत् पूषेति भरद्वाजस्तु पञ्चभि:॥'(2.63)। इति।

मध्य काल में वेदव्याख्या कर्ता सायण ने पूषदेव को उदीष्ट कहा- 'जगत्पोषक: पृथिव्यभिमानिदेव:'। इति। ऋग्वेद में साकल्य के द्वारा आठ सूक्तमें पूषदेव की स्तुति की है। वह आघृणि: अर्थात प्रकाशमान हैं। वह कपर्दी अर्थात् किरणों से युक्त हैं। सफेद वर्ण के और तेज बाण उसके प्रधान शस्त्र हैं। उसका वाहन बकरा है। वैसे कहा भी है- 'अजा: पूष्णश्च वाजिन'(बृहद्देवता8.141)। घी से मिला हुआ जौ का सत्तु उसका प्रधान खाद्य है। ब्राह्मण साहित्य में कहा गया है की दांत नही होने से वह चूर्ण खाद्य द्रव्य को खाते थे। वैसे शुक्लयजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण में उसे स: अदन्तक: आसीद् ऐसा कहा गया है। उसके विषय में एक उपाख्यान भी प्राप्त होता है।

ऋग्वेद का समाज कृषि प्रधान था। और कृषिक्षेत्र में पशूओं का उपयोग अधिक था। उससे पशुपालन को भी जीविका रूप से उन्हें स्वीकार किया है। पूषा ऋग्वेद में पशुपालको का प्रधान देव थे। गायों की सम्पत्ति ही सबसे श्रेष्ठ सम्पदा थी ऐसा सुना जाता है। अत: उनकी रक्षा के लिए सभी जागरूक थे। अत: वे पूषदेव के मन्त्रों में प्रार्थना करते है की हे पूषन् हमारा गोधन हमेशा सुरक्षित हो, शेर आदि पशुओं के भय से मुक्त हो, कुए आदि में नहीं गिरें। नये घास के मैदान की खोज में वे दूर-दूर देशों में जाते थे। तब जाने के समय में वे इसी देव की स्तुति करते थे, क्योंकि पूषदेव ही उनको मार्ग दिखाने वाला और रक्षक था। वह पशुपाल कों को बाधाओं से रहित मार्गो में प्रवृत

करता, भयानक जन्तुओं से और दुष्ट मनुष्यों के हाथों से उनकी रक्षा करता है। वह देव घास से युक्त क्षेत्रों में उनको प्रवृत करता है। और जब पशु खो जाते तो वह ही उन पशुओं को प्राप्त कराता है। ऋग्वेद में विशिष्ट पथप्रदर्शक के रूप में उस देव का ही आगमन होता है। वैसे ही मृत पुरुषों के परलोक जाने के समये में वह ही पथप्रदर्शक के रूप में आते थे ऐसा ऋग्वेद के मन्त्रों में वर्णन देखा जाता है।

इस प्रकार अनेक कर्मो में उस देव की प्रधानता देखी जाती है, ऋषियों ने वेदमन्त्रों में उसकी स्तुति कि है।

9.3 पूषन्सूक्त का सार

ऋग्वेदसंहिता के छठे मण्डल का चौवनवां (54) सूक्त हि पूषन्सूक्त है। इस सूक्त के ऋषि भारद्वाज, छन्द गायत्री, और देवता पूषा है। यहाँ दश मन्त्र हैं। जो पुरुषनाश हुए धन को प्राप्त करना चाहता है, उसे इस सूक्त का जप करना चाहिए ऐसा आश्वलायन सूक्त में इस सूक्त का विनियोग प्राप्त होता है। वैसे भी वेद के आश्वलायन गृह्यसूत्र में – 'संपूषन् विदुषा इति अथवा नष्टमधिजिगमिषन् मूलहो वा' ऐसा कहा गया है।

हे मार्गरक्षक पूषन् हम धन प्राप्ति के लिए और कार्यो को पूर्ण करने के लिए आपको स्मरण करते है। तुम हमको समर्थ बनाओ। तुम उस पुरुष के रहस्य को हमे दो, उस सरल उपाय से नष्ट हुए धन की प्राप्ति के विषय में उपदेश देते हैं, और हमारे नष्ट धन कहाँ है यह दिखाता है। हे पुषन् देव हमारे ऊपर अनुग्रह करो जिससे हम उस मनुष्य के साथ को प्राप्त करें जो मनुष्य जानता है की हमारे नष्ट गायें और पशु कहाँ है। वह ही हमको उन घरों का बोध कराये जहाँ हमारी अपहरण की गई गायें हैं।

पूषन्-देव का शस्त्र चक्र है। वह चक्र अविनाशि है अर्थात् उस चक्र का विनाश कोई भी नहीं कर सकता है। इस चक्र का तोड़ भी नहीं है। इस चक्र की जो धार है वह व्यर्थ नहीं है, अर्थात् वह धार कभी कम नहीं होती उस चक्र से ही उन चोरों का विनाश करो जिन्होंने हमारे धन आदि को लुटा है। वैसे वेद के पूषन्सूक्त में कहा–

'पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते।
नो अस्य व्यथते पविः'॥3। इति।

जो पूषदेव के लिए हवि देता है, अर्थात् हवि द्रव्य के द्वारा जो इसकी पूजा करता है, उस यजमान को पूषा कभी भी नहीं भूलता है। और भी पूषदेव उसके लिए सबसे पहले सभी प्रकार के धन को देते हैं। वैसे पूषन् सूक्त में कहा–

'यो अस्मै हविषाविधन्न तं पूषापि मृष्यते।
प्रथमो विन्दते वसु'॥इति॥4।

हे पूषन्, हमारे पशुओं के रक्षा के लिए हमेशा उनके पीछे जाईये। हमारे घोड़ों को चोर के हाथों से छुड़ाओ, और हमें धन दीजिये। वैसे वेद में - 'पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः। पूषा वाजं सनोतु नः'।इति। जो सोमरस का पोषण करता है, उस यजमान के गायों के पीछे जाओ और उनकी रक्षा करो। और भी मेरे जैसे तुम्हारे स्तोता हैं, उनकी जो गायें हैं उनके पीछे जाओ। और उनकी रक्षा करो। वैसे वेद के पूषन्सूक्त में कहा-

'पूषन्ननु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः।
अस्माकं स्तुवतामुप'।इति।

हमारी जो गायें है उनको कोई भी कष्ट अथवा उनका नाश न हो, किसी को भी गाय को कोई पीड़ा न हो। कोई भी गाय कुएँ में गिरकर नहीं मरे। अतः तुम हमारी दोष से रहित गायों के साथ सायंकाल में आओ। और भी कहा गया है-

माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं सं शारि केवटे।
अथारिष्टाभिरा गहि।। इति।

जो पूषा हमारी प्रार्थना को सुनाता है, और दरिद्रता को दूर करता है, जिसका धन कभी भी नष्ट नही होता है, उस प्रकार का जो पूषदेव है, और भी जो सबका स्वामी है, अर्थात् शासन कर्ता उस प्रकार के पूषदेव की हम प्रार्थना करते है। और भी कहा गया है-

'शृण्वन्तं पूषणं वयमिर्यमनष्टवेदसम्।
ईशानं राय ईमहे'।इति।

हे पोषक देव तेरे कार्यो से निरन्तर कभी भी हमको दुःख अथवा कष्ट की प्राप्ति नहीं होती है। हम हमेशा तेरे स्तोता थे। अपने दक्षिण हाथ को मेरी तरफ फैलाओ, मेरा जो धन नष्ट हो गया है, उस धन को मुझे लौटाओ अर्थात् नष्ट गाय-धन पुनः आयें यह यजमान की अन्तिम प्रार्थना है। और भी वेद में कहा-

'परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम्।
पुनर्नो नष्टमाजतु'।इति।

इस प्रकार ये पूषन्सूक्त में स्थित दश ऋग्वेद के मन्त्र हैं, उनका सार अतिसंक्षेप से यहाँ पर प्रस्तुत किया है।

पाठसार-1

इस पाठ में दो सूक्त विद्यमान है। उन दोनों में प्रथम पूषन् सूक्त है। इस पूषन् सूक्त में दश मन्त्र हैं। दश मन्त्रों के द्वारा सभी प्रकार की प्रार्थना की गई है। वहां आदि मन्त्र में धन प्राप्ति के लिए कार्यों को पूर्ण करने के लिए कहा गया है। दूसरे मन्त्र

टिप्पणी

में धनवान और बलवान गृहस्थ की प्रशंसा करते हुए हमे भी उसी प्रकार बनाने के लिए प्रार्थना की गई है। तीसरे मन्त्र में देने की इच्छा न रखने वालों मनुष्यों को देने के लिए प्रेरित करने की प्रार्थना की है। चौथे मन्त्र में धन प्राप्ति के मार्ग में विद्यमान शत्रु के नाश के लिए प्रार्थना की गई है। पाँचवें मन्त्र में व्यापारी के हृदय की चारों दिशाओं में कीर्ति के लिए प्रार्थना की गई है। छठें मन्त्र में पूर्वमन्त्र के समान ही कहा गया है। सातवें मन्त्र में व्यापारी के हृदय को कोमल करने के लिए प्रार्थना की गई है। आठवें मन्त्र में सभी मनुष्यों के हृदयों को कोमल करने के लिए प्रार्थना की गई है। नौवें मन्त्र में सुख प्राप्ति के लिए प्रार्थना की गई है। दशवें मन्त्र में गायों की प्राप्ति के लिए, घोड़ों की प्राप्ति के लिए, और अन्न की प्राप्ति के लिए अभिलाषाओं को और राजा के समान आनन्द देने के लिए प्रार्थना की गई है। इस प्रकार पूरे पूषन् सूक्त में प्राय:व्यापारी के हृदय को कोमल करने के लिए और धन प्राप्ति के लिए अधिकांश प्रार्थना की है।

उषस्सूक्त

9.4 (ऋ.वे.3.59) मूलपाठ

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेता:
स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि।
पुराणी देवि युवति: पुरन्धि-
रनुव्रतं चरसि विश्ववारे॥1॥

उषो देवमर्त्या वि भाहि
चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा
हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये॥2॥

उष! प्रतीची भुवनानि विश्वो
र्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतु:।
समानमर्थं चरणीयमाना
चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व॥3॥

अव स्यूमेव चिन्वती मघो
न्युषा याति स्वसरस्य पत्नी।
स्व100र्जनन्ती सुभगा सुदंसा
आन्तादिव: पप्रथ आ पृथिव्या:॥4॥

अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं
प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम्।
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रे
त्प्र रोचना रुरुचे रण्वसदृक्॥5॥

ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या
रेवती रोदसी चित्रमस्थात्।
आयतीमग्न उषसं विभातीं
वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः॥6॥

ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्
वृषा मही रोदसी आ विवेश।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया
चन्द्रेव भानुं वि-दधे पुरुत्रा॥7॥

टिप्पणी

9.4.1 मन्त्र व्याख्या

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः
स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि।
पुराणी देवि युवतिः पुरन्धि
रनुव्रतं चरसि विश्ववारे॥1॥

पदपाठ– उष!। वाजेन। वाजिनि। प्रऽचेताः। स्तोमम्। जुषस्व। गृणतः॥
मघोनि। पुराणी। देवि। युवतिः। पुरम्ऽधिः। अनु। व्रतम्।
चरसि। विश्ववारे॥

अन्वय– वाजेन वाजिनि मघोनि उषः प्रचेताः गृणतः स्तोमं जुषस्व। विश्ववारे देवि पुराणी युवतिः पुरंधिः व्रतम् अनुचरसि।

व्याख्या– अन्न से अन्नवति तथा धन से धनवति हे उषा देवी। तुम प्रकृष्ट ज्ञान वाली होती हुई स्तुति करने वाले स्तोता के स्तोत्रा को ग्रहण करो सम्पूर्ण विश्व के द्वारा वर्णनीय, दिव्य गुणों से सम्पन्न हे उषा देवी तुम पुरातन युवती के समान हो अथवा सनातन काल से युवती ही बनी हुई हो, बहुत अधिक बुद्धिशाली हो और तुम हमारे यज्ञ आदि नियम व्रत को लक्ष्य करके विचरण करती हो अर्थात उनका पालन करती हो।

सरलार्थ– अन्नवति और धनवति हे उषा! प्रकृष्टज्ञान से सम्पन्न होती हुई तुम स्तुति करने वाले मनुष्य की प्रार्थना को स्वीकार करो। हे सब कुछ चाहने वाली देवि उषा! पुरातन युवति के समान नाना प्रकार से प्रशंसनीय होती हुई इस यज्ञ को लक्ष्य करके विचरण करो।

टिप्पणी

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

- प्रचेताः- प्रपूर्वक चित्-धातु से तृच् प्रत्यय करने पर प्रथमा बहुवचन में प्रचेताः यह रूप बनता है।
- गृणतः- गृ-धातु से श्ना प्रत्यय करने पर और शतृ प्रत्यय करने पर षष्ठी एकवचन में गृणतः यह रूप बनता है।
- जुषस्व- जुष्-धातु से लोट्लकार मध्यमपुरुष एकवचन में जुषस्व यह रूप बनता है।
- चरसि- चर्-धातु से लट्लकार मध्यमपुरुष एकवचन में चरसि यह रूप बनता है।

उषो देवमर्त्या वि भाहि
चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा
हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये॥2॥

पदपाठ- **उषः। देवि। अमर्त्या। वि। भाहि। चन्द्रऽरथा। सूनृता। ईरयन्ती॥ आ। त्वा। वहन्तु। सुऽयमासः। अश्वाः। हिरण्यवर्णाम्। पृथुऽपाजसः। ये॥**

अन्वय- उषः देवि अमर्त्या चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती वि भाहि। पृथुपाजसः सुयमासः ये अश्वाः हिरणवर्णां त्वा आ वहन्तु।

व्याख्या- हे उषा देवि अमर्त्या अर्थात मरण धर्म से रहित तुम विशेष रूप से शुशोभित हो जाओ, तुम्हारी वाणी प्रिय हो तथा तुम सत्य वाणी का उच्चारण करो। उस प्रकार की तुम सूर्य किरण के साथ सम्बन्ध होने से विशेष रूप से प्रकाशमान हो, तुम्हारे ये अत्यधिक शक्तिशाली अरूण वर्ण के घोड़े हैं, वे सुंदर शोभायमान रथ में जोड़कर वे स्वर्ण के समान दीप्तिमान तुमको हमारे सम्मुख लायें।

सरलार्थ- हे देवि उषा! दिव्य गुणों वाली तुम मरण धर्म से रहित होती हुई, सत्य और प्रिय वाणी का उच्चारण करती हुई विशेष रूप से प्रकाशित हो। अत्यधिक बलशाली और अच्छी प्रकार से नियंत्रित जो तुन्हारे अरुण वर्ण के घोड़े है, वे स्वर्ण से युक्त आपको हमारे सम्मुख लायें।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

- भाहि- भा-धातु से लोट् लकार में मध्यमपुरुष एकवचन में भाहि यह रूप बनता है।
- ईरयन्ती- ईर्-धातु से णिच् प्रत्यय करने पर शतृ प्रत्यय करने पर और ङी प्प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में ईरयन्ती यह रूप बनता है।

- वहन्तु- वह्-धातु से लोट् लकार में प्रथमपुरुष एकवचन में वहन्तु यह रूप बनता है।
- सुयमासः- सुयम शब्द का प्रथमाबहुवचन में यह वैदिक रूप है। लौकिक में तो सुयमाः यह रूप बनता है।

उष॑ः प्रतीची भुव॑नानि विश्वो
र्ध्वा ति॑ष्ठस्यमृत॑स्य केतुः।
समानमर्थं॑ चरणीयमा॑ना
चक्रमि॑व नव्यस्या व॑वृत्स्व॥3॥

पदपाठ- **उष॑ः। प्रतीची। भुव॑नानि। विश्वा॑। ऊर्ध्वा॑। तिष्ठसि। अमृत॑स्य। केतुः॥ समानम्। अर्थ॑म्। चरणीयमा॑ना। चक्रम्ऽइ॑व। नव्यसि। आ। व॑वृत्स्व॥**

अन्वय- उषः विश्वा भुवनानि प्रतीची अमृतस्य केतुः ऊर्ध्वा तिष्ठसि, नव्यसि समानं चरणीयमाना चक्रमिव आ ववृत्स्व।

व्याख्या- हे उषा देवि सम्पूर्ण या जितने भी लोक हैं इस सृष्टि में आप उन सभी के सम्मुख अर्थात् सामने जाती हैं। अमृत का मरण धर्म से रहित सूर्य की ध्वजा अर्थात् उनका बोध कराती हैं। आप कभी प्राचीन नही हो सकती हैं, आप हमेशा चिरस्थायी रहेगी। आप हमेशा एक ही मार्ग पर विचरण करती हुई सूर्य के चक्र के समान पुनः पुनः घूमती रहो। वहाँ दृष्टान्त चक्र के समान जैसे-आकाश में चलते हुए सूर्य का चक्र बार बार घुमता है वैसे ही तुम भी घुमती रहती हो॥

सरलार्थ- हे देवि उषा! समस्तलोक के आगे आती हुई मरण धर्म से रहित सूर्य के आगमन की सूचना देते हुई आकाश के मध्य में रहती हो। हे उषा देवी आप हमेशा नवीन रहने वाली हो, एक ही मार्ग में विचरण करती हुई चक्र के समान बार-बार आओ।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

- प्रतीची- प्रतिपूर्वक अञ्च्-धातु से क्विन्प्रत्यय करने पर प्रतीची यह रूप बनता है। प्रति आभिमुख्येन अञ्चति प्राप्नोति ऐसा सायणाचार्य ने कहा है।
- तिष्ठसि- स्था-धातु से लट्लकार मध्यमपुरुष एकवचन में तिष्ठसि यह रूप बनता है।
- नव्यसि- नव्-धातु से लट्-लकार मध्यमपुरुष एकवचन में नव्यसि यह रूप बनता है।
- चरणीयमाना- चरणीय शब्द से शानच्प्रत्यय और टाप्प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में चरणीयमाना यह रूप बनता है।

- ववृत्स्व- वृत्-धातु से यङ्लुङन्त लोट्लकार में मध्यमपुरुष एकवचन में ववृत्स्व यह रूप बनता है।

अव स्यूमेव चिन्वती मघो
न्युषा याति स्वसरस्य पत्नी।
स्व100र्जनन्ती सुभगा सुदंसा
आन्ताद्दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः॥4॥

पदपाठ- **अव। स्यूमऽइव। चिन्वती। मघोनी। उषा। याति। स्वसरस्य।**
पत्नी॥ स्वः। जनन्ती। सुऽभगा। सुऽदंसाः। आ। अन्ताम्। दिवः।
प्रपथे। आ। पृथिव्याः॥

अन्वय- स्वसरस्य पत्नी मघोनी उषा स्यूम इव अव चिन्वती याति, स्वः जनन्ती सुभगा सुदंसा दिवः आ अन्तात् पृथिव्याः पप्रथे।

व्याख्या- धनसम्पति से परिपूर्ण सूर्य की या दिन की पत्नी होती हुई यह उषा देवी वस्त्र के समान आच्छादित करने वाले अन्धकार का विनाश करती हुई अथवा अपने वस्त्र के अंहकार को फैलाती हुई चली जाती हैं। यह सूर्य की पत्नी होती हुई चलती है। वह अपने तेज को उत्पन्न करती हुई सुंदर सौभाग्य युक्त यज्ञरूप कर्म वाली यह उषा द्युलोक के अन्तिम किनारे से लेकर पृथ्वी के अन्तिम किनारे तक फैल जाती है।

सरलार्थ- सूर्य की पत्नी, धनयुक्त उषा देवी वस्त्र के समान विस्तृत अन्धकार का नाश करती हुई जाती है। अपने तेज को उत्पन्न करती हुई सुन्दरी धनयुक्त अग्निहोत्र, आदि यज्ञानुष्ठान को कराती हुई उषादेवी द्युलोक और पृथ्वी लोक के अन्त तक जितना अन्ध कार है उसे अपने प्रकाश से हटातीं हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

- चिन्वती- चि-धातु से शतृ प्रत्यय करने पर और ङीप्प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में चिन्वती यह रूप बनता है।
- जनन्ती- जन्-धातु से णिच प्रत्यय, शतृ प्रत्यय, और ङी प्प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में यह वैदिक रूप है। लौकिक में जनयन्ती यह रूप बनता है।
- पप्रथे- प्रथ्-धातु से लिट् लकार आत्मनेपद में प्रथमपुरुष एकवचन में पप्रथे यह रूप बनता है।

अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं
प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम्।
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रे
त्प्र रोचना रुरुचे रण्वसंदृक्॥5॥

पदपाठ- **अच्छ। वः। देवीम्। उषसम्। विऽभातीम्। प्र। वः। भरध्वम्।**
नमसा। सुऽवृक्तिम्॥ ऊर्ध्वम्। मधुधा। दिवि। पाजः। अश्रेत्। प्र।
रोचना। रुरुचे। रण्वसंदृक्॥

अन्वय- वः अच्छ विभातीम् उषसं देवीं वः नमसा सुवृक्तिं प्रभरध्वम्। मधुधा दिवि ऊर्ध्वं पाजः अश्रेत्। रण्वसंदृक् रोचना प्ररुरुचे।

व्याख्या- हे स्तुति करने वालों आप अपने सामने स्वच्छ रूप से प्रकाशित होती हुई उषा के प्रति तुम सब नमस्कार के साथ उत्तम सुन्दर स्तुति करो। मधु अर्थात् स्तुतियों को अथवा आदित्य को धारण करने वाली यह उषा देवी द्युलोक में उर्ध्वाभिमुख होकर तेज या बल का आश्रय लेतीं हैं और रमणीय दर्शन वाली होती हुई प्रकाशित होने वाले लोकों को अपने तेज से अतिशय रूप से प्रकाशित करतीं हैं। मधु सोम को कहते है, अथवा उसको धारण करती है।

सरलार्थ- (हे स्तुति करने वालो) आप लक्ष्य करके प्रकाशसमान उषादेवी के प्रति तुम उसका नमस्कार सहित सुंदर स्तुति करो। मधु को धारण करने वाली उषा देवी द्युलोक में ऊपर की और अपने प्रकाश को फैलातीं हैं। रमणीय दर्शन युक्त उषा देवी मनुष्यों को अत्यधिक प्रकाशित करतीं हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

- विभातीम्- विपूर्वक भा-धातु से शतृ प्रत्यय और ङीप् प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में विभातीम् यह रूप बनता है।
- भरध्वम्- भृ-धातु से लोट् लकार आत्मनेपद में मध्यमपुरुष बहुवचन में भरध्वम् यह रूप बनता है।
- रोचना- रुच्-धातु से ल्युट् प्रत्यय और टाप् प्रत्यय करने पर रोचना यह रूप बनता है।
- अश्रेत्- श्रि-धातु से लङ लकार प्रथमपुरुष एकवचन में यह वैदिक रूप है।
- रुरुचे- रुच्-धातु से लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में रुरुचे यह रूप बनता है।

ऋतावरी दिवो अर्कैरबो
ध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात्।
आयतीमग्न उषसं विभातीं
वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः॥6॥

पदपाठ- **ऋतऽवरी। दिवः। अर्कैः। अबोधि। आ। रेवती। रोदसी इति।**
चित्रम्। अस्थात्॥ आऽयतीम्। अग्ने। उषसम्। विऽभातीम्।
वामम्। एषि। द्रविणम्। भिक्षमाणः॥

अन्वय- ऋतावरी दिवः अर्कैः अबोधि। रेवती रोदसी। चित्रम् अस्थात्। अग्ने! आयतीं विभातीम् उषसं भिक्षमाणः वामं द्रविणम् एषि।

व्याख्या- सत्य से युक्त अथवा सत्य नियमों का पालन करनें वाली उषा देवी द्यु लोक से आने वाले अपने तेज पुंज से जानी जाती है। वह धान्य से युक्त होती हुई यह उषा द्युलोक और पृथ्वी लोक को नाना प्रकार के रूपों से युक्त व्याप्त करके स्थित होती है। हे अग्नि देवता अपनी ओर आती प्रकाशमान उषा देवी से याचना करते हुए तुम अभीष्ट या बाटने योग्य धान को प्राप्त करो।

सरलार्थ- सत्य से परिपूर्ण उषादेवी द्युलोक से फैले हुए तेज के रूप से जानी जाती है। धन से परिपूर्ण उषादेवी द्युलोक और पृथिवीलोक में अनेक प्रकार से व्याप्त होकर रहती है। हे अग्निदेव आपके सम्मुख आती हुई उषादेवी से बाँटने योग्य धन को प्राप्त करती हो।

व्याकरणात्मक टिप्पणी-

- अस्थात्- स्था-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में अस्थात् यह रूप बनता है।
- अबोधि- बुध्-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में अबोधि यह रूप बनता है।
- आयतीम्- आङ्पूर्वक इण्-धातु से शतृ प्रत्यय और ङीप प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में आयतीम् यह रूप बनता है।
- विभातीम्- विपूर्वक भा-धातु से शतृ प्रत्यय और ङीप् प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में विभातीम् यह रूप बनता है।
- भिक्षमाणः- भिक्ष्-धातु से शानप् प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में भिक्षमाणः यह रूप बनता है।
- एषि - इ-धातु से लट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में एषि यह रूप बनता है।

ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्
वृषा मही रोदसी आ विवेश।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया
चन्द्रेव भानुं वि दधे पुरुत्रा॥7॥

पदपाठ- **ऋतस्य। बुध्ने। उषसाम्। इषण्यन्। वृषा। मही इति। रोदसी इति। आ। विवेश॥ मही। मित्रस्य। वरुणस्य। माया। चन्द्राऽइव। भानुम्। विऽदधे। पुरुत्रा॥**

अन्वय- वृषा ऋतस्य बुध्ने उषसाम् इषण्यन् मही रोदसी आ विवेश। मित्रस्य वरुणस्य मही माया चन्द्रा इव भानुं पुरुत्रा विदधे।

व्याख्या- बृष्टि करने वाला सूर्य प्राकृतिक नियमों से अथवा अग्निहोत्र आदि नित्य नियमों के ज्ञापक सत्यभुत दिन के मूल में उषा को प्रेरित करता हुआ या उषा को चाहता हुआ महान द्युलोक और पृथ्वी लोक में सब ओर से प्रविष्ट हो गया। अथवा (वृत्ति) करने वाला सूर्य तथा प्राकृतिक नियमों के मूल में उषा को प्रेरित करता है यह विभिन्न शक्ति रूपा उषा देवी ही सुनहरी कान्ति वाले सूर्य को बहुत स्थानों पर प्रसारित करतीं है।

सरलार्थ- वर्षा द्वारा जल के प्रेरक सूर्य प्राकृतिक नियम अनुसार दिन के आदि में उषा को प्रेरित करके द्यु लोक में और पृथ्वीलोक में व्याप्त हो जाता है। मित्र देवता और वरुण देवता की विचित्र माया से उषा देवी सुनहरी कान्ति के समान सूर्य को बहुत स्थानो में फैलाती है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

- इषण्यन्- इष्-धातु से णिच्प्रत्यय और शतृप्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में इषण्यन् यह रूप बनता है।
- विवेश- विश्-धातु से लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में विवेश यह रूप बनता है।
- विदधे- विपूर्वक धा-धातु से लिट् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में विदधे यह रूप बनता है।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

913. उषस्सूक्त के ऋषि कौन है? छन्द क्या है? और देवता कौन है?
914. ईरयन्ती इस पद की उत्पति कैसे हुई?
915. इषण्यन् यह पद कैसे बना।?
916. यह सूक्त किस वेद के अन्तर्गत आता है?
917. विभातीम् यह पद कैसे बना?
918. इस सूक्त में किसकी प्रार्थना का विधान किया है?
919. पप्रथे इस रूप की सिद्धि कैसे हुई?

920. अस्थात् यह पद कैसे बना?

921. आदि मन्त्र में किसकी प्रार्थना का विधान किया गया है?

922. अश्रेत् यह पद कैसे बना?

9.5 उषा का स्वरूप

सम्पूर्ण ऋग्वेद में लगभग बीस सूक्त में उषस्-देवी की स्तुति की गई है। प्रकाश अर्थक वस्-धातु से उषस्-शब्द निष्पन्न होता है। उससे उषस्-शब्द का अर्थ होता है प्रकाशमान देवी। उषा देवी जरामरण से रहित हैं ऐसा ऋषियों के द्वारा वर्णन किया गया है। उसका स्वरूप अविनाशि है, परन्तु बहुत स्थानों में द्युलोक की दुहिता के रूप में इसका वर्णन प्राप्त होता है। उषा देवी हि सुजाता अर्थात् उसका जन्म उच्चवंश में हुआ। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में उषस्-देवी का जो मनोहर स्वरूप का वर्णन किया गया है, उस प्रकार के स्वरूप का अन्य किसी भी देवी के लिए नही किया गया है। प्रातःकाल के अधिष्ठात्री देवी रूप से उषा का चित्रण किया गया है। सूर्योदय से कुछ समय पहले का जो समय है, वह ही उषस्-देवी के आने का समय कहलाता है। अग्नि का भी उषस्-देवी के प्रेमी होने का वर्णन प्राप्त होता है। अन्न के द्वारा अन्नवती तथा धन के द्वारा धनवती हि उषा देवी कहलाती है। सभी के द्वारा जानी जाती हुई यह पुरातन युवति के समान सुशोभित होती है, विविध उपाय से स्तूयमान यह यज्ञ को उदिष्ट करके विचरण करतीं हैं। सुवर्णमय रथ में सवार होकर के यह सदा प्रिय तथा सत्य ही बोलतीं हैं। अत्यधिक बल से युक्त अच्छी प्रकार से नियन्त्रितस्वर्णिम रथ से युक्त घोड़ों के द्वारा यज्ञस्थल के प्रति ले जाया जाता है।

सम्पूर्ण मनुष्यों के सम्मुख मरणधर्म से रहित सूर्य के आगमन विषय की सूचना देती हुई यह देवी आकाश में रहतीं हैं। प्रत्येक दिन में एक बार ही उदय होने से यह सदैव नवीन ही रहतीं हैं। समान मार्ग में ही विचरण करने से यह चक्र के समान बार-बार आती है। सूर्य की पत्नी अत्यधिक धन से युक्त उषा देवी अन्धकार का नाश करतीं हैं। अपने तेज को उत्पन्न करने वाली सुन्दर धन से युक्त यह अग्निहोत्र को आचरण करती है। उषा देवी प्रत्येक दिन द्युलोक के अन्त तक प्रकाशित होती है। यज्ञ में सोम का धारण करने वाली यह उषा देवी द्युलोक के ऊपर में अपने तेज को फैलातीं हैं। रमणीय दर्शन से युक्त यह उषा देवी सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करतीं हैं। सत्य से परिपूर्ण यह देवी अपने तेजःप्रभाव से इस जगत में इसकी ख्याति है। धन से युक्त यह विविध प्रकार से द्युलोक और पृथ्वी लोक में व्याप्त होकर स्थित हैं। उषा देवी इस जगत में वर्षा के माध्यम से जल को प्राप्त होती हैं। मित्र और वरुण के प्रभाव स्वरूप अथवा शक्ति स्वरूप उषा देवी सूर्य को अनेक स्थान में फैलाती है।

टिप्पणी

9.6 उषस्सूक्त का सार

ऋग्वेद का समाज पुरुष प्रधान था। वहाँ मन्त्रों के अधिष्ठाता रूप से पुरुष देवता की अधिक प्रधानता दिखाई देती है। कुछ सूक्तों में स्त्री देवता की भी स्तुति प्राप्त होती है, परन्तु उनकी स्तुति की संख्या पुरुषों की अपेक्षा से कम ही है। कर्म की विचित्रता के अनुसार हि स्त्री देवता पुरुष के बराबर भाग को प्राप्त नहीं होतीं हैं। वे अन्य देवों की कन्या, पत्नी, अथवा माता होतीं हैं। यद्यपि उनकी अपनी महिमा विद्यमान है, फिर भी पुरुष देवताओं के समीप में उनकी महिमा कम ही है जैसे चन्द्र के आगे अन्य नक्षत्रों की है। सम्पूर्ण रूप से कह सकते है की वैदिक पुरुष तान्त्रिक समाज का नारी पुरुष सम्बन्ध का चित्र देवसमाज के ऊपर अच्छी प्रकार से प्रकाश डालता है।

ऋग्वेद में जहाँ देवियों की स्तुति प्राप्त होती है, वहाँ एक विषय दृष्टि को आकर्षित करता है ऋषियों के कवित्व भावना की और सौन्दर्य चेतना की। प्राकृतिक रूप से माधुर्य को ही सौन्दर्य भावना से प्रधान रूप में व्यक्त किया है। प्रकृति में रुद्ररूप में नहीं परन्तु कोमल-मधुर-रसमय रूप में ही नारी का चिंतन ऋषियों द्वारा किया गया है। उनके लिए ही बहती हुई स्रोत वाली, हरी भरी पृथ्वी, आलोक से परिपूर्ण उषा, अन्धकार रूप में रात्री, और पवित्रता स्वरूप में सरस्वती ये सभी ऋषियों की कल्पना में ही देवी रूप से विख्यात हैं। उनके रूप वर्णन में ऋषियों की अलौकिक भावना का और सौन्दर्य भावना का परिचय सहृदय भावना को प्राप्त होता है।

इस प्रकार की एक देवी उषा हैं। ऋग्वेद की देवियों में उसके समान कोई दूसरी देवी नहीं है। ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल का अस्सीवें (80) सूक्त को उषस् सूक्त कहते हैं। यहाँ सत्यश्रवा ऋषि, उषा देवता, त्रिष्टुप् छन्द। अन्य देवियों की अपेक्षा से उसकी ही स्तुति अधिक संख्या के सूक्तों में की गई है। स्वर्ग की दुहिता उषा द्युलोक की अधिष्ठाता देवीं हैं। सुबह सूर्योदय के पहले मूहूर्त में अथवा पहले आकाश में जो मनोहर अरुण वर्ण की आलोक प्रभा दिशाओं में दिखाई देती है, वह ही हमारी उषादेवी हैं। उषा उदय होने पर रात्रि का अन्धकार धीरे धीरे हट जाता है, पक्षियों के कूजन रात्रि की नीरवता को दूर करता है। उषा की इस महिमा को लक्ष्य करके कवि इसकी वन्दना करता है। 'सा हि दिवो दुहिता' (5.80.5-6)। इति।

ऋग्वेद में स्तूयमान उषा ऋषि की कल्पना में रूप लावण्यवती कोई युवती है। वह प्रकाशवती है (भास्वती), सफेद वस्त्रों से युक्त युवती हैं (युवतिः शुक्रवासाः)। उसके वक्षस्थल खुले हुए है, दर्शन के लिए वह हमेशा अपने शरीर को दिखाती है (1.123.11)। सूर्यदेव उसके पति हैं। मृत्यु लोक में कोई युवक जैसे किसी भी कन्या का अनुसरण करता है, वैसे ही सूर्य भी उषा देवी के पीछे जाते हैं। और वेद में भी कहा है-

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् (1.125.2)। इति।

उसके बाद उषादेवी दोनों अश्विनी कुमारों की मित्र हैं। उषा के पश्चात् सूर्य के उत्पन्न होने से कुछ लोग कहते हैं की वह सूर्यदेव की माता हैं। उषादेवी की सत्ता का अच्छी

प्रकार से उल्लेख ऋग्वेद के मन्त्रो में प्राप्त होता है। वह नियमो का पालन करने वाली है, सत्य बोलने वालीं हैं, और हवी को ले जानी वाली वह ही हैं। वह रोग का नाश करने वाली हैं, संसार को सुख प्रदान करने वालीं हैं, और विचित्र गमन करने वालीं हैं। वह यजमानों के लिए धन को देती है। स्वर्णिम रथ में बैठकर वह विश्व में व्याप्त है। उसके आने से जीवजगत में प्राणों की स्फुरति होती है। नर्तकी जैसे रात्रि के अन्धकार को दूर करती हुई प्रकट होती है, वैसे ही आलोकमयी उषा रात्रि के अन्धकार का नाश करती हुई और दिशा को प्रकाशित करतीं हैं। वेद में भी कहा है- अधि पेशांसि वपते नृतुरिव। (1.92.4)।

वह निद्रा से जीवजगत् को जगातीं हैं। वह प्राण देने वाली और मुक्ति देने वाली हैं। सूर्य के आगमन की वाणी का उसके द्वारा उद्गोषणा की जाती है। वह ही पृथ्वी की पूर्ति को धारण करती है। उषा की गति ही काल की गति है, वह चिरकाल से युवती है और अमर है। अतः उसकी स्तुति सभी देव करतें हैं।

पाठसार-2

इस पाठ में दो सूक्त प्राप्त होते हैं। वहाँ पूषन्सूक्त पहले भाग में है। उसका सार वहीं दिया गया है। अब यहाँ उषस्सूक्त के अंश का सारांश सम्पूर्ण रूप से देतें हैं।

यह सूक्त ऋग्वेद के तीसरे मण्डल का इकसठवां (61) सूक्त है। इस सूक्त के वामदेव ऋषि उषा देवता और त्रिष्टुप् –छन्द है। यहाँ उषा देवी को लक्ष्य करके प्रार्थना का विधान किया गया है। वहां आदि मन्त्र में प्रार्थना की गई है की सभी चाहने वालों के द्वारा आपकी प्रार्थना करने पर देवी उषा यज्ञ को लक्ष्य करके विचरण करें। दूसरे मन्त्र में प्रार्थना की अनेक गुण से युक्त उषा देवी प्रकाशित होकर के अपने घोड़ों को रथ से जोतकर उस पर सवार होकर के यज्ञस्थल पर आयें। तीसरे मन्त्र में प्रार्थना की गई है की आकाश के मध्य में स्थित उषा देवी बार-बार चक्र के समान आयें। चौथे मन्त्र में कहा गया है की उषादेवी अपने प्रकाश से द्यु लोक का और पृथ्वी लोक के अन्धकार का नाश करतीं हैं। पांचवें मन्त्र में मनुष्यों के द्वारा स्तूय मान मधु को धारण करने वाली उषा देवी कैसे मनुष्यों को अत्यधिक विस्तृत करतीं हैं इसका वर्णन है। छठें मन्त्र में उषा देवी कैसे द्युलोक और पृथ्वी लोक में व्याप्त होकर रहतीं हैं इत्यादि का वर्णन है। सातवें मन्त्र में कैसे सूर्यदेव द्युलोक में और पृथ्वी लोक में व्याप्त होते हैं, और कैसे उषादेवी सूर्य को सभी जगह फैलातीं हैं इत्यादि का वर्णन है।

पाठान्त प्रश्न

पूषन्सूक्त में

923. पूषन्सूक्त का सार लिखो।

924. वणिज क्या क्या करने के लिए पूषदेवता के प्रति कहता है मन्त्र सहित व्याख्या करो।

925. वयमु त्वा पथस्पते... इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

926. परि तृन्धि पणीनामारया... इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

927. या ते अष्टा गोओपशाघृणे... इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

उषस्सूक्त में

928. उषस्सूक्त का सार लिखो।

929. उषो वाजेन... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

930. उषो देव्यमर्त्या... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

931. अव स्तूमेव... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

932. उष: प्रतीची... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

933. अच्छा वो... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

934. ऋतावरी... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

935. ऋतस्य बुधन... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

936. मही मित्रस्य... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1-पूषन्सूक्त में

937. भरद्वाज ऋषि, गायत्री छन्द, पूषन् देवता।

938. पूरक है।

939. पथ मार्ग का पथे सम्बोधन एकवचन में।

940. सन्-धातु से क्तिन् होने पर चतुर्थी एकवचन में।

941. युजिर् इस धातु से लुङ् लकार उत्तम पुरुष बहुवचन में।

942. पुष्-धातु से कनिन्प्रत्यय करने पर सम्बोधन एकवचन में।

943. मनुष्यों के लिए हितकारी हो।

टिप्पणी

944. जिसे प्रयत्न पूर्वक दक्षिणा दी गई उसे।

945. नृशब्द से यत्प्रत्यय करने पर।

946. सब और से प्रकाशमान।

947. शुद्ध।

948. तृद्-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में।

949. चि-धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन में।

950. दुष्टों और चौर आदि को।

951. हृदयानि यह लौकिक रूप है।

2-पूषन्सूक्त में

952. कोड़ा।

953. व्यवहार करने वाला।

954. विशेष रूप से पीड़ित करो।

955. व्यवस्थापत्रों को।

956. किकिराणि यह लौकिक रूप है।

957. कृ-धातु से अच करने पर द्वितीयाबहुवचन में नपुंसकलिङ्ग का रुप है।

958. कुरु लौकिक रूप है।

959. ब्रह्म उपपद से चुद्-धातु से लुट् लकार में ङीप करने पर।

960. अश्-धातु से ष्ट्रन और टाप् करने पर।

961. गवाम् ओपशा यहाँ तत्पुरुष समास है।

962. सुपूर्वक म्ना-धातु से कप्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में।

963. आत्मनेपदि ईङ्-धातु से उत्तमपुरुष बहुवचन में।

964. सुख।

965. खाने के लिए।

966. कुरु लौकिक रूप है।

टिप्पणी

3-उषस्सूक्त में

967. वामदेव ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द और उषा देवता हैं।

968. ईर्-धातु से णिच् प्रत्यय, शतृ प्रत्यय, और ङीप् प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में ईरयन्ती यह रूप बनता है।

969. इष्-धातु से णिच् प्रत्यय और शतृ प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में इषण्यन् यह रूप बनता है।

970. ऋग्वेद में।

971. यहाँ पर भगवती उषादेवी को लक्ष्य करके प्रार्थना का विधान किया गया है।

972. विपूर्वक भा-धातु से शतृ प्रत्यय और ङीप् प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में विभातीम् यह रूप बनता है।

973. प्रथ्-धातु से लिट् लकार आत्मनेपद में प्रथमपुरुष एकवचन में पप्रथे यह रूप बनता है।

974. स्था-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में अस्थात् यह रूप बनता है।

975. आदि मन्त्र में प्रार्थना की गई है की सम्पूर्ण विश्व के द्वारा वरणीय उषा देवी तुम हमारे यज्ञ नियम व्रत आदि को लक्ष्य करके विचरण करती हो।

976. श्रि-धातु से लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में यह वैदिक रूप है।

॥ नौवां पाठ समाप्त ॥

10

वरुणसूक्त

प्रस्तावना

ईश्वर द्वारा प्रदत्त नि:श्वरभूत वेद अपौरुषेय और अनादि है। यही वेद मानव का सनातन दिव्यचक्षु है। ईश्वर भी वेद के आधार पर ही जगत् की सृष्टि करता है। संस्कृतसाहित्य में वेद ही सर्वोच्च स्थित सूर्य के समान है। भारत में धर्म व्यवस्था वेद पर ही आधारित है। वेद धर्मनिरूपण में स्वतन्त्रभाव से प्रमाण, स्मृत्यादि वेदमूलक ही हैं। अत एव श्रुति और स्मृति के विरोध में श्रुति ही बलवान है। न केवल धर्ममूलकता से ही वेद आदरणीय है, अपितु विश्व के सर्वप्राचीनग्रन्थ होने से भी। प्राचीन धर्म, समाज, व्यवहार जैसी चीजों की जानकारी के लिए श्रुति ही सक्षम है। ''विद्यन्ते धर्मादय: पुरुषार्था: यै: ते वेदा:'' इति। सायण ने तो ''अपौरुषेयं वाक्यं वेद:'' ऐसा भी कहा है। इष्टप्राप्ति और अनिष्टपरिहार के लिए अलौकिक उपाय जो बताता है वह वेद है। तत्र कारिका–

''प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता।।'' इति।

वेद चार है। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। वहां ऋग्वेद के देवताओं में वरुण का स्थान अतीव महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि सम्पूर्ण ऋग्वेद में द्वादशसूक्तियों से वरुण की स्तुति की गई है, और यदि की भी है इन्द्र को छोड़कर अन्यकोई देव वरुण से बढ़कर नहीं है। वरुणशब्द आवरणार्थक वृ–धातु से निष्पन्न है। आवरकरूप से ही वैदिकदेवों में वह महत्त्वपूर्ण है। ऋग्वेदीय सूक्त का शुन:शेप ऋषि, वरुण देवता, गायत्री छन्द है। यह सूक्त प्रथममण्डल का पच्चीसवां (25वां) सूक्त है। (ऋ.वे. म–1.25)।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे –

- वरुणसूक्त को जान पाने में;
- वरुण के स्वरूप को जान पाने में;
- वैदिक शब्दों को जान पाने में;
- लौकिक शब्दों को जान पाने में;
- वैदिक और लौकिक को जान पाने में;
- स्वयं भी मन्त्र व्याख्या कर पाने में;
- स्वयं भी मन्त्र का अन्वयादि भी करने में;
- मन्त्र में स्थित व्याकरण को जान पाने में।

11.1 मूलपाठ

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम्। मिनीमसि द्यविद्यवि॥1॥

मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः। मा हृणानस्य मन्यवे॥2॥

वि मृळीकाय ते मनो रथीरश्वं न संदितम्। गीर्भिर्वरुण सीमहि॥3॥

परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्यइष्टये। वयो न वसतीरुप॥4॥

कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे। मृळीकायोरुचक्षसम्॥5॥

तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः। धृतव्रताय दाशुषे॥6॥

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्। वेद नावः समुद्रियः॥7॥

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदा य उपजायते॥8॥

वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः। वेदा ये अध्यासते॥9॥

नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्या3ऽऽस्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः॥10॥

अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति। कृतानि या च कर्त्वा॥11॥

स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत्। प्र ण आयूंषि तारिषत्॥12॥

बिभ्रद्द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्तनिर्णिजम्। परि स्पशो नि षेदिरे॥13॥

न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम्। न देवमभिमातयः॥14॥

उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या। अस्माकमुदरेष्वा॥15॥

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु। इच्छन्तीरुरुचक्षसम्॥16॥

सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम्। होतेव क्षदसे प्रियम्॥17॥

दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि। एता जुषत मे गिरः॥18॥

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय। त्वामवस्युरा चके॥19॥

त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि। स यामनि प्रति श्रुधि॥20॥

उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत। अवाधमानि जीवसे॥21॥

1.1.1 व्याख्या

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम्।
मिनीमसि द्यविद्यवि॥1॥

पदपाठः- यत्। चित्। हि। ते। विशः। यथा। प्र। देव। वरुण। व्रतम्॥
मिनीमसि। द्यविऽद्यवि॥

अन्वय- वरुण देव! यथा विशः ते व्रतं यत् चित् हि द्यविद्यवि प्रमिनीमसी।

व्याख्या- हे वरुण देव आप जैसे लोक में राजा या मनुष्य के प्रजा या सन्तान आदि प्रतिदिन अपराध करते हैं, किन्ही कामों को नष्ट कर देते हैं, वह उन पर न्याययुक्त करुणा करता है वैसे ही हम लोग आपका जो सत्य आचरण आदि नियम है उन को कदाचित अज्ञान से छोड़ देते है उसका यथायोग्य न्याय और हमारे लिए करुणा करते है।।

सरलार्थः- हे वरुणदेव! संसार में प्रजा जैसे प्रमाद करती है, वैसे ही हम भी आपके नियमों का जो कुछ भी उल्लंघन करते है, हमारे द्वारा उन किये गये प्रमादों का परिमार्जन करके आप नियम में नियोजित करो।

व्याकरणविमर्श-

- विश- विश्-शब्द का प्रथमाबहुवचन में विश रूप बनता है।
- मिनीमसि- मीञ्-धातु से लट्लकार में उत्तमपुरुषबहुवचन में यह वैदिक रूप है।
- द्यविद्यवि- द्योशब्द के सप्तम्येकवचन में द्यवि रूप। द्यवि का दो बार करने पर द्यविद्यवि रूप होता है।

मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः।
मा हृणानस्य मन्यवे॥2॥

पदपाठः- मा। नः। वधाय। हत्नवे। जिहीळानस्य। रीरधः॥
मा। हृणानस्य। मन्यवे॥

अन्वय:- जिहीळानस्य हत्नवे वधाय न: मा रीरध:। हृणानस्य मन्यवे मा (रीरध:)।

व्याख्या- हे वरुण अज्ञान से अनादर करने वाले पुरुष के लिए वध करने और किसी पर आघात पहुंचाने के लिये हमें मत प्रेरित करे। और इसी प्रकार क्रोध के निमित्त स्वय लज्जा अनुभव करने वाले को दंड देने की लिए मत उकसावे।

सरलार्थ:- हे वरुणदेव! हिंसा करने वाले हिंसक शास्त्र के विषयों को हमे मत कहो, इसी प्रकार हमें पुन: क्रोध का पात्र मत बनाओ।

व्याकरणविमर्श:-

- राधा साधा संसिद्धौ।
- हृणानस - हृणीङ लज्जायाम् धातु से शानचपृषोदरादित्व से अभिमतरूपसिद्धि है।।
- हत्नवे- हत्नु का चतुर्थ्येकवचन में हत्नवे रूप होता है।
- जिहीळानस्य- हेडृ-धातु से कानच्प्रत्यय लिट् लकार द्वित्वादिकार्य करने पर जिहीडान ऐसा रूप होता है। जिहीडान इसका षष्ठी एकवचन में जिहीळानस्य वैदिक रूप है। लौकिक तो जिहीडानस्य ही रूप है।
- रीरधा:- राध-धातु से लङ् मूलक लेट्लकार मध्यमपुरुष एकवचन में रीरधा रूप है।
- हृणानस्य- हृ-धातु से शानच्प्रत्यय से निष्पन्न हृणान का षष्ठ्येकवचन में हृणानस्य रूप होता है।

वि मृळीकाय ते मनो रथीरश्वं न संदितम्।
गीर्भिर्वरुण सीमहि।।3।।

पदपाठ:- **वि। मृळीकाय। ते। मन:। रथी:। अश्वम्। न। सम्ऽदितम्।**
गी:ऽभि:। वरुण। सीमहि।।

अन्वय:- वरुण! रथी: अश्वं संदितं न ते मन: मृळीकाय गीर्भि: विसीमहि।

व्याख्या- हे वरुण परमेश्वर! राजन! (रथी:) रथ का स्वामी (संदीतम) बल से खंडित थके हुए हारे हुए (अश्वं न:) घोड़े को जिस प्रकार (गीर्भि:)नाना प्रकार की मन को बाधने वाली पुचकारने वाली वाणियों से उसे अपने वश में करता है उसी प्रकार हम भी (मृळइकाय) सुख प्राप्त करने के लिए (ते) तेरे (मन:) हृदय या ज्ञान को (गीर्भि:) स्तुति द्वारा बांधते है।।

सरलार्थ:- हे वरुणदेव! जैसे रथस्वामी अथवा रथ का चालक, वह दूरगमन चाहता है इस प्रकार के तृणों को अश्व को देकर प्रसन्न करता है, वैसे ही हम भी आपका मन से सुखप्राप्त करने के लिए नाना प्रकार वाली स्तुति या वाणियों से प्रसन्न करते है।

टिप्पणी

व्याकरणविमर्श-

- दो अवखण्डने। निष्ठा इति क्त।
- सीमहि। षिवु तन्तुसंताने। आत्मनेपदम्। बहुलं छन्दसि से विकरण प्रत्यय का लुक्। षिञ् बन्धाने इससे भी विकरण का लुक्। दीर्घश्छान्दसः॥
- रथीः- रथशब्द से मतुप अर्थ में वैदिक में ई प्रत्यय करने पर रथीः रूप बनेगा।
- संदितम्- सम्पूर्वक दो-धातु से क्तप्रत्यय और इकारादेश होने पर संदितम् रूप होता है।
- विसीमहि- विपूर्वक षिञ्-धातु से या षिवु-धातु से लट्लकार उत्तमपुरुषबहुवचन में विसीमहि ये रूप बनता है।

परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्यइष्टये।
वयो न वसतीरुप॥4॥

पदपाठः- **परा। हि। मे। विऽमन्यवः। पतन्ति। वस्यःऽइष्टये।**
वयः। न। वसतीः। उप॥

अन्वयः- (हे वरुण) मे विमन्यवः वस्यः इष्टये हि पराप तन्ति। वयः न वसतीः उप।

व्याख्या- हे वरुण (मे) मेरे शुनःशेप (विमन्यवः) क्रोधरहित बुद्धि को (वस्यइष्टये) सबसे श्रेष्ठ वसु सबको वास देने वाले की शरण प्राप्त करने के लिए (परापतन्ति) तेरे समीप तक उड़ती-उड़ती तुझ तक पहुंचती है अथवा (वायः वसतीः न) पक्षी जिस प्रकार अपने स्थानों को छोड़कर अपने आहार को प्राप्त करने के लिए चले जाते है इसी प्रकार (विमन्यवः) विशेष ज्ञानवान पुरुष अत्यधिक धन प्राप्ति के लिए (परा एतन्ति हि) दूर देशों तक जावें॥

सरलार्थः- हे वरुणदेव! मैं क्रोधसहित बुद्धिसमूह धनसमूह से युक्त जीवन को प्राप्त करने के लिए आपकी तरफ दोड़ता हुं, जिस प्रकार से पक्षी अपने निवासस्थान से दाना लेने के लिए दुसरी जगह जाते है।

व्याकरणविमर्शः-

- विमन्यवः- विगतः मन्युः याभ्यः ताः विमन्यवः इति बहुव्रीहिसमास।
- इष्टये- इष्-धातोः क्तिन्प्रत्यय से निष्पन्नइष्टिशब्द चतुर्थ्येकवचन में इष्टये रूप।
- वसतीः- वस्-धातु से अतिप्रत्यय से निष्पन्न वसति का द्वितीयाबहुवचन में वसतीः इति रूप।

कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे।
मृळीकायोरुचक्षसम्॥5॥

पदपाठ:- **कदा। क्षत्रऽश्रियम्। नरम्। आ। वरुणम्। करामहे॥**
मृळीकाय। उरुऽचक्षसम्॥

अन्वय:- क्षत्रश्रियम् उरुचक्षसं नरं वरुणं मृळीकाय कदा आ करामहे।

व्याख्या- अपने सच्चे सुख को प्राप्त करने के लिए हम कब अति बलवान समस्त प्राणियों के नेता एवं सर्वप्रष्टा वरूण का आराधन कर्म में साक्षात्कार कर सकेंगे?

सरलार्थ:- शासकीय शक्ति से सुशोभित, विशाल दृष्टिवान त्रिकालदर्शी, सभी को ले जाने वाला वरुणदेव हमें कब अपने समीप लाएगा।

व्याकरणविमर्श-

- क्षत्रश्रियम्- क्षत्राणि श्रयति अथवा क्षत्रेण श्री: यस्य तम् क्षत्रश्रियम्।
- नरम्- नृ-धातु, ऋदोरप् सूत्र से अप्प्रत्यय होने पर नरम् रूप।
- आ करामहे- आपूर्वकात् कृ-धातो: लुङमूलक लेट्लकार में उत्तमपुरुषबहुवचन में आकरामहे इति रूप।
- उरुचक्षसम्- उरु चक्ष: यस्य तम् उरुचक्षसम् इति बहुव्रीहिसमास:।

तदित्समानमांशाते वेनन्ता न प्र युच्छत:।
धृतव्रताय दाशुषे॥6॥

पदपाठ:- **तत्। इत्। समानम्। आशाते इति। वेनन्ता। न। प्र। युच्छत:॥**
धृतऽव्रताय। दाशुषे॥

अन्वय:- वेनन्ता समानं तत् इत् आशाते। धृतव्रताय दाशुषे न प्रयुच्छत:।

व्याख्या- जिसने वरूणाराधन कर्म का सम्पादन किया है तथा हवि प्रदान की है ऐसे यजमान को चाहने वाले मित्रावरूण देव हम ऋत्विणों से दिये हुये साधारण हवि का भक्षण करते हैं।

सरलार्थ:- शुभकामनां करते हुए और व्रतधारी भी हवि प्रदान करने वाले मित्रा और वरुण उसकी हवि समानतया स्वीकार करते है। वे यजमानों के कल्याण में कभी प्रमाद नहीं करते है।

व्याकरणविमर्श:-

- आत्मनेपदि अंश्-धातु लिट्लकार के प्रथमपुरुषद्विवचन में आशाते इति रूप।
- वेनन्ता- वेन्-धातु से शतृप्रत्यय प्रथमाद्विवचन में वेनन्तौ ये वैदिक रूप होता है।
- दाशुषे- दाशृ-धातु से क्वसुप्रत्यय चतुर्थ्येकवचन में दाशुषे रूप।
- धृतव्रताय- धृतं व्रतं येन तस्मै धृतव्रताय इति बहुव्रीहिसमास।

टिप्पणी

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्।
वेद नावः समुदियः॥7॥

पदपाठः- **वेद। यः। वीनाम्। पदम्। अन्तरिक्षेण। पतताम्॥**
वेद। नावः। समुद्रियः॥

अन्वयः- यः अन्तरिक्षेण पततं वीनां पदं वेद। समुद्रियः नावः वेद।

व्याख्या- अन्तरिक्ष से गिरते हुए, आकाशमार्ग से जाते हुए विमान और पक्षियों के मार्ग को जो जानता है वह वरुण है। तथा (समुद्रियः) समुद्र में अवस्थितवरुण(नावः) जल में चलने वाले नाव आदि के रास्ते जो जनता है वह हमारे बन्धन को छुड़ाए।। वेद। विद ज्ञाने।

सरलार्थः-जो वरुणदेव आकाशमार्ग से उड्डीयमान पक्षियों के मार्ग को जानता है तथा समुद्रमार्ग से गम्यमान नौकाओ का मार्ग जानता है, वह वरुणदेव हमें बन्धन से मुक्त करे।

व्याकरणविमर्शः-

- पतताम्- पत् धातु के शतृ प्रत्यय होने पर।
- समुद्रियः- समुद्र में भव इस अर्थ में हा प्रत्यय में इयंदिश होने पर समुद्रियः यह रूप होता है।
- वेद- विद्-ज्ञाने धातु लिट् लकार, प्रथमपुरुषैकवचन में वेद रूप।

पाठगत प्रश्न

977. वरुणसूक्त के कौन ऋषि? कौनसा छन्द? कौन देवता?
978. मिनीमसि इति पदस्य व्युत्पत्ति कैसे हुई?
979. हत्नवे इस पद की व्युत्पत्ति क्या है?
980. वेनन्तापद की व्युत्पत्ति बताएं?
981. कैसों को वरुणदेव अपने समीप ले जाते हैं?
982. हन्-धातु का क्या अर्थ होता है?
983. वसतीः इस पद की निष्पत्ति कहां से है?
984. समुद्रियः इस पद की निष्पत्ति कैसे हुई?
985. विद्धातु का क्या अर्थ है?
986. दाशुषे यहां षत्व किस सूत्र से हुआ?

1.1.2 व्याख्या

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः।
वेदा य उपजायते॥8॥

पदपाठः- **वेद। मासः। धृतऽव्रतः। द्वादश। प्रजाऽवतः॥**
वेद। यः। उपऽजायते॥

अन्वयः- धृतव्रतः प्रजावतः द्वादश मासः वेद। यः उपजायते वेद।

व्याख्या- (धृतव्रतः) स्वीकृत किया है कर्मविशेष को जिसने यथोक्तमहिमोपेतो वरुणः प्रजावतः तदा तदोत्पद्यमानप्रजायुक्तान् द्वादश मासः चौत्रादीन् फाल्गुनान्तान् वेद जानाति। यः त्रयोदशोऽधिकमासः उपजायते संवत्सरसमीपे स्वयमेवोत्पद्यते तमपि वेद। वाक्यशेषः पूर्ववत्॥ मासः। द्वादश। द्वौ च दश च इति द्वन्द्वः।

सरलार्थ- व्रतधरी वरुण प्रजायुक्त 12 माहों को जानता है और जो वर्ष से अधिक मास है उनको भी जानता है।

व्याकरणविमर्श-

- प्रजावतः- प्रजाशब्द का मतुप्रत्यय, षष्ठ्येकवचन में प्रजावतः ये रूप।
- उपजायते- उपपूर्वक जन्-धतु से लट्लकार प्रथमपुरुषैकवचन में उपजायते रूप।

वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः।
वेदा ये अध्यासते॥9॥

पदपाठः- **वेद। वातस्य। वर्तनिम्। उरोः। ऋष्वस्य। बृहतः॥**
वेद। ये। अधिऽआसते॥

अन्वयः- उरो ऋष्वस्य बृहतः वातस्य वर्तनिं वेद। ये अधि आसते वेद।

व्याख्या- उरोः विस्तीर्णस्य ऋष्वस्य दर्शनीयस्य बृहतः गुणैरधिकस्य वातस्य वायोः वर्तनि मार्गं वेद वरुणो जानाति। ये देवाः उपरि तिष्ठन्ति तानपि वेद जानाति॥

सरलार्थः- वरुणदेव विस्तृत, व्यापक और दर्शनीय तथा गुणयुक्त महान वायु के अर्थात् अन्तरिक्ष के मार्ग को जानता है और भे जो वहां निवास करता है, उसको भी जानता है।

व्याकरणविमर्श-

- बृहतः- बृहत्-शब्द का षष्ठयेकवचन में बृहतः रूप है।
- वर्तनिम्- वृत्-धातु से अनिप्रत्यय में वर्तनिम् रूप है।
- ऋष्वस्य- ऋषी-धातु से मतुपअर्थ में क्वन्प्रत्यय षष्ठ्येकवचन में ऋष्वस्य रूप है।

- अध्यासते– आत्मनेपदि आस्–धातु से लट्लकारप्रथमपुरुषबहुवचन में अध्यासते रूप है।

नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्या3स्वा।
साम्राज्याय सुक्रतुः।।10।।

पदपाठः– **नि। ससाद। धृतव्रतः। वरुणः। पस्त्यासु। आ।।**
साम्ऽराज्याय। सुऽक्रतुः।।

अन्वयः– धृतव्रतः सुक्रतुः वरुणः आ साम्राज्याय प्रत्स्यासु निषसाद।

व्याख्या– धृतव्रतः पूर्वोक्तः वरुणः पस्त्यासु देवीषु प्रजासु आ नि षसाद आगत्य निषण्णवान्। किमर्थम्। प्रजानां साम्राज्यसिद्ध्यर्थं सुक्रतुः शोभनकर्मा।नि षसाद। सदिरप्रतेः (पा. सू. 8.3.66) इति षत्वम्। साम्राज्याय। सम्राजो भावः साम्राज्यम्। गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः (पा. सू. 5.1.124) इति ष्यञ्।

सरलार्थः– व्रतधारी तथा शोभितकर्मकारी वरुण सब और से शासन के लिए अपने जलगृह में उपविष्ट है।

व्याकरणविमर्श–

- निषसाद– निपूर्वक सद्–धातु से लिट्लकार में प्रथमपुरुषैकवचन में निषसाद रूप।
- सुक्रतुः– शोभनः क्रतुः यस्य सः सुक्रतुः इति बहुव्रीहिसमासः। सुपूर्वकात् कृ–धातु से अतुप्रत्यय सुक्रतुः रूप।
- साम्राज्याय– सम्राजो भावः। सम्राज्शब्द के ष्यञ्प्रत्यय, चतुर्थ्येकवचन में साम्राज्याय रूप।

अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति।
कृतानि या च कर्त्वा।।11।।

पदपाठः– **अतः। विश्वानि। अद्भुता। चिकित्वान्। अभि। पश्यति।।**
कृतानि। या। च। कर्त्वा।।

अन्वयः– अतः चिकित्वान् विश्वानि या कृतानि च कर्त्वा अद्भुता अभिपश्यति।

व्याख्या– अतः अस्मात् वरुणात् विश्वानि अद्भुता सर्वाण्याश्चर्याणि चिकित्वान् प्रज्ञावान् अभि पश्यति सर्वतोऽवलयति या कृतानि यान्याश्चर्याणि पूर्वं वरुणेन सम्पादितानि। चकारात् अन्यानि यान्याश्चर्याणि कर्त्वा इतः परं कर्तव्यानि तानि सर्वाण्यभिपश्यतीति पूर्वत्रान्वयः।

सरलार्थ–उसी स्थान प्रज्ञावान् वरुणदेवसमस्त कर्म तथा किये जाने वाले कर्म को सब और से देखता है।

व्याकरणविमर्श–

- चिकित्वान्– चिकित्वस्शब्द के प्रथमैकवचन में चिकित्वान् रूप।

टिप्पणी

- विश्वानि- विश्वशब्द के नपुंसकलिङ्ग, द्वितीयाबहुवचन में विश्वानि रूप।
- कर्त्वा- कृ-धातु से त्वन्प्रत्ययकर्त्वा रूप।
- अभिपश्यति- अभिपूर्वक दृश्-धातु से लट्लकार में प्रथमपुरुषैकवचन में अभिपश्यति रूप।

स नो॑ वि॒श्वाहा॑ सु॒क्रतु॑रादि॒त्यः सु॒पथा॑ करत्।
प्र ण॒ आयूं॑षि तारिषत्॥12॥

पदपाठः- **सः। नः। वि॒श्वाहा॑। सु॒ऽक्रतुः॑। आ॒दि॒त्यः। सु॒ऽपथा॑। क॒र॒त्॥**
प्र। नः। आयूं॑षि। ता॒रि॒ष॒त्॥

अन्वयः- सुक्रतुः स आदित्यः नः विश्वाहा सुपथा करत्। नः आयूंषि प्रतारिषत्।

व्याख्या- सुक्रतुः शोभनप्रज्ञः सः आदित्यः वरुणः विश्वाहा सर्वेष्वहःसु नः अस्मान् सुपथा शोभनमार्गेण सहितान् करत् करोतु। किं च नः अस्माकम् आयूंषि प्र तारिषत् प्रवर्धायतु।।

सुपथा।

सरलार्थः- शोभितकर्मकारी वह अदितिपुत्र वरुण हमें सदा ही उत्तममार्ग में संयुक्त करते हुए हमारी आयु बढ़ाये।

व्याकरणविमर्श-

- आदित्यः- अदितिशब्द से ण्यप्रत्यय प्रथमैकवचन में आदित्यः रूप।
- सुपथा- शोभनश्चासौ पन्थाः सुपन्थाः तेन सुपथा।
- करत्- कृ-धातु से लुङमूलक लोट्लकार में प्रथमपुरुषैकवचन में करत् इति रूपम्।
- प्रतारिषत्- प्रपूर्वकतृ-धातु से णिच्प्रत्ययसे लुङमूलक लेट्लकार, प्रथमपुरुषैकवचन में प्रतारिषत् रूप।

बिभ्र॑द्द्रा॒पिं हि॑र॒ण्ययं॒ वरु॑णो वस्त नि॒र्णिज॑म्।
परि॑ स्पशो॒ नि षे॑दिरे॥13॥

पदपाठः- **बिभ्र॑त्। द्रा॒पिम्। हि॒र॒ण्यय॑म्। वरु॑णः। व॒स्त॒। निः॒ऽनिज॑म्॥**
परि॑। स्पशः॑। नि। से॒दि॒रे॒॥

अन्वय- हिरण्यं द्रापिं बिभ्रत् वरुणः निर्णिजम् वस्त। स्पशः परि निषेदिरे।

व्याख्या- हिरण्यं- सुवर्णमय, द्रापिं -कवच को, बिभ्रत् -धारण करने वाला वरुण, निर्णिज पुष्ट स्वशरीर को – वस्त- आच्छादित करता है। स्पशः- हिरण्यस्पर्शी रश्मियों को चारों ओर फैलाता है।

सरलार्थः- स्वर्णकवचधारी वह वरुणदेव अपने पुष्ट शरीर को ढकता है। उसकी सुंदर स्पर्शी किरणसमूहको सर्वत्रा फैलता है।

व्याकरणविमर्शः-

- बिभ्रत्- भृ-धात से शतृप्रत्य से निष्पन्न बिभ्रत्-शब्द का प्रथमैकवचन में बिभ्रन् ये वैदिक रूप है।
- द्रापिम्- द्रापिशब्द का द्वितीयैकवचन में द्रापिम् रूप।
- निर्णिजम्- निर्पूर्वक णिर्जि-धातु से कप्रत्यय, निर्णिजशब्द का द्वितीयैकवचन में निर्णिजम् रूप।
- निषेदिरे- निपूर्वक सद्-धातु ससे लिट्लकार में आत्मनेपद प्रथमपुरुषबहुवचन में निषेदिरे रूप।

न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम्।
न देवमभिमातयः॥14॥

पदपाठः- **न। यम्। दिप्सन्ति। दिप्सवः। न। द्रुह्वाणः।**
जनानाम्। न। देवम्। अभिऽमातयः॥

अन्वयः- दिप्सवः यं देवं न दिप्सन्ति, जनानां द्रुहाणः न, अभिमातयः न।

व्याख्या-यम्- जिस, देवम्- दानवीर परमेश्वर और विजीगीशु राजा को, दिप्सवः- हिंसाशील पुरुष, न दिप्सन्ति – मारना भी नहीं चाहते है और, जनान द्रुह्वाणः- जंतु और सब मनुष्यों के द्रोह्कारी लोग भी जिसका द्रोह नहीं कर पाते और जिसको, अभिमातयः- अभिमानी शत्रु भी परास्त नहीं क्र सकते है वही परमेश्वर व राजा न्यायकारी पद पर स्थित वरुण है॥

सरलार्थ- हिंसक लोग भी वरुणदेव को नहीं मार सकते है। सामान्यमनुष्यों में द्रोहिव्यक्ति भी जिससे द्रोह नहीं क्र सकता है और पापी भी जिसकी हानि नहीं कर सकते है वह वरुण है।

व्याकरणविमर्श-

- दिप्सन्ति- दम्भ्-धातु से लट्लकार में प्रथमपुरुषबहुवचन में दिप्सन्ति रूप।
- द्रुह्वाणः- द्रुह्-धातु से क्वनिप्प्रत्यय से निष्पन्न द्रुह्नशब्द का प्रथमाबहुवचन में द्रुह्वाणः रूप।
- अभिमातयः- मीञ्-धातु से अभिभूय मिनाति हिनस्ति इस अर्थ में क्तिन्प्रत्यय से अभिमाति रूप होता है। अभिमातिशब्द का प्रथमाबहुवचन में अभिमातयः रूप है।

पाठगत प्रश्न

987. व्रतधारी वरुणकिसप्रकार के मासों को जानता है?

988. उपजायते इस पद के निष्पत्ति कहाँ से हुई?

989. वरुणदेव: किसके मार्ग को जानते है?

990. द्रुह्वाण: इस पद के निष्पत्ति कहाँ से है?

991. निषसाद यहाँ षत्व किस सूत्र से है?

992. निर्णिजम् इस पद की निष्पत्ति कैसे हुई?

993. द्राधातु का क्या अर्थ है?

994. करत् इस पद की निष्पत्ति कैसे हुई?।

995. कर्त्वा इति पद की निष्पत्ति कैसे हुई?

996. कितधातु का क्या अर्थ है?

10.1.3 व्याख्या

उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या।
अस्माकमुदरेष्वा॥15॥

पदपाठ:- **उत। य:। मानुषेषु। आ। यश:। चक्रे। असामि।**
आ। अस्माकम्। उदरेषु। आ॥

अन्वय:- उत य: मानुषेषु यश: आचक्रे, असामि आ, अस्माकम् उदरेषु आ।

व्याख्या- उत-और, य: – जो परमेश्वर सूर्य और मेघ, मानुषेषु-समस्त मननशील पुरुषों के निमित्त, असामि-पूर्णरूप से, यज्ञ:- यज्ञ और अन्न, आ चक्रे-प्रदान करता है और, अस्माकम् – हमारे, उदारेषु – पेटों को भरने के लिए, यश:- अन्न, आ चक्रे- सर्वत्र पैदा करता है वह वरुण है।

सरलार्थ:- जो वरुणदेव ने मनुष्यों के लिए अन्न उत्पादित ही नहीं बल्कि अन्न को सम्पूर्णतया उत्पादित किया तथा हमारे उदर में अन्न को सभी प्रकार से पाचन के लिए शक्ति दे।

व्याकरणविमर्श:-

- मानुषेषु- मनोरपत्यम् इस अर्थ में मनोर्जातावञ्यतौ पुक् इस सूत्र से मनुशब्द से

टिप्पणी

अञ्प्रत्ययऔर षुगागम से मानुषशब्दनिष्पन्न है। मानुषशब्द के सप्तमीबहुवचन में मानुषेषु रूप।

- चक्रे- कृ-धातु से लिट्लकार में प्रथमपुरुषैकवचन में चक्रे रूप।

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु।
इच्छन्तीरुरुचक्षसम्।।16।।

पदपाठः- **परा। मे। यन्ति। धीतयः। गावः। न। गव्युतीः। अनु।।**
इच्छन्तीः। उरुऽचक्षसम्।।

अन्वयः- उरुचक्षसम् इच्छन्तीः मे धीतयः गव्यूतीः अनु गावः न परायन्ति।

व्याख्या- उरुचक्षसं बहुभिर्द्रष्टव्यं वरुणम् इच्छन्तीः मे धीतयः शुनःशेपस्य बुद्धयः परा यन्ति पराङ्मुखा निवृत्तिरहिता गच्छन्ति। तत्र दृष्टान्तः। गावो न। यथा गावः गव्यूतीरनु गोष्ठानि अनुलक्ष्य गच्छन्ति तद्वत्।।

सरलार्थः-सभी के द्वारा दर्शनयोग्यतथा व्यापकदृष्टि वाले वरुण के दर्शन के लिए कामना रखने वाला मेरा बुद्धिसमूह या चेष्टा आदि भावनासमूह उसकी ओर जाता है, जिस प्रकार सायंकाल में गाये उनके लक्ष्य स्थान गोशाला की और दोड़कर जाती है।

व्याकरणविमर्श-

- धीतयः- ध्या-धातु से क्तिन्प्रत्यय यकार को वैदिक सम्प्रसारण करने पर इकार आकार के पूर्वरूप में और इकार के दीर्घ होने पर निष्पन्न धीतिशब्द का प्रथमाबहुवचन में धीतयः रूप होता है।
- गव्यूतीः- गोपूर्वपदयू-धातु से क्तिन्प्रत्यय, गोर्यूतौ छन्दसि सूत्र से ओकार के स्थान में अवादेश निष्पन्नगव्युतिशब्द के प्रथमाबहुवचन में गव्यूतीः रूप बनता है।
- इच्छन्तीः- इष्-धातु में शतृप्रत्यय और ङीप्प्रत्यय होने पर प्रथमाबहुवचन में इच्छन्तीः रूप बनता है।
- उरुचक्षसम्- उरुभिः चक्षसं यस्य तम् उरुचक्षसम् इति बहुव्रीहिसमास।

सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम्।
होतेव क्षदसे प्रियम्।।17।।

पदपाठः- **सम्। नु। वोचावहै। पुनः। यतः। मे। मधु। आऽभृतम्।।**
होताऽइव। क्षदसे। प्रियम्।।

अन्वयः- यतः मे मधु आभृतं पुनः नु संवोचावहै। होता इव प्रियं क्षदसे।

व्याख्या- यतः- क्योकि, मे- मुझे, मधु- अतिप्रिय ज्ञान रस विद्वानों से प्राप्त हुआ है और हे शिष्य! तू उस, प्रियम्- प्रिय त्रिप्तिकर ज्ञानराशि को, होता इव – यज्ञ कर्ता

विद्वान के समान ही, क्षदसे- अपने हृदय के अज्ञान के नाश के लिए करता है इसलिए हम दोनों, सं वोचावाहे – भली प्रकार परस्पर उस ज्ञान को वचन – प्रतिवचन से उपदेश दे और ग्रहण करे।।

सरलार्थः-क्योंकि इस यज्ञ में मेरे द्वारा मधुरहवि आपके लिए सम्पादित है। जिससे पुनः हम दोनों परस्पर प्रेमभावना से उपदेश करे। आप होता के सामान उस प्रियहवि का भक्षण करते है।

व्याकरणविमर्शः-

- आभृतम्- आपूर्वक भृ-धातु से क्तप्रत्यय में नपुंसकमें आभृतम् रूप।
- वोचावहै- ब्रू-धातु से लुङलकार उत्तमपुरुषद्विवचन में वोचावहै रूप।
- यतः- यच्छब्द का तसिल्प्रत्यय होने पर तकार को अकारादेश और पररूप होने पर यतःरूप बनता है।
- होता- हू-धातु से तृच्प्रत्यय से निष्पन्न होतृशब्द का प्रथमैकवचन में होता रूप है।
- प्रियम्- प्री-धातु से कप्रत्यय ईकार के स्थान पर इयङादेश, नपुंसक में प्रियम् रूप।
- क्षदसे- क्षद्-धातु से आत्मनेपद में लट्लकार में मध्यमपुरुषैकवचन क्षदसे रूप होता है।

दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि।
एता जुषत मे गिरः॥18॥

पदपाठः- **दर्शम्। नु। विश्वऽदर्शतम्। दर्शम्। रथम्। अधि।**
क्षमि। एताः। जुषत। मे। गिरः॥

अन्वयः- विश्वदर्शतं नु दर्शम् अधि क्षमि रथं दर्शम्। एताः मे गिरः जुषत।

व्याख्या- विश्वदर्शतं सर्वैर्दर्शनीयम् अस्मदनुग्रहार्थमत्राविर्भूतं वरुणं दर्शं नु अहं दृष्टवान् खलु। क्षमि क्षमायां भूमौ रथं वरुणसंबन्धिनम् अधि दर्शम् आधिक्येन दृष्टवान् अस्मि। एताः उच्यमानाः मे गिरः मदीयाः स्तुतीः जुषत वरुणः सेवितवान्।।

दर्शम्। दृशेः इरितो वा (पा. सू. 3.1.57) इति च्लेः अङादेशः। ऋदृशोऽङि गुणः (पा. सू. 7.4.16) इति गुणः। विश्वदर्शम्। दृशेः भृमृदृशि... (उ. सू. 3.390) इत्यादिना अवच्प्रत्ययान्तो दर्शतशब्दः। विश्वं दर्शनीयमस्येति बहुव्रीहिः। बहुव्रीहौ विश्वं संज्ञायाम् इति पूर्वपदान्तोदात्तत्वम्। क्षमि।

सरलार्थः- सम्पूर्णविश्व द्वारा दर्शन के योग्य उस वरुण को निश्चय से मैने देखा है। भूमि पर उस वरुण का रथ मैंने देखा। उस वरुणदेव नेमेरी ये स्तुतिस्वीकार की।

टिप्पणी

व्याकरणविमर्शः-

- दर्शम्- दृश्-धातु से लुङमूलक लेट्लकार में उत्तमपुरुषैकवचन में दर्शम् रूप।
- विश्वदर्शतम्- विश्वपूर्वपद दृश्-धातु से अतच्प्रत्यय, नपुंसक में विश्वदर्शतम् रूप होता है।
- जुषत- जुष्-धातु से लङलकार में प्रथमपुरुषैकवचन में जुषत रूप है।

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय।
त्वामवस्युरा चके॥19॥

पदपाठः- **इमम्। मे। वरुण। श्रुधि। हवम्। अद्य। च। मृळय।**
त्वाम्। अवस्युः। आ। चके॥

अन्वयः- वरुण! मे इमं हवं श्रुधि, अद्य च मृळय। अवस्युः त्वाम् आचक्रे।

व्याख्या- वरुणप्रघासेषु इमं मे वरुण इति वारुणस्य हविषः अनुवाक्या। पञ्चम्यां पौर्णमास्याम् इति खण्डे सूत्रितम्- इमं मे वरुण श्रुधि तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानः (आश्व. श्रौ. 2.17) इति॥

हे वरुण मे- मेरा, इमं-ये, हवम्- आह्वान को, श्रुधि-सुनो। च – और, अद्य- इस दिन में ही, मृळय-हमे सुख दे। अवस्युः- रक्षण का इच्छुक, मै, त्वां-वरुण के सम्मुख, चक्रे-प्रार्थना करता हूँ या स्तुति करता हूँ॥

सरलार्थ- हे वरुणदेव! मेरा ये आह्वानसुनो और मुझे सुखी करो। मैं संरक्षण का अभिलाषी होकर आपका आह्वान करता हूँ।

व्याकरणविमर्श-

- श्रुधि- श्रु-धातु से लोट्लकार, मध्यमपुरुषैकवचन में वैदिकरूप है ये।
- हवम्- ह्वे-धातु से अप्प्रत्यय, वकार का सम्प्रसारण, सन्धिकार्य और अवादेश करने पर नपुंसक में हवम् रूप।
- मृळय- मृळ्-धातु से लोट्लकार मध्यमपुरुषैकवचन में मृळय रूप।
- अवस्युः- अवस्-शब्द से क्यच्प्रत्यय और उप्रत्यय करने पर अवस्युः रूप बनता है।
- चके- कै-धातु से लिट्लकार, उत्तमपुरुषैकवचन में चके रूप।

त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि।
स यामनि प्रति श्रुधि॥20॥

पदपाठः- **त्वम्। विश्वस्य। मेधिर। दिवः। च। ग्मः। च। राजसि।**
सः। यामनि। प्रति। श्रुधि॥

अन्वयः- मेधिर। त्वं दिवः च ग्मः च विश्वस्य राजसि। सः यामनि प्रतिश्रुधि।

व्याख्या- हे मेधिर-मेधावि वरुण, त्वं- आप दिवश्च- द्युलोक से, ग्मश्च- भूलोक के और सम्पूर्ण जगत के मध्य भाग में, राजसि- दीप्त होते है। सः तादृशः त्वं यामनि क्षेमप्रापणे अस्मदीये प्रति श्रुधि प्रतिश्रवणम् आज्ञापनं कुरु। रक्षिष्यामीति प्रत्युत्तरं देहीत्यर्थः।।

सरलार्थः- हे मेधावी वरुणदेव! आप द्युलोक से पृथिवीलोक तक सम्पूर्ण जगत् के मध्यभाग में प्रकाशित होते है। इसीप्रकार वरुणदेवता आप हमारे मार्ग अर्थात् जीवनरूपयात्रा के मार्ग में वचन दो कि आप मेरी रक्षा करेंगे।

व्याकरणविमर्श-

- मेधिर- मेधशब्द में इरच्प्रत्यय होने से मेधिर रूप।
- दिवः- दिव्-धातु से क्विप्प्रत्यय से निष्पन्न दिव्शब्द का षष्ठ्येकवचन में दिवः रूप।
- राजसि- राज्-धातु से लट्लकार, मध्यमपुरुषैकवचन में राजसि रूप।
- यामनि- या-धातु से मनिन्प्रत्यय, सप्तम्येकवचन में यामनि रूप.

उदु॑त्त॒मं मु॑मु॒ग्धि नो॒ वि पाशं॑ मध्य॒मं चृ॑त।
अवा॑ध॒मानि॑ जी॒वसे॑।।21।।

पदपाठः- **उत्। उ॒त्ऽत॒मम्। मु॒मु॒ग्धि॒। नः॒। वि। पाशं॑म्। म॒ध्य॒मम्। चृ॒त।।**
अव॑। अ॒ध॒मानि॑। जी॒वसे॑।।

अन्वयः- नः उत्तमं पाशम् उत् मुमुग्धि, मध्यमं विचृत, जीवसे अधमानि अव।

व्याख्या- नः अस्माकम् उत्तमं शिरोगतं पाशम् उत् मुमुग्धि उत्कृष्य मोचय। मध्ययम् उदरगतं पाशं वि चृत वियुज्य नाशय। जीवसे जीवितुम् अधमानि मदीयान् पादगतान् पाशान् अव चृत अवकृष्य नाशय। उत्तमम्। मुमुग्धि। मुच्लृ मोक्षणे। बहुलं छन्दसि इति विकरणस्य श्लुः। द्विर्भावः। हलादिशेषः। हुझल्भ्यो हेर्धिः (पा. सू. 6.4.101) इति हेर्धिरादेशः। चृत। चृती हिंसाग्रन्थनयोः। लोटो हिः। तुदादिभ्यः शः, अतो हेः इति हेर्लुक्। जीवसे। जीव प्राणधारणे।

सरलार्थः- हे वरुणदेव! आप हमारे ऊपर जो बंधन है उनको हटाकर नाश कर दो। इन बीजों के बन्धन को पृथक्तया निकालकर नाश करो और हमारे जीवन के लिए निम्न बन्धन को भी हटाकर नाशकर दो।

व्याकरणविमर्श-

- उत्तमम्- उत्-धातु से तमप्रत्यय, द्वितीयैकवचन में उत्तमम् रूप।
- मुमुग्धि- मुच्-धातु से लिट्मूलक लोट्लकार, मध्यमपुरुषैकवचन में मुमुग्धि रूप।
- पाशम्- पश्-धातु से घञ्प्रत्ययसे निष्पन्नपाशशब्द का द्वितीयैकवचन में पाशम् रूप।

टिप्पणी

- चृत- चृत्-धातु से लोट्लकार मध्यमपुरुषैकवचन में चृत रूप।
- जीवसे- जीव-धातु से तुमुन्प्रत्यय के अर्थ में वैदिक असेप्रत्यय से जीवसे रूप।

पाठगत प्रश्न

997. वरुण किसको शक्ति देता है?
998. मानुषशब्द कैसे बना?
999. इच्छती: यहां छत्व किस सूत्र से हुआ?
1000. होता पद की निष्पत्ति कैसे हुई?
1001. मुमुग्धि पद की निष्पत्ति किससे हुई?
1002. अवस्यु: पद की निष्पत्ति कहां से हुई?
1003. हि को धि आदेश किस सूत्र से हुआ?
1004. चृतीधातु का क्या अर्थ है?
1005. गव्यूती: पद की निष्पत्ति कहां से हुई?
1006. मेधिर पद की निष्पत्ति कहां से हुई?

10.2 वरुणसूक्तसार

ऋग्वेद के प्रथममण्डल के पञ्चविंशं (25वें) सूक्त को वरुणसूक्त कहते है। यहाँ कुल 11 मन्त्र हैं। शुन:शेप: ऋषि इस सूक्त के द्रष्टा है। वरुणही देवता है। छन्द गायत्री है। इस सूक्त में जल का देवता वरुण के प्रति मानवों की प्रार्थनाओ का वर्णन है, न केवल प्रार्थना अपितु यहाँ विविधप्रकार से वरुणदेवता के लिए प्रशंसा भी है। यथा- अपराध करने पर बुद्धि से क्षमा प्रार्थना करते है, उसके बाद स्वयं की इच्छाओं धनलोभादियों को अपराध स्वीकार किया गया है और फिर वरुणदेवता को शक्तिवर्णन से और स्तुतिमाध्यम से प्रसन्न करते है। इसप्रकार यहाँ क्रम से वरुणदेवता की सन्तोषपूर्वक प्रार्थना की जाती है।

प्रथम मन्त्र में कहा गया है कि हे वरुणदेव! जैसे विविध यज्ञादि अनुष्ठान में मनुष्यों का प्रमाद होता है उसी प्रकार आपके पूजार्चनादि विधियों में हम शंकित होते है अत: हमें क्षमा करो। उसके बाद प्रार्थना की गई है की आप क्रोधवस्था में भी हमारे प्रति क्रोध मत करो। और भी -हे वरुणदेव! आपके शत्रुओ के प्रति प्रयोग किये गये अस्त्राहमे मत पदिखाओ और क्रोधवस्था में भी हमारे प्रति कृपा करो। उसके बाद कहते है कि

जिस प्रकार सारथि थके हुए अश्व की परिचर्या करता है उसी प्रकार हम भी आपके चित्त को प्रसन्न करने के लिए स्तुत्यादि करते है। और हमारी बुद्धि सदैव धनादिवस्तु के प्रति दोड़ती है अत: हमें क्षमा करो।

उसके बाद यहाँ प्रार्थना करते है कि कब सर्वद्रष्टा वरुणदेव कल्याण के लिए यज्ञस्थलादि पर आएगा। और व्रतधारणद्वारा आहुत हविर्द्रव्य वरुणदेव स्वीकार करके उसके बाद हम यजमानों रक्षा करेगा।

इसके बाद यहाँ वरुणदेवता का माहात्म्य का वर्णन करते है। वहां कहते है कि वरुणदेव आकाश में उड्डीयमान पक्षियों के मार्ग तथा समुद्र में नौकाओ के मार्ग को जानता है। प्रजा का धारक वरुणदेव द्वादशमास को जानाति और उसके साथ ही त्रयोदश(13वे) पुरुषोत्तममास को भी जानता है। वह स्वर्ग के सभी देवों को भी जानता है, और प्रजापालन के लिए स्रामाज्यस्थापना में सदैव तत्पर रहता है। वह अद्भुतकर्मादि विषयों को भी जानता है। भूलोक और द्युलोक के तथा समस्तविश्व के अधिकारी वरुण ने ही मनुष्यों के लिए शस्यभण्डार किये है और उसी ने ही मनुष्यों के उदर में पाचनसामर्थ्य स्थापित किया। वरुणदेव का इतना सामर्थ्य है कि भयङकर पापियों और द्वेष चाहने वाले शत्रुओ द्वारा भी अप्राप्य है।

वरुणदेव की स्तुति के बाद प्रार्थाना करते है। यथा- हमें पाश से मुक्तिप्रदान करो। हमारा आह्वान स्वीकार करो, यज्ञस्थलादि में अग्निदेव के समान हवि स्वीकार करो। हे अदितिपुत्र वरुणदेव! हमारी प्रार्थना सुनों और सुनकर हमे सुख प्रदान करो। हमे सदा श्रेष्ठमार्ग में ही प्रेरित करो और हमारी आयु को वर्धन करो।

10.3 वरुणदेवतास्वरूपम्

वरुणदेव ऋग्वैदिक आर्यों के अतीव प्रिय है। ऋग्वेद में वरुण का स्वरूप सम्पूर्णरूप से द्वादश12 सूक्त में प्रतिपादित है। और आंशिकरुप से चतुर्विंशति(24)सूक्त में स्तुति की गई है।

वरुणदेव की मानवाकृति अतीव सुन्दर तथा मोहनीय है। इसका मुखमण्डल अग्नि के तुल्य है और नेत्र सूर्यतुल्य है।

अग्नेरनीकं वरुणस्य। (7.88.2)
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्ने:। (1.155.1)

ये वरुणदेव अत्यन्तदूरस्थित होते हुए भी वस्तु में देखा जा सकता है। इसे सहस्रनेत्रवाला भी कहते है। इसका शरीर सुगठित और मांसल था। सुरक्षा और सौन्दर्य के लिए यह स्वशरीर पर स्वर्णिमकवच और स्वर्णिमवस्त्र को धारण करता है। इसका रथ सूर्य के सदृश द्युतिवान् देखने वालों में भी आश्चर्य उत्पन्न करता है। सुन्दर अश्व से युक्त अपने रथ पर बैठकर यह अपनी बाहू को हिलाते हुए और दृष्टि का सर्वत्र प्रसार करते हुए

टिप्पणी

भूलोक के सूक्ष्म व्यवहार को और प्रजा के अन्तस्स्थित भाव को भी जनता है। यह कभी स्वतन्त्ररूप से कभी मित्रदेव के साथ विश्व का राजा कहा जाता है।

त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा॥ (1.24.8)

सहस्रस्तम्भ से युक्तऔर सहस्रद्वार से युक्तस्वर्णिम महल में ये निवास करता है। यही स्थित होकर वह समग्र भुवन को निरीक्षण सम्पादित करता है। इसके प्रासाद के चारों और गुप्तचर सदैव विचरण करते है। वरुण को सम्राट्, स्वराट् इत्यादि उपाधि से भी विभूषित किया जाता है। शस्त्रों का अधिपति होने से ये क्षत्रिय भी कहाता है। इसकी अनिर्वचनीयशक्ति का नाम माया है, जिससे यह इस जगत का सचालन करता है। वर्षा से यह अन्नं उत्पन्न करता है तथा प्रकाश के निमित्त सूर्य को मध्यगगन में भेजता है इसी ने सूर्य के चलने के लिए अन्तरिक्षलोक में सुविस्तीर्ण मार्ग बनाया।

सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ॥ (ऋग्वेद1.28.8)

इसकी आज्ञा अतीव कठिन होती है फिर भी कोई इसकी आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं करता है। यह वरुण कठिन नियमों का पालन करता है इसलिए इसे धृतव्रत भी कहा जाता है। इसप्रकार इस विश्व का अणु से भी अणु पदार्थ तथा महान् से भी महान पदार्थ सभी वरुणदेव की इच्छा से ही अपनी सत्ता और स्थिति को धारण करते है। इसी लिए ये वरुण कल्याणकारी है।

पाठसार

वरुणसूक्त ऋग्वेद के प्रथममण्डल का चतुर्विंशति24वां सूक्त है। इस सूक्त का शुनःशेपः ऋषि और वरुणदेव है। इस सूक्त में त्रिष्टुप् और गायत्री छन्द है। गायत्रीछन्द तृतीय-चतुर्थ-पञ्चममन्त्रों में है। यहाँ विशेषतया वरुणदेव का स्वरूप तथा उसके कार्य का वर्णन है। प्रमाद न करें मनुष्य, इसके लिए वरुणदेव से प्रार्थना करते है। उनके प्रमादों का परिमार्जन करके वरुणदेव नियम से उन्हें पूर्ण करे ये आशा करते है। सुखप्राप्त करने के लिए भी वरुणदेव से प्रार्थना करते है। यथा रथस्वामी अथवा रथ को जो चलाता है वह दूर जाकर तृण दिखाकर अश्व को प्रसन्न करता है, उसी प्रकार हम भी मानसिक सुख प्राप्त करने के लिए वरुणदेव की नाना प्रकार से स्तुति से प्रसन्न करते है। कदाचित् सुखप्राप्ति और कदाचित् शोभा प्रदान करने केलिए भी अपि वरुणदेव की स्तुति करते है। वरुणदेव आकाशमार्ग से उड्डीयमानपक्षियों के मार्ग को भी जानता है तथा समुद्रमार्ग से गम्यमान नौकाओ के मार्ग को भी जानता है, इससे वह वरुणदेव हमें बन्धन से मुक्त करे। वरुणदेव का स्थानजलगृह है। वो वहां बैठकर इस संसार के सभी कार्य देखता है और विचार करता है। आयु के वर्धन केलिए भी कभी कभी वरुणदेव की स्तुति यहाँ की जाती है। और कहीं-कहीं वरुणदेव चिकने और चमकीले विशिष्टशरीर का वर्णन भी करते है। इस सूक्त के प्रायः अन्तिमभाग में वरुणदेव की महिमा वर्णित है। उसकी

अन्नप्रदान के रूप की महिमा, सत्मार्ग में प्रेरित की महिमा और शरीर की पुष्टी के लिए महिमा यहाँ इस सूक्त में वर्णित है। अन्तिमभाग में वरुणदेव के रथ के वर्णन किया है। यजमान ने उसका दर्शन किया। सम्पूर्णविश्व के देखने के योग्य उस वरुणदेव के निश्चय ही दर्शन उचित है स्तुति द्वारा द्यउसके बाद सुखप्राप्ति और अपनी रक्षार्थ स्तुति की गई है। हमारे सभी विनाश से अपने जीवन की रक्षा के लिए यह वरुणसूक्त है। ये ही माहात्म्य है वरुणसूक्त का।

पाठान्त प्रश्न

1007. वरुणसूक्त का सार लिखो।

1008. यच्चिद्धि... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

1009. मा नो... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

1010. कदा क्षत्रश्रियम्... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

1011. तदित्समान...... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

1012. दर्शं नु..... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

1013. इमं मे... ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

1014. त्वं विश्वस्य... ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

1015. उदुत्तमं मुमुग्धि... ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तरसंकेत -1

1016. शुनःशेपः ऋषि, वरुण देवता, गयत्री छन्द।

1017. मीञ्-धातु लट्लकार, उत्तमपुरुषबहुवचन में वैदिक रूप।

1018. हत्नु का चतुर्थ्येकवचन में हत्नवे रूप।

1019. वेन्-धातु से शतृप्रत्यय में प्रथमाद्विवचन का वेनन्तौ ये वैदिकरूप है।

1020. शासकीयशक्ति से सुशोभित, विशालदृष्टि वाला त्रिकालदर्शि, सभी का नेता वरुणदेव उसके समीप आएगा।

1021. हन्-धातु से हिंसा ओए गमन अर्थ है।

1022. वस्-धातु से अतिप्रत्यय से निष्पन्न वसति इसका द्वितीयाबहुवचन में वसतीः रूप।

1023. समुद्रे भव इत्यर्थे घप्रत्यय, इयादेश से समुद्रियः रूप बनता है।

1024. ज्ञान।

1025. शासिवसिघसीनां च।

उत्तर संकेत - 2

1026. व्रतधारी वरुण प्रजायुक्त द्वादश12 प्रकार के महीनों को जनता है।

1027. उपपूर्वक जन्-धातु से लट्लकार में प्रथमपुरुषैकवचन में उपजायते ये रूप बनता है।

1028. महत् वायु के अर्थात् अन्तरिक्ष के मार्गों को जानता है।

1029. द्रुह्-धातु से क्वनिप्प्रत्यय होने पर निष्पन्न द्रुह्शब्द का प्रथमाबहुवचन में द्रुह्वणाणः रूप होता है।

1030. सदिरप्रतेः इस सूत्र से षत्व।

1031. नि पूर्वक णिजिर्-धातु से कप्रत्यय होने पर निर्णिजशब्द का द्वितीयैकवचनमें निर्णिजम् रूप।

1032. कुत्सा और गति।

1033. कृ-धातु से लुङमूलक लोट्लकार के प्रथमपुरुषैकवचन में करत् रूप।

1034. कृ-धातु से त्वन्प्रत्यय करके कर्त्वा रूप बनता है।

1035. ज्ञान।

उत्तरसंकेत - 3

1036. अन्न के सभी प्रकार से पाचन के लिए शक्ति दी।

1037. मनोरपत्यम् इस अर्थ में मनोर्जातावञ्यतौ पुक् इस सूत्र से मनुशब्द से अञ्प्रत्यय और षुगागम होने पर मानुषशब्दनिष्पन्न हुआ ।

1038. इषुगमियमां छः।

1039. हू-धातु से तृच्प्रत्यय होने पर निष्पन्न होतृशब्द के प्रथमैकवचन में होता रूप बनता है।

1040. मुच्-धातु से लिट्मूलक लोट्लकार के मध्यमपुरुषैकवचन में मुमुग्धि रूप।

1041. अवस्-शब्द में क्यच्प्रत्यय और उप्रत्यय करने पर अवस्यु रूप बनता है।

1042. हुझल्भ्यो हेर्धिः इस सूत्र से।

1043. हिंसा और ग्रन्थनम्।

1044. गोपूर्वपद यू-धातु से क्तिन्प्रत्यय होने पर गोर्यूतौ छन्दसि सूत्र से ओकार के स्थान पर अवादेश से निष्पन्न गव्युतिशब्द के प्रथमाबहुवचन में गव्यूतीः रूप बनता है।

1045. मेधाशब्द से इरच्प्रत्यय करने पर मेधिर रूप बनता है।

दसवां पाठ समाप्त

टिप्पणी

11

यमसूक्त

प्रस्तावना

शरीर में जैसे सर वैसे ही संस्कृत साहित्य में वेदों की प्रधानता है। भारत में धर्मव्यवस्था वेदों से ही ली गई है। वेदो का धर्मनिरूपण में स्वतन्त्रभाव से प्रमाण है, स्मृति आदि तो वेदमूलक ही है। इसलिए श्रुति और स्मृति के विरोध में श्रुति ही श्रेष्ठ है। वेद केवल धर्ममूलक ही नही है अपितु वेदो में अनेक समस्याओं का समाधान है, और सबसे प्राचीन ग्रन्थ भी है। प्राचीन धर्मसमाज-व्यवहार-आदि वस्तुजात का बोध कराने में केवल वेद ही सक्षम है। ''विद्यन्ते धर्मादयः पुरुषार्थाः यैः ते वेदाः'' इति। सायण ने 'अपौरुषेयं वाक्यं वेद' कहा है। ''इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकम् उपायं यो वेदयति स वेद'' इति। और कारिका-

''प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥'' इति।

वेदा चार होते है। और वे हैं - ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। वहाँ ऋग्वेद के देवता में यम एक प्रसिद्ध देव हैं। ऋग्वेद में तीन सूक्तों में उसकी कथा प्राप्त होती है। ऋग्वेद में साधारण रूप से मृत्यु के देवतारूप में प्रसिद्ध है। मृत्यु के बाद सभी प्राणी यम के पास ही जाते है।

वह हमारे पूर्वज हैं, मृत्यु के बाद जो प्रथम प्रेतलोक के मार्ग को जानता था - ''यमो नो गातुं प्रथमो विवेद''। इस प्रकार का वह यम है। उसके विषय को आधारीत करके इस सूक्त की रचना की है। इस दशवें मण्डल के चौदहवें सूक्त का (ऋ.वे.10.14) यम वैवस्वत ऋषि, यम, आङ्गिर, पित्रखथवभृगुसोर्मा, लिङ्गोक्तदेवता अथवा पितर है, श्वानौ, त्रष्टुप्, अनुष्टुप् और बृहती छन्द है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे –

- यमसूक्त को जान पाने में;
- यम को जान पाने में;
- वैदिक शब्दों को जान पाने में;
- लौकिक शब्दों को जान पाने में;
- लौकिक वैदिक शब्दों के भेद को जान पाने में;
- अपने आप मन्त्र की व्याख्या कर पाने में;
- अपने आप अन्वय आदि कर पाने में;
- मन्त्र में स्थित व्याकरण आदि को जानने में।

11.1 मूलपाठ

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम्।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य॥1॥
यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या300 अनु स्वाः॥2॥
मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः।
याँश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति॥3॥
इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः।
आ त्वा मंत्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व॥4॥
अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्य॥5॥
अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम॥6॥
प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम्॥7॥

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन्।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः॥8॥
अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन्।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै॥9॥
अति द्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा।
अथा पितृन्त्सुविदत्राँ उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति॥10॥
यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ।
ताभ्यामेनं परि देहि राजन्त्स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि॥11॥
उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम्॥12॥
यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः॥13॥
यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत।
स नो देवेष्वा यमद्दीर्घमायुः प्र जीवसे॥14॥
यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः॥15॥
त्रिकद्रुकेभिः पतति षळुर्वीरेकमिद्बृहत्।
त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता॥16॥

11.1.1 व्याख्या

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम्।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य॥1॥

पदपाठ- परेयिऽवांसम्। प्रऽवतः। महीः। अनु। बहुऽभ्यः। पन्थाम्।
अनुऽपस्पशानम्। वैवस्वतम्। समऽगमनम्। जनानाम्। यमम्।
राजानम्। हविषा। दुवस्य॥1॥

अन्वय- पयेयिवांसम् महीः बहुभ्यः अनुप्रवतः राजानम् यमम् हविषा दुवस्य अनुपस्पशानाम् पन्थानम् वैवस्वतम् जनानाम् सङ्गमनम्।

व्याख्या- पृथिवी लोक पर स्थित पुराने, उन्नत और थोड़े समय के या ताजे उत्पन्न एवं सभी पदार्थों को सभी ओर से अधिकार करके प्राप्त तथा बहुत प्रकार से जीवन मार्ग को पाशतुल्य स्वाधीन करते हुए और जायमान अर्थात उत्पन्नमात्र वस्तुओं के प्राप्ति स्थानरूप सूर्य के पुत्र

काल –समय प्रातः सांय –अमावस्या –पूर्णिमा –ऋतु संवत्सर विभाग युक्त राजा के समान वर्तमान विश्वकाल समय को आहुति क्रिया से हे जीव! तु दीर्घायुलाभ के लिए स्वानुकूल बना यह आन्तरिक विचार है। यमाय मधुमत्तमम् यहाँ पर बृहती है। आदितो द्वादश त्रिष्टुभ है। और भी 'चानुक्रान्तम्- यरेयिवांसं षोळश यमो यामं पष्ठी लिङ्गोक्तदेवता पराश्च तिस्रः पित्र्या वा तृचःश्वभ्यां परा अनुष्टुभो बृहत्युपान्त्या यह सूक्त में आया हुआ विनियोग है। महापुतृयज्ञे यमयाग आद्या याज्या। सूत्रितञ्च इमं यम प्रस्तरमा हि सीदेति द्वे परेयिवांसं प्रवतो महीरनु(आ. श्रौ. 2।19।22) इति। हे यजमान तुम राजा को पितरो के स्वामी यम को हवि पुरोडश आदि देकर प्रसन्न करते है।

सरलार्थ- (हे यजमान तुम) परलोकवासी के उत्पति स्थिति और नाश का निमित हो, उस आयुवर्धक सूर्य पुत्र को पदार्थो के होम द्वारा स्वानुकुल बनाना चाहिए। स विवस्वत का पुत्र मृत मनुष्यों को मिलाता है।

व्याकरण-

- परेयिवांसम्- परापूर्वक-इण्-धातु से क्वसु प्रत्यय करने पर द्वितीयाएकवचन में यह रूप है।
- प्रवतः- प्र उपसर्ग से 'उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे' इससे स्वार्थे में वतिप्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।
- महीः- महशब्द से ङीप् प्रत्यय करने पर द्वितीया बहुवचन में यह रूप है।
- पन्थाम्- पथिन्-शब्द का द्वितीया एकवचन में यह वैदिकरूप है।
- अनुस्पशानम्- अनुपूर्वकस्पश्-धातु से कानच् प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में यह रूप बनता है।
- वैवस्वतम्- विवस्वतः अपत्यं पुमान् इस विग्रह में अण्प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में यह रूप बनता है।
- सङ्गमनम्- सम्पूर्वक-गम्-धातु से ल्युट-प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन का यह रूप है।

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या३०० अनु
स्वाः॥2॥

पदपाठ- **यमः। नः। गातुम्। प्रथमः। विवेद। न। एषा। गव्यूतिः।**
अपऽभर्तवै। ओम् (ॐ) इति। यत्र। नः। पूर्वे। पितरः।
पराऽईयुः। एना। जज्ञानाः। पथ्याः। अनु। स्वाः॥2॥

अन्वय– यमः प्रथमः नः गातुम् विवेद। एषा गव्यूतिः उ न अपभर्तवै यत्र नः पूर्वे पितरः परेयुः, एना जज्ञानाः स्वाः पथ्याः अनु।

व्याख्या– समय ने ही हमारी जीवन गति को प्रथम से ही प्राप्त किया हुआ है अत यह काल मार्ग किसी तरह त्यागा नही जा सकता जिस मार्ग में हमसे पूर्व उत्पन्न जनक आदि पालक जन भी कुल परंपरा से यात्रा करते चले आये हुए है, और इसी मार्ग से उत्पन्न हुए सभी प्राणी और वनस्पति आदि पदार्थ निज मार्ग सम्बन्धी धर्मो का अनुगमन करते है, अत उस समय को पूर्व मन्त्रानुसार होम द्वारा स्वानुकुल बनाना चाहिए।

सरलार्थ– यम ही प्रथम है, जो हमारे शुभ अशुभमार्ग को जानता है। अच्छे ज्ञान के विष में और बुरे ज्ञान के विषय में ज्ञान को कोई हर नही सकता है। हमारे पूर्वज जिस मार्ग से गये है, ज्ञानी लोग भी उसी पन्थ का अनुसरण करता है।

व्याकरण–

- गातुम्– गौ–धातु से तुमु प्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।
- विवेद– विद्–धातु से परस्मैपद में लिट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- जज्ञानाः– जन्–धातु से कानच् प्रत्यय करने पर प्रथमा बहुवचन में यह रूप बनता है।

मातली कव्यैर्यमो
अङि्गरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः।
याँश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये
मंदन्ति॥3॥

पदपाठ– **मातली। कव्यैः। यमः। अङि्गरःऽभिः। बृहस्पतिः। ऋक्वऽभिः।**
ववृधानः। यान्। च। देवाः। ववृधुः। ये। च। देवान्। स्वाहा।
अन्ये। स्वधया। अन्ये। मदन्ति॥3॥

अन्वय– मातली कव्यैः यमः आङि्गरोभिः ऋक्कभिः बृहस्पतिः ववृधानः। देवाः यान् ववृधुः, ये च देवान् अन्ये स्वाहा अन्ये स्वधया मदन्ति।

व्याख्या–अग्निमारुते मातली कव्यै रित्येषा धाय्या। सूत्रितञ्च –इमं यम प्रस्तरमा हि सीद मतली कव्यैर्यमो अङि्गरोभिरुदीरतामवर उत्परासः (आ0श्रौ0 5.20.6) इति।

मातलि इन्द्र का सारथी है, उस प्रकार का इन्द्र वाला मातली है। वह काव्यो के द्वारा काव्य के भागो का पितर के साथ बढ़ती रहे है। यम अङि्गरा के साथ और पितरो के साथ विशेष रूप से आगे बढता है। (बृहस्पतिः ऋक्वभिः ऋक्प्रतिपाद्यैः पितृविशेषैः सह वर्धमानो भवति।) वहा देव इन्द्र आदि यान् को और काव्य भाग आदि को विशेष रूप से बढ़ाते रहते है और ये काव्य के भाग पितरो और इंद्र आदि देवो को बढ़ाता है। उनके मध्य में अग्नि इन्द्र आदि के लिए स्वाहा शब्दों का प्रयोग करके उन्हें प्रसन्न करने का प्रयास किया गया है। अन्य पितरों को स्वधा और स्वधाकार से उन्हें संतुष्ट करने का प्रयास किया गया है।

सरलार्थ- मातलि काव्यों के साथ, यम अङ्गिरा आदि के साथ, बृहस्पति का ऋग्वेद के साथ वृद्धि को प्राप्त होता है। जिनका देवता संरक्षण करते है, और देवता में कुछ स्वाहा द्वारा और अन्य स्वधा द्वारा (हव्यदान से) आनन्दित होते है।

व्याकरण-

- कव्यैः-यहाँ साथ अर्थ में तृतीया है।
- वावृधुः-वृध्-धातु से लिट् प्रथम पुरुष बहुवचन का यह रूप है।
- स्वाहा-स्वाहा शब्द के तृतीया एकवचन में यह वैदिक रूप है।
- स्वधया- स्वधा शब्द के तृतीया एकवचन में यह रूप है।
- मदन्ति- मद्-धातु से लट् प्रथम पुरुष बहुवचन का यह रूप है।

इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व॥4॥

पदपाठ- **इमम्। यम। प्रऽस्तरम्। आ। हि। सीद। अङ्गिरःऽभिः। पितृऽभिः। सम्ऽविदानः।**
आ। त्वा। मन्त्राः। कविऽशस्ताः। वहन्तु। एना। राजन्। हविषा। मादयस्व॥4॥

अन्वय- यम आङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः इमं प्रस्तरम् आसीद। हि कविशस्ताः मन्त्राः त्वा आवहन्तु राजन् एना हविषा मादयस्व।

व्याख्या- महापितृयज्ञ इमं यमेत्यादिके द्वे अनुवाक्ये। इमं यम प्रस्तरमा हि सीदेति द्वे (आ0श्रौ0 2.19.22) इति हि सूत्रितम्। सैवाग्निमारुतेपि धाय्या। सूत्रं पूर्वमेवोदाहृतम्।

हे यम, अङ्गिरा तु प्राणों के अनुकूल होता हुआ मेरे इस शरीर रूपी यज्ञ को जीवन वृद्धि के हेतु अवश्य भलीं प्रकार प्राप्त हो शरीर विद्यावेता विद्वानों के निर्दिष्ट मंतव्य तुझको मेरे शारीर में चिरकाल तक रखे, अतएव हे राजमान देव इस हविर्दान तथा खाने योग्य पदार्थ से मुझ को सन्तुष्ट, सजीवन कर।

सरलार्थ- हे यम अंगिरा नामक पितृगण के साथ एकत्रीत होकर घास से निर्मित यज्ञवेदि के मध्य में बैठों। क्योंकि मेधाविन शास्त्र पाठ को के मन्त्र तुम्हारा आह्वान करते है, अतः हे राजन् हवि के द्वारा प्रसन्न हो।

व्याकरण-

- प्रस्तरम्- प्रपूर्वक स्तृ-धातु से अप्प्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।
- सीद- सद्-धातु से लोट् मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- पितृभिः- यहाँ साथ अर्थ में तृतीया है।

- संविदानः- सम्पूर्वक विद्-धातु से शानच् प्रत्यय करने पर प्रथमा एकवचन में यह रूप बनता है।
- मादयस्व- मद्-धातु से स्वार्थ में णिच् लोट् लकार के मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।

अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्य॥5॥

पदपाठ- **अङ्गिरःऽभिः। आ। गहि। यज्ञियेभिः। यम। वैरूपैः। इह। मादयस्व। विवस्वन्तम्। हुवे। यः। पिता। ते। अस्मिन्। यज्ञे। बर्हिषि। आ। निऽसद्य॥5॥**

अन्वय- यम! वैरूपैः यज्ञियेभिः अङ्गिरोभिः गोत्रज यज्ञवित् इह आगाहि, मादयस्व। यः ते पिता विवस्वन्तं हुवे अस्मिन् यज्ञे वर्हिषि आ निषद्य।

व्याख्या- हे यम, विभिन्न रूपों में, विविध रूपों से युक्त साम प्रिय यज्ञ के द्वारा, यज्ञ के योग्य अङ्गिरा के साथ आओ। और आकर के इस यज्ञ के पावन पर्व पर प्रसन्न कीजिए।

सरलार्थ- हे यम विरूपर्ष के पुत्र यज्ञ के ज्ञाता अंगिरागण के साथ इस यज्ञस्थान में आकर के प्रसन्न करिये। जो विवस्वान् तेरा पिता है, उसका हम आह्वान करते है, वह यहाँ आकर के इस यज्ञ में कुश के उपर स्थान को प्राप्त करे।

व्याकरण-

- वैरूपैः- साथ अर्थ में तृतीया है।
- विवस्वन्तम्- विवस्वत् शब्द का द्वितीया एकवचन में यह रूप बनता है।
- हुवे- ह्वे-धातु से आत्मनेपदमें लट् लकार उत्तम पुरुष एकवचन में यह रूप है।
- निषद्य- नि पूर्वक सद्-धातु से ल्यप् करने पर यह रूप बनता है।

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम॥6॥

पदपाठ- **अङ्गिरसः। नः। पितरः। नवऽग्वाः। अथर्वाणः। भृगवः। सोम्यासः। तेषाम्। वयम्। सुऽमतौ। यज्ञियानाम्। अपि। भद्रे। सौमनसे। स्याम॥6॥**

अन्वय- अङ्गिरसः अथर्वाणः भृगवः नवग्वाः नः पितरः सोम्यास्यः। तेषाम् यज्ञियानाम् सुमतौ अपि सौमनसे भद्रे वयं स्याम।

व्याख्या- अङ्गिरसः अङ्गिरनामका, अथर्वाणः अथर्वनामका, और भृगवः भृगुनामकाहमारे पितरदिवाकर किरणों से युक्त होते है, अथवा नयी किरणों के समान सुंदर लगते है। और वे सोम का सम्पादन करते है। सोम को चाहने वाले सोम्या कहलाते हैं। उन यज्ञिय योग्य सूर्य

किरणों के विचारणीय विज्ञान व्यवहार में हम कल्याण मन से सुख युक्त होकर रहे। और भी सूर्य की किरणें भद्र और कल्याणकारी फल दे।

सरलार्थ- अङ्गरस, अथर्वाण, भृगव आदि प्रत्येक ऋतु को अपने अनुकूल और सुखमय बनाने के लिए पुष्कल ऋतु याग करना चाहिए। हम जैसे यज्ञ के समय प्रसन्नचित्त और कल्याणकारी बने रहे वैसा आप प्रयत्न कीजिए।

व्याकरण-

- नवग्वाः- नवभिः गूः गमनं येषां ते नवग्वाः।
- भृगवः- भृगु शब्द का प्रथमा बहुवचन में यह रूप है।
- सुमतौ- सु सुंदर बुद्धि है जिसकी उसको।
- सौमनसे- सुमनसः भाव यहाँ पर तस्येदम् इससे अण् प्रत्यय करने पर सप्तमी एकवचन में यह रूप बनता है।

प्रेहि प्रेहिं पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम्।।7।।

पदपाठ- **प्र। इहि। प्र। इहि। पथिऽभिः। पूर्व्येभिः। यत्र। नः। पूर्वे। पितरः। पराऽईयुः। उभा। राजाना। स्वधया। मदन्ता। यमम्। पश्यासि। वरुणम्। च। देवम्।।7।।**

अन्वय- यत्र नः पूर्वे पितरः परेयुः पूर्व्येभिः पिथिभिः प्रेहि प्रेहि। स्वधया मदन्तौ उभा राजाना यमम् च देवम् वरुणम् पश्यसि।त्रिकंद्रुकेभिः पतति षळुवीरेकमिद्बृहत्। त्रिष्टुब्गायत्री छंदांसि सर्वा ता यम आहिंता।।16।।

व्याख्या- सत्रमधये दीक्षितस्य मरणे प्रेहीत्याद्याः पञ्चचैस्तृतीयावर्जता होत्रा शंसनीयाः। सूत्रतञ्च प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिरिति पञ्चानां तृतीयामुद्धरेत् (आ0श्रौ0 6.10.19) इति।

जहाँ पर अथवा जिस स्थान पर हमारे बड़े लोगो के बनाए मर्यादित किये हुए जीवन यात्रा सम्बन्धी इच्छा पूर्ति मार्ग से हे जीव तू बार बार नित्य प्राप्त कर। अनादि काल से ही प्रवृति है यह अर्थ है। पथि के साथ जिन मार्गो में वर्त्तमान हुए हमारे पालक जन जीवनान्त आयु की पूर्णता को प्राप्त करे। और जाकर के स्वधा से अमृत से अन्न से प्रसन्न राजा के समान दोनों यम देव के प्रकाश को और वरुण को हमारे देखते हुए देखें।

सरलार्थ- (हे मृत) जहाँ हमारे पूर्वज पितर गए है, (तुम भी) पूर्व मार्ग का अनुसरण करते हुए शीघ्र जाओ, शीघ्र जाओ। (वहाँ जाकर के तुम) स्वधा द्वारा आनन्दित यम और देव वरुण दोनों का प्रत्यक्ष दर्शन करोगे।

व्याकरण-

- प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिः- मन्त्र के प्रथम पाद में पकार का अनुप्रास लक्षण है।

टिप्पणी

- पूर्व्येभिः- पूर्वैः कृतम् यहाँ पर पूर्व शब्द से य प्रत्यय करने पर अकार का लोप करने पर भिस् को ऐस् आदेश होने पर एत्व के अभाव में यह रूप है।
- उभा राजाना मदन्ता- उभौ राजानौ मदन्तौ, यहाँ पर सुपां सुलुक् इत्यादि से आकारा आदेश।
- पश्यासि- दृश्-धातु से आशी-अर्थ में लेट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन का यह रूप है।

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन्।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः॥8॥

पदपाठ- **सम्। गच्छस्व। पितृऽभिः। सम्। यमेन। इष्टापूर्तेन। परमे। विऽओमन्। हित्वाय। अवद्यम्। पुनः। अस्तम्। आ। इहि। सम्। गच्छस्व। तन्वा। सुवर्चाः॥8॥**

अन्वय- परमे व्योमन् पितृभिः संगच्छस्व, इष्टपुर्तेन सम् अवद्यम् हित्वाय अस्तम् पुनः एहि। सुवर्चाः तन्वा संगच्छस्व।

व्याख्या- हे हृदयाकाश में वर्त्तमान जीव, तू प्राण के साथ संगत हो जा और वही जीवन काल के साथ भी संगत हो जा। इष्टापूर्ति यज्ञादि रूप संचित किये धर्म धन के साथ संगती कर जो तेरा सच्चा मित्र है। मरण धर्मी शरीर को छोड़कर पुनर्जन्म को प्राप्त हो और उस पुनर्जन्म में सुंदर शरीर के साथ युक्त हो जा।

सरलार्थ- (हे पित, आप) श्रेष्ठ स्वर्ग में वेद कर्मफल से कुछ सुंदर कर्मफल की प्राप्ति से देव लोगो की प्राप्ति होती है। पाप को छोड़कर, पुनः अपने घर के प्रति जाओ। सुन्दर प्रकाशमान शरीर की प्राप्ति होती है।

व्याकरण-

- संगच्छस्व- सम् पूर्वक गम्-धातु से आत्मनेपद में यह रूप बनता है।
- इष्टापूर्तेन- यहाँ इष्ट शब्द का अर्थ श्रौतयाग यज्ञ आदि है, पूर्त शब्द का अर्थ सुन्दर लोगों के हितकारी और पुण्यकर्म है। इच्छा पूर्ति को इष्टापूर्त कहते है, अन्येषामपि दृश्यते इस सूत्र से दीर्घ होता है।
- हित्वाय- हा-धातु से क्त्वा अच् प्रत्यय करने पर क्त्वो यक् यहाँ पर क्त्वा यहाँ पर यक के आगम होने पर कित्त्व अदन्त अवयव में यह रूप है।
- अस्तम्-अस्-धातु से नपुंसके भावे क्तप्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।
- सुवर्चाः- सु शोभनं वर्चः तेजः यस्य सः सुवर्चाः। सुवर्चस्-शब्द का प्रथमा एकवचन में यह रूप बनता है।

पाठगत प्रश्न

1. यम सूक्त के ऋषि कौन है। छन्द क्या है? और देवता कौन है?

टिप्पणी

2. प्रवत: इस रूप की उत्पति कैसे हुई?
3. वैवस्वतम् यहाँ पर विग्रह क्या है और प्रत्यय क्या होता है?
4. परेयिवांसम् यहाँ पर व्युत्पत्ति क्या है?
5. किसका शस्त्र अथवा चक्र का नाश नही होता है?
6. चौथे मन्त्र में अपि शब्द किस अर्थ में प्रयुक्त होता है?
7. राय: इस पद का क्या अर्थ है?
8. जज्ञाना: इस पद की व्युत्पत्ति कहा है?
9. पूर्व्येभि: इस पद की व्युत्पत्ति कहा पर है?
10. वैरूपै: यहाँ पर किस अर्थ में तृतीया है?

अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन्।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै॥9॥

पदपाठ– **अप। इत। वि। इत। वि। च। सर्पत। अत:। अस्मै। एतम्। पितर:। लोकम्। अक्रन्।**
अह:ऽभि:। अत्ऽभि:। अक्तुऽभि:। विऽअक्तम्। यम:। ददाति। अवऽ0सानम्। अस्मै॥9॥

अन्वय– अपेत वीत च अत: विसर्पत। पितर: अस्मै एतं लोकम् अक्रुन्। यम: अहोभि: अद्भि: अभुक्ति: अवासनम् व्यद्रम् अस्मै ददाति।

व्याख्या– पैतृमेधिके कर्मणि श्मशानायतनं प्रोक्षति अपेत वीत इति। सूत्रिताञ्च कर्तोदकेन शमीशाखया त्रि: प्रसव्यमायतनं परिव्रजन् प्रोक्षत्यपेत वीत वि च सर्पतात इति (आ0 गृ 4.2.8) इति।

शरीरपात हो जाने के पश्चात जीव सूर्य की पृथिवी सम्बन्धी रश्मियों को प्राप्त होता है पुन अन्तरिक्ष सम्बन्धि किरणों को और पश्चात द्युस्थान सम्बन्धी रश्मियों तक पहुचता है, एवं स्थूल शरीर के बिना ही कुछ दिन, उषा और रात्रियों तक विराम में रहकर पुनर्जन्म में आता है।

सरलार्थ– (इस स्थान से अशुभशक्तिसमूह) दूर हो हटे, सम्पूर्ण रूप से प्रस्थान करिये। पितर इस (मृतयजमान के) करने के लिए इस स्थान को स्थापित किया गया है। यम दिवस के द्वारा, रात्री के द्वारा, जल से इनको विश्राम भूमि शोभा को प्राप्ति होती है (मृत्यु के) लिए दी गई है।

व्याकरण–

- अस्मै– तादर्थ्ये निमित्त अर्थ में विकल्प से चतुर्थी होती है।
- अक्रन्– कृ-धातु से लुङ् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप है।

टिप्पणी

- अहोभिः- अहन् शब्द का तृतीया बहुवचन में यह रूप है।
- अद्भिः- अप् शब्द का तृतीय बहुवचन में यह रूप बनता है।
- अक्तुभिः- अक्तु शब्द का तृतीया बहुवचन में यह रूप बनता है।

अति द्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा।
अथा पितन्त्सुविदत्राँ उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति॥10॥

पदपाठ- **अति। द्रव। सारमेयौ। श्वानौ। चतुःऽअक्षौ। शबलौ। साधुना। पथा। अथ। पितृन्। सुऽविदत्रान्। उप। इहि। यमेन। ये। सधऽमादम्। मदन्ति॥10॥**

अन्वय- सारमेयौ श्वाग्नौ साधुना पथा अतिद्रव्य, चातुरक्षौ शवलौ। ये यमेन सधमादम् मदन्ति अथ सुविदत्रन् पितृन् उपेहि।

व्याख्या- अनुस्तरण्या वृक्कौ पार्श्वयोराम्रलाकृती। तावुद्धत्य प्रेतस्य हस्तयोर्निदधाति अति द्रव सारमेयौ इति द्वाभ्याम्। सूत्रितञ्च- वक्कावुद्धस्य पाण्योरादध्याद् अति द्रव सारमेयौ श्वानाविति (आ0गृ0 4.3.19) इति।

हे जीव, तू उचित मार्ग से चार प्रहर रूप चार आखों वाले, सूर्य तथा चन्द्र प्रकाश से चित्र रंग युक्त उषा पुत्रों दिन और रातओं समीचीन रूप से प्राप्त हो इसके पश्चात कल्याण सम्पादक ऋतु सहचरित सूर्य की रश्मियों को प्राप्त कर जो समय के साथ सदा सहयोग रखती है।

सरलार्थ- (हे अग्ने) देहान्त के पश्चात जीव शीघ्र-शीघ्र दिन रातो को सूर्य रश्मियो द्वारा पुनर्जन्मार्थ प्राप्त होता है।

व्याकरण-

- द्रव- द्रु-धातु से मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- सारमेयौ- सरमायाः पुत्रौ इस अर्थ में सरमा शब्द को स्त्रीभ्यो ढक् इससे ढक् प्रत्यय करने पर तथा आदि वृद्धि, ढकार को एय आदेश होने पर द्वितीया द्विवचन में यह रूप बनता है।
- चतुरक्षौ-चत्वारि अक्षीणि ययोः तौ यहाँ पर बहुव्रीहि समास है।
- सधमादम्- सह पूर्वक मद्-धातु से णमुल् प्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ।
ताभ्यामेनं परि देहि राजन्त्स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि॥11॥

पदपाठ- **यौ। ते। श्वानौ। यम। रक्षितारौ। चतुःऽअक्षौ। पथिऽरक्षी इति पथिरक्षी। नृऽचक्षसौ। ताभ्याम्। एनम्। परि। देहि। राजन्। स्वस्ति। च। अस्मै। अनमीवम्। च। धेहि॥11॥**

अन्वय- राजन् यम ते यौ श्वानौ ताभ्याम् एनम् परदेहि। रक्षितारौ चतुराक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ। अस्मै च अनमीवम् धेहि।

व्याख्या- हे राजन्, हे यम, तेरे जो रक्षक चारप्रहर रूप चार आखों वाले मार्गपाल प्राणियों के सदा दर्शक श्वान तुल्य प्रत्येक जीव के पीछे-पीछे चलने वाले दिन और रात है उन दिन रातों के साथ इस जीव को पुनर्जन्म के लिए छोड़, हे राजन ! इस जीव के लिए सत्तारूप स्वस्ति और नीरोगता का सम्पादन कर।

सरलार्थ- हे राजन् जो जीव का जीवन समय समाप्त हो जाने पर फिर से नया जीवन मिलता है जो की शुद्ध और स्वस्थ होकर दिनरात के साथ पुनर्वहन करता है। इसका मङ्गल हो, इनको रोग रहित करो।

व्याकरण-

- पथिरक्षी- मार्ग की रक्षा करता है वह पथिन् है, वहा पर रक्ष-धातु से इन् प्रत्यय करने पर प्रथमा द्विवचन में यह रूप बनता है।
- नृचक्षसौ- नृन् चक्षाते यहाँ पर नृ पूर्वक चक्ष्-धातु से असुन् प्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।
- स्वस्ति- यहाँ पर अव्यय रूप से प्रयोग किया गया है।
- राजन्- राजन् शब्द का सम्बोधन प्रथमा एकवचन में यह रूप बनता है।
- धेहि- धा शब्द का लोट् मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।

उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम्।।12।।

पदपाठ- **उरुऽ0नसौ। असुऽ0तृपौ। उदुम्बलौ। यमस्य। दूतौ। चरतः। जनान्। अनु। तौ।**
अस्मभ्यम्। दृशयें। सूर्याय। पुनः। दाताम्। असुम्। अद्य। इह। भद्रम।।12।।

अन्वय- यमस्य दूतौ जनान् अनुतरतः उरुनसौ असुतृप्तौ उदुम्वलौ। तौ सूर्याय दृशये अद्य इह अस्मभ्यम् पुनः भद्रम् असुम् दाताम्।

व्याख्या- वे दिन और रात काल के दूत बने हुए बड़े कुटिल कठोर स्वभाव के, प्राणों से तृप्त होने वाले महाबली उत्पन्न हुए सभी जीवों में साथ साथ चलते हैं। वे दिन और रात बारम्बार सूर्य दर्शन के लिए आज इस लोक में हमारे लिए सुखदायक जीवन धारण करने को दूसरा जन्म फिर देवे।

सरलार्थ- यम के दो दूत है, दिन और रात आयु रूप जीवन काल के दूत बन कर बारम्बार सूर्यदर्शन कराते हुए जीव को अंतिम काल तक ले जाते है एवं पुनर्जन्म भी धारण कराते है। वे हमारे लिए कल्याणकारी प्राण देते है, जिससे हम पुनः सूर्य को देख सकते है।

व्याकरण-

- उरुणसौ- उरु नासिके ययोः तौ उरुणसौ।

टिप्पणी

- असुतृपौ- असुभिः तृप्यन्तौ यहाँ पर असु पूर्वक तृप्-धातु से क प्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।
- उदुम्बलौ- उरु बलं ययोः तौ यहाँ पर बहुव्रीहि समास है।
- दाताम्- दा-धातु लुङ् लोट प्रथम पुरुष द्विवचन में यह रूप बनता है।

यमाय सोम सुनुत यमाय जुहुता हविः।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरङ्कृतः॥13॥

पदपाठ- **यमाय। सोमम्। सुनुत। यमाय। जुहुत। हविः।**
यमम्। ह। यज्ञः। गच्छति। अग्निऽदूतः। अरम्ऽकृतः॥13॥

अन्वय- यमाय सोमं सुनुत, यमाय हविः जुहुतः अग्निदूतः यज्ञः अरङ्कृतः यमम् ह गच्छति।

व्याख्या- हे ऋत्विज, यम के लिए यम देवता के लिए समय को अनुकूल बनाने के लिए ओषधि रस की हवि - आहुति अग्नि में होम करो अग्निदूत के द्वारा यह संपादित यज्ञ काल को प्राप्त हो जाता है। अग्निर्देवानां दूतं आसीत् (तै.सं 2/5/8/5 इति। उस प्रकार का यज्ञयम के समीप जाता है।

सरलार्थ- (हे ऋत्विजो) यम को उद्दिश्य करके आयुर्वेदिक ढंग से ओषधि रस का होम जीवन को चिरकालीन बनाने का हेतु है। अग्नि दूत है जिसका वह यज्ञ को सज्जित करके यम के समीप ही जाता है।

व्याकरण-

- यमाय- तादर्थ्य में अथवा निमित्त अर्थ में चतुर्थी होती है।
- सुनुत- सु शब्द का परस्मैपद लोट् मध्यम पुरुष बहुवचन में यह रूप बनता है।
- जुहुता- हु-धातु से लोट् मध्यम पुरुष बहुवचन में यह रूप बनता है।
- अग्निदूतः- अग्निः दूतः यस्मिन् सः यहाँ पर बहुव्रीहि समास है।
- अरंकृतः- अलंकृतः, रकार लकार का भेद है, अभिषवादि संस्कार अलंकार है।

यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत।
स नो देवेष्वा यमद्दीर्घमायुः प्र जीवसे॥14॥

पदपाठ- **यमाय। घृतऽवत्। हविः। जुहोत। प्र। च। तिष्ठत। सः। नः। देवेषु। आ। यमत्। दीर्घम्। आयुः। प्र। जीवसे॥14॥**

अन्वय- यमाय घृतवत् हविः जुहोतः प्र च तिष्ठत। देवेषु सः प्रजीवसे नः दीर्घम् आयुः आयमत्।

व्याख्या- हे ऋत्विज, पूर्वोक्त जीवनकाल और विश्व काल को अनुकूल बनाने के लिए घृत सहित ओषधि रस रूप हवि आदि का होम करो और जीवन की उच्चता को प्राप्त होओ एवं

वह काल हमारे अधिक और उत्तम जीवन के लिए हमारी इन्द्रियों में दीर्घ जीवन का विस्तार करो। देवो के मध्य यम देव हमको दीर्घ आयु प्रदान करे।

सरलार्थ:- (हे ऋत्विजो) यम को उद्दिश्य करके घृत युक्त हवि को देते हुए उसके लिए उपस्थित हुआ। देवो में वह हमारे प्रकृष्ट दीर्घ जीवन के लाभ के लिए चिरस्थायी रहती है।

व्याकरण-

- घृतवत्- घृतमस्ति अस्य यहाँ पर घृतशब्द से मतुप् प्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।
- जुहोत- हु-धातु से लोट् मध्यम पुरुष बहुवचन में यह रूप बनता है।
- आ यमत्- आ यम्-धातु लुङ् प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- आयु:- यहाँ पर आयु सम धातु ज कर्म है।
- जीवसे- जीव्-धातु से तुमर्थ में असे जीवसे इति, जीवितुम् यहाँ पर अर्थ में है।

यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः॥15॥

पदपाठ- **यमाय। मधुमत्ऽतमम्। राज्ञे। हव्यम्। जुहोतन। इदम्। नमः। ऋषिऽभ्यः। पूर्वऽजेभ्यः। पूर्वेभ्यः। पथिकृत्ऽभ्यः॥15॥**

अन्वय- राज्ञे यमाय मधुमत्तमम् हव्यम् जुहोतन। पूर्वजेभ्यः ऋषिभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः इदं नमः।

व्याख्या- हे ऋत्विजो, यम के लिए पूर्वोक्त सर्वत्र राजमान समय को अनुकूल बनाने के लिए मधु या मिष्ट से युक्त हवि का होम करना चाहिए धर्म - मार्ग सम्पादन करने वाले पूर्वजो की अपेक्षा भी जो पूर्व ऋषि हो चुके है उनके लिए यह तीन मंत्रे में कहा हुआ सोम घृत मधु सहित हवि का होम रूप कर्म नम्रता रूप या शिष्टाचार रूप हो।

सरलार्थ-राजा यम को उद्दिश्य करके अत्यधिक मधु से मिश्रित हवि द्रव्य की आहूति देते है। पूराने ऋषियों के लिए शिष्टाचार का अनुष्ठान भी समझना चाहिए।

व्याकरण-

- यमाय- तादर्थ्य में अथवा निमित्त अर्थ में चतुर्थी विभक्ति है।
- मधुमत्तमम्- मधु अस्ति अस्मिन्निति मधुमत्, अतिशयेन मधुमत् यहाँ पर तमप् प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में यह रूप बनता है।
- जुहोतन- हु-धातु से लोट् मध्यम पुरुष बहुवचन में यह रूप बनता है।
- पूर्वजेभ्य:- पूर्वे जात: इति पूर्वज:, तेभ्य:।

त्रिकद्रुकेभिः पतति षळुर्वीरेकमिद्बृहत्।
त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता॥16॥

पदपाठ- त्रिऽकद्रुकेभिः। पतति। षट्। उर्वीः। एकम्। इत्। बृहत्। त्रिऽस्तुप्। गायत्री। छन्दांसि। सर्वा। ता। यमे। आऽहिता॥16॥

अन्वय- त्रिकद्रुकेषु पतति। षट् उर्वी, एकम् इत् वृहत्, ता सर्वा त्रिष्टुप् गायत्री छन्दांसि यमे आहितो।

व्याख्या- त्रिकुद्रुकेभिः। यहाँ पर द्वितीयार्थ में तृतीया है। स्वभाव तथा निज स्वतंत्रता में किसी की अपेक्षा न करने वाला एक अकेला काल भूत वर्त्तमान भविष्यत इन तीन कालचक्रो से ऋतु रूप छः भूमियो को प्राप्त होता है द्यावा पृथिवी और सारी दिशायें अर्थात अन्तरिक्ष काल के अन्दर ही रखे हुए है।

सरलार्थ- ज्योतिष्टोम आदि सोमयाग में यम के लिए हवि गिरते है। छः ऋतू, और बृहत याग गायत्री छन्द में यम को अर्पण करते है।

व्याकरण-

- उर्वीः- उर्वीशब्द का द्वितीया बहुवचन में यह रूप बनता है।

पाठगत प्रश्न

11. इस सूक्त के आठवें मन्त्र में अस्मै यहाँ पर किस अर्थ में चतुर्थी है?
12. अक्तुभिः यह रूप कैसे बनता है?
13. द्रव यह रूप कैसे बनता है?
14. यमाय यहाँ पर किस अर्थ में चतुर्थी होती है?
15. जीवसे इसका क्या अर्थ है?
16. पूर्वजेभ्यः इसका विग्रह लिखो?

2.2 यम का स्वरूप

ऋग्वेद के देवता गोष्ठी में यम का महत्वपूर्ण स्थान है। ऋग्वेद के तीन सूक्तों में उसके विषय में कथा प्राप्त होती है (10/135.154)। उनको छोड़कर भी यम का उसकी बहिन के साथ कथोपकथन युक्त एक अन्य भी सूक्त है। उस सूक्त का नाम 'यमयमीसंवादसूक्त' (10.10)। वरुण-बृहस्पति-अग्नि आदि देवो के साथ भी उसकी स्तुति अनेक मन्त्रो में प्राप्त होता है। निरुक्तकार यास्क ने उसके विषय में निरुक्त शास्त्र में यम शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहते

है – 'यमो गच्छतीति सत:' (10.19) इति। यहाँ यम शब्द उपरमार्थक यम् धातु से कर्ता में निष्पन्न होता है। उसका अर्थ है जो प्राणियों को उपरमण करता है अर्थात् प्राणियों के प्राण को छुडाकर ले जाता है। निरुक्त में यमशब्द से पुन: अग्निदेव कहलाता है। और भी निरुक्त में कहा गया है – 'अग्निरपि यम उच्यते' (10.12) इति। वहाँ पर यम् धातु प्रदान रूप अर्थ है। यच्छति प्रयच्छति कामान् स्तोतृभ्य: इति यम:। परलोकतत्त्व विषय में मृत्यु की अमरता विषय पर और मृत्यु से परे जीवन विषय में ज्ञान यम सूक्त से प्राप्त होता है। यम शब्द का यमज रूप अर्थ भी है। वहाँ पर यमयमी दोनों पद से दोनों के द्वारा विवस्वत्सरण्वो: संगमेन जातं यमजापत्यद्वयं का ग्रहण किया जाता है।

ऋग्वेद में यम मृत्यु इस नाम से मृत्यु के अधिष्ठाता देव रूप से स्तुति की जाती है। मृत आत्मा को वह शरीर देता है। मृत्यु के बाद सभी मनुष्य उसके समीप ही जाते है। वैसे वेद भी कहता है – 'सङ्गमनं जनानाम्' (10.14.9) इति। वह हमारा पूर्वपुरुष, मृत्यु के बाद परे जो अमृतलोक का मार्ग पहले से ही जाना जाता है – 'यमो नो गातुं प्रथमो विवेद' (10.14.2) इति। और वहाँ जाकर के वह प्रेत लोक के अधिपति के रूप में जाने जाते है। वह ही मृत्यु के परे लोगों के लिए आश्रय का निर्देश किया है। वैसे वेद में भी कहा गया – 'यमो ददात्यवसानम् अस्मै' (10.14.9) इति। मृत्यु के परे लोगो के लिए वे जो स्थान आश्रय रूप से निर्देश किया वहाँ पर पिशाच आदि अशुभशक्ति युक्त अनिष्टविधान के लिए असमर्थ होते हैं। उसका अपना निवास स्थान स्वर्ग लोक है।

वैदिक मन्त्रों में वह वैवस्वत कहलाता है। निरुक्त में और बृहद्देवता में वह विवस्वत्सरण्वो के पुत्र के रूप में इस प्रकार का उपाख्यान प्राप्त होता है। सरमा वंशीय श्वान उसके दूत हैं। और वेश्वानचार नेत्रों से युक्त है। उनकी नाक विशाल और उनका वर्ण विचित्र है। मृत लोग जिस मार्ग से जाते है उस मार्ग के वे रक्षक है। वेद में कहा – 'पथिरक्षी' (10.14.11) इति। ये श्वान जैसे मृत लोग के विनाश के लिए समर्थ नही होते हैं, उस प्रकार की वैदिक ऋषियो के द्वारा प्रार्थना की गई है। और वेद में भी कहा गया है – 'ताभ्याम् एनं परि देहि राजन् स्वस्ति चास्मै अननीतं धेहि' (10.14.12) इति। और अन्ये कौशिक कपोतादय: अपि तस्य दूता:। (10.165. 4) इति।

ऋग्वेद मन्त्रों में उसे सभी जगह राजन् इस रूप में सम्बोधन किया गया है। वह लोगो के प्रभु है। अत मन्त्रो में उसे 'विश्पति:' कहलाता है। मृत लोग स्वर्ग लोक प्राप्त वरुण के साथ यमराज को भी आनन्द उपभोगरत के रूप में देखते है। वैसे वेद में भी कहा गया – 'उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यसि वरुणं च देवम्' (10.14.9) इति। सोमपायी इस नाम का भी कुछ मन्त्रो में उसकी स्तुति की गई। हमारे पूर्व पुरुषों के साथ एक जगह बैठकर वह सोमपान करते है। वैसे वेद भी कहते है – 'यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे देवै: संपिबते यम:' (10.135.1) इति।

वह सभी अच्छे कर्मो का और बुरे कर्मो के साक्षी रहता है। देवता प्राप्ति पितृदेवो के साथ उसका घनिष्ठ सम्बद्ध है। अग्निदेव के साथ भी उसकी मित्रता है। अग्नि यम का पुरोहित है। यम को इन्दो-ईरानीदेव यह भी लोक में सुने जाते हैं, क्योंकि ईरानी धर्म ग्रन्थों में आवेस्ता का उसका यम नाम अलग से प्राप्त होता है।

ऋषियो के द्वारा प्राकृतिक शक्ति यम की सृष्टि है ऐसा कल्पना नही किया गया है, अपितु

मृतको के अधिष्ठाता देव रूप से यम की कल्पना की गई है। यम सूक्त में यम ही प्रथम मरणशील कहा गया है, वह ही मृत्यु के द्वार का सबसे पहले अतिक्रान्त किया गया है। और मृतको के लिए मार्ग का अन्वेषण उन्होंने किया है। और वेद में भी कहा गया – 'परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्य: पन्थामनुपश्पशानम्' (10.14.1) इति।

यम यमी ये यमज भ्राता के मेल से ही मनुष्यों की उत्पत्ति की जो कथा सुनाई जाती है, वह महत्वपूर्ण नहीं है। यम सूक्त में भी उसका समर्थन नही किया गया है। भारतीय कभी भी उस प्रकार का चिन्तन नही करते है। अपितु संयम धन यम अपनी बहन को इस निन्द्य कर्मपाश से छुड़ाकर आशीर्वाद देता है। और जिससे वह कामवेग से शान्ता मुक्त होती है। और अन्त में लज्जित यमी अपने भाई यम के पैर में गिरकर क्षमा मांगती है। जिसके द्वारा रक्षित संयम धन और यमके द्वारा रक्षित भारतीय संस्कृति है।

पाठसार

इस पाठ में विद्यमान यमसूक्त के सोलह मन्त्रो के मूल विषय में सार रूप से कहा गया है। राजा यम का हवि के द्वारा अर्चना करते हुए यजमान कहता है। वह विवस्वत पुत्र कुछ मृत लोगों के मिलाप का स्थान है। यम ही हमारे जाने वाले मार्ग का ज्ञाता है। जिसका देवता संरक्षण करते है, और कुछ देवता को ये स्वाहा द्वारा और अन्यों को स्वधा द्वारा (हव्यदान से) आनन्दित होते है। वहाँ पर यम को उद्दिश्य करके कुश आसन पर बैठकर कहते हैं। उस यम को, यज्ञ पूजा के लिए, विविध रूप से युक्त अङगरा नामक पितृगण को यज्ञ स्थान में आने के लिए कहते है। अङिगरा नामक का, अथर्वा नामक का, भृगुनामक का, हमारे पितृगण के आने के लिए कहा जाता है। उनके शुभचिन्तन में हम जैसे बैठ सकते हैं वैसे ही प्रार्थना करते हैं। वहाँ पर मृत यजमान के प्रति कहते है अनादि काल से प्रवृत्त जिस मार्ग से हमारे पूर्वज जिस स्थान को गए, तुम भी उसी मार्ग से जाओ। वहाँ पर उनके पितरों से पूर्वजों के साथ मिलाप के लिए प्रार्थना की गयी है। वहाँ पर अशुभ शक्ति समूह को हटाने के लिए कहते हैं। वहाँ पर चार आँख वाले विशिष्ट कुत्ते का वर्णन प्राप्त होता है।

पाठागत प्रश्न

17. यम सूक्त का सार लिखो।
18. यम का वर्णन मन्त्र सहित करो।
19. अङ्गिरोभिरा... इस मन्त्र की व्याख्या करो।
20. परेयिवांसम्... इस मन्त्र की व्याख्या करो।
21. यौ तेश्वानौ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।
22. त्रिकद्रुकेभि:... इस मन्त्र की व्याख्या करो।
23. यमाय सोमम्... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर भाग - 1

24. यम वैवस्वत ऋषि है। देवता - यम, आङिगर पित्रथर्वभृगुसोम, लिङ्गोक्त देवता अथवा पितर है। छन्द- त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, और बृहती छन्द है।

25. प्र उपसर्ग से 'उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे' इससे स्वार्थ में वति प्रत्यय करने पर यह रूप बनता है।

26. विवस्वतः अपत्यं पुमान् इस विग्रह में अण प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में यह रूप बनता है

27. परा पूर्वक-इण्-धातु से क्वसु प्रत्यय करने पर द्वितीया एकवचन में यह रूप बनता है।

28. पूष्णः पोषक देव का चक्र अथवा शस्त्र का नाश नही होता है।

29. न्यून अर्थ में।

30. धन।

31. जन्-धातु से कानच प्रत्यय करने पर प्रथमा बहुवचन में यह रूप बनता है।

32. पूर्वैः कृतम् यहाँ पर पूर्वशब्द से य प्रत्यय करने पर अकार लोप होने पर भिस् को ऐस आदेश होने पर यह एत्व का रूप है।

33. साथ अर्थ में तृतीया।

उत्तर भाग - 2

34. तादर्थ्य में अथवा निमित्त अर्थ में।

35. अक्तु शब्द का तृतीया बहुवचन में यह रूप बनता है।

36. द्रु-धातु से मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप है।

37. तादर्थ्य में अथवा निमित्त अर्थ में।

38. जीवितुम् इस अर्थ में।

39. पूर्वजेभ्यः- पूर्वे जातः इति पूर्वजः, तेभ्यः।

ग्यारहवां पाठ समाप्त

टिप्पणी

12

शुन:शेपोपाख्यान-1

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति का मूल वेद है। वेद चार हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अर्थववेद। उन चारों वेदों में भी ऋग्वेद अत्यन्त प्राचीन है। ये सम्पूर्ण ऋग्वेद गद्यमय है। तथा ऋग्वेद में विद्यमान उपाख्यान ऋग्वेद के माहात्म्य को और भी अधिक बढाता है।

शुन:शेपोपाख्यानम् ऋग्वेद का अत्यन्तप्रसिद्ध आख्यान है। शुन:शेपोपाख्यानम् ऋग्वेद के अनेक सूक्तों में विद्यमान है (1/24-25)। इससे ये घटना सत्याश्रित प्रतीत होती है। ऐतरेयब्राह्मण में (7/3) ये आख्यान अतिविस्तार के साथ वर्णित है। इस उपाख्यान के आदि में हरिश्चन्द्र और विश्वामित्र का सम्बन्ध कल्पना करके बढ़ाकर बताया है। वरुण की कृपा से इक्ष्वाकु-राजा हरिश्चन्द्र के गृह में पुत्रोत्पन्न हुआ। वरुण को समर्पण के समय में हरीशचन्द्र का वन में पलायन, हरिश्चन्द्र को जलोदर रोग उत्पन्न होना, मार्ग में अजीगर्त के मध्यम पुत्र शुन:शेप का क्रय करना, देवताओं की कृपा से उसकी मृत्युपाश से मुक्ति और आगे चलकर विश्वामित्र द्वारा उसको दत्तकपुत्र स्वीकार करना आदि घटना का आख्यान अतिप्रसिद्ध है।

ये उपाख्यान बड़ा ही विस्तृत है। यद्यपि एक ही विषय से संबंधित होते हुए भी ये उपाख्यान तीन भागों की कल्पना करके तीन पाठों में वर्णित है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- शुन:शेपोपाख्यान को जान पाने में;
- शुन:शेपोपाख्यान के तात्पर्य को जान पाने में;
- वैदिक प्रयोग को जान पाने में;

- वैदिक और लौकिक प्रयोग में भेद कर पाने में;
- स्वयं ही मन्त्र की व्याख्या को कर पाने में;
- स्वयं ही श्लोकों का अन्वय करने में;
- सूक्त में स्थित व्याकरण को पाने में;
- मन्त्रों के सामान्य अर्थ को जान पाने में;

प्रथमखण्ड

12.1 मूलपाठ

हरिश्चन्द्रः ह वैधन ऐक्ष्वाको राजाऽपुत्र आस तस्य ह शतं
जाया बभूवुः तासु पुत्रं न लेभे तस्य ह पर्वतनारदौ गृहे
ऊषतुः स ह नारदं पप्रच्छ इति।

यं न्विमं पुत्रमिच्छन्ति ये विजानन्ति ये च न। किं स्वित्
पुत्रेण विन्दते तन्म आचक्ष नारदेति।।इति।

स एकया पृष्टो दशभिः प्रत्युवाच इति।

ऋणमस्मिन् संनयत्यमृतत्वं च गच्छति। पिता पुत्रस्य
जातस्य पश्येच्चेजीवतो मुखम्।। इति।

यावन्तः पृथिव्यां भोगा यावन्तो जातवेदसि। यावन्तो
अप्सु प्राणिनां भूयान् पुत्रे पितुस्ततः।। इति।

शश्वत् पुत्रेण पितरोऽत्यायन् वहुलं तमः। आत्मा हि जज्ञे
आत्मनः स इरावत्यतितारिणी।। इति।

किं नु मलं किमजिनं किमु श्मश्रुणि किं तपः। पुत्रं ब्रह्माण
इच्छध्वं स वै लोकेऽवदावदः।। इति।

अन्नं ह प्राण शरणं ह वासो रूपं हिरण्यं पशवो विवाहाः।
सखा ह जाया कृपणं ह दुहिता ज्योतिर्ह पुत्रः व्योमन्।। इति।

पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वा स मातरम्।

तस्यां पुनर्नवे भूत्वा दशमे मासि जायते।।इति।

तज्ज्या जाया भवति यदस्यां जायते पुनः। आभूतिरेषा भूतिर्वीजमेतन्नधीयते।।
इति।

देवाश्चैतामृषयश्च तेजः समभरन्महत्। देवा
मनुष्यानब्रूवन्नेषा वो जननी पुनः।। इति।

टिप्पणी

नापुत्रस्य लोकोऽस्तीति तत्सर्वे पशवो विदुः। तस्मात् पुत्रो मातरं स्वसारं चाधरोहति॥ इति।

एष पन्था उरुगायः सुशेवो यं पुत्रिण आक्रमन्ते विशोकाः। तं पश्यन्ति पशवो, वयांसि च तस्मात्ते मात्रऽपि मिथुनी भवन्ति। इति हास्मा आख्याय॥

द्वितीयखण्डः

अथैनमुवाच वरुणं राचानमुपधाव पुत्रे मे जायतां तेन त्वा यजा इति।

तथेति स वरुणं राजानमुपससार पुत्रे मे जायतां तेन त्वा यजा इति तथेति तस्य पुत्रे जज्ञे रोहितो नाम इति।

तं होवाचाजनि वै ते पुत्रे यजस्व मानेनेति स होवाच यदा वै पशुर्निर्दशो भवत्यथ स मेध्यो भवति निर्दशो न्वस्त्वथ त्वा यजा इति तथेति इति।

स ह निर्दश आस तं होवाच निर्दशो न्वभूद्यजस्व माऽनेनेति स होवाच यदा वै पशोर्दन्ता जायन्तेऽथ स मेध्यो भवति दन्ता न्वस्य जायन्तामथ त्वा यजा इति तथेति इति।

तस्य ह दन्ता जज्ञिरे तं होवाचाज्ञत वा अस्य दन्ता यजस्व माऽनेनेति स होवाच या वै पशोर्दन्ताः पद्यन्तेऽथ स मेध्यो भवति दन्ता न्वस्य पद्यन्तामथ त्वा यजा इति तथेति।

तस्य ह दन्ता पेदिरे तं होवाचापत्सत वा अस्य दन्ता यजस्व माऽनेनेति स होवाच यदा वै पशोर्दन्ताः पुनर्जायन्ते

अथ न मेध्यो भवति दन्ता न्वस्य पुनर्जायन्तामथ त्वा यजा इति तथेति।

तस्य ह दन्ताः पुनर्जज्ञिरे तं होवाचाज्ञत वा अस्य पुनर्दन्ता यजस्व माऽनेनेति स होवाच यदा वै क्षत्रियः सांनाहुको भवत्यथ मेध्यो भवति संनाहं नु प्राप्नोत्वथ त्वा यजा इति तथेति।

स ह संनाहं प्रापत्तं होवाच संनाहं नु प्राप्नोद्यजस्व माऽनेनेति स तथेत्युक्त्वा पुत्रमामन्त्रयामास ततायं वै मह्यं त्वामददाद्धन्त त्वयाऽहमिमं यजा इति।

स ह नेत्युक्त्वा धनुरायारण्यमुपातस्थौ स संवत्सरमरण्ये चचार।

प्रथमखण्ड

12.1.1 व्याख्या

हरिश्चन्द्रः ह वैधस ऐक्ष्वाको राजाऽपुत्र आस तस्य ह शतं जाया वभूवुः तासु पुत्रं न लेभे तस्य ह पर्वतनारदौ गृह ऊषतुः स ह नारदं पप्रच्छ इति।

व्याख्या- हरिश्चन्द्र यह नाम 'प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रावृषी' इस पाणिनीय सूत्र से राजर्षि है।और वे वेधस नृप के इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न पुत्रहीन राजा थे। उनके सौ पत्नियों में किसी से भी पुत्र प्राप्ति नहीं हुई। उस राजा के गृह में पर्वत और नारद नाम के दो ऋषि रहते थे। उनमें से राजा ने नारदऋषि को इस विषय में पूछा।

सरलार्थ- ईक्ष्वाकुवंशीय वेधस के पुत्र राजा हरिश्चन्द्र पुत्र विहीन थे। उनके सौ पत्नियाँ थी। परन्तु उनसे पुत्रलाभ नहीं हुआ। उनके गृह में पर्वत और नारद नाम के दो ऋषि थे। हरिश्चन्द्र ने उनमे से नारद को पूछा।

व्याकरण-

- आस- अस्-धातु लिट्-लकार प्रथमपुरुष एकवचन का रूप।
- गाथया- गाथा सर्वैः गातुं योग्या गीतिः। तया इति।

यं न्विमं पुत्रमिच्छन्ति ये विजानन्ति ये च न। किं स्वित् पुत्रेण विन्दते तन्म आचक्ष नारदेति।। इति।

व्याख्या- राजा नारद से प्रश्न करते है कि जो देव, मनुष्य आदि कुछ जानते हैं, वे विवेकज्ञानयुक्त है और जो पशु आदि कुछ नहीं जानते हैं, वे विवेकज्ञानरहित है। वे सब भी प्रिय पुत्र की कामना करते हैं। उस पुत्र से क्या चाहते है तथा उनका पिता कहलाने का प्रयोजन क्या है ? हे नारद मुझे उसका फल बताओ।

सरलार्थ-जो ज्ञानी और अज्ञानी है वे सब भी पुत्र की कामना करते हैं, उनको पुत्र से क्या लाभ है, मुझे बताओ।

टिप्पणी

व्याकरण-

- विजानन्ति -वि उपसर्गपूर्वक ज्ञा-धातु से लट्-लकार के प्रथमपुरुष बहुवचन का रूप।
- विदन्ते- विद्-धातु से लट्-लकार प्रथमपुरुष के बहुवचन का रूप।

स एकया पृष्टो दशभिः प्रत्युवाच इति।

व्याख्या- नारद ने एक प्रश्न पूछने पर दश गाथा प्रत्युत्तर में कही।

सरलार्थः-नारद ने एक प्रश्न पूछने पर दश बातों से उत्तर समझाते है।

व्याकरण-

- पृष्टः - प्रच्छ-धातु से तप्रत्ययान्तरूप।
- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार के प्रथमपुरुष एकवचन का रूप।

ऋणमस्मिन् संनयत्यमृतत्वं च गच्छति। पिता पुत्रस्य
जातस्य पश्येच्चेजीवतो मुखम्।। इति।

व्याख्या- पिता यदि उत्पन्न हुए जीवित और सुखी पुत्र का मुख देखता है तो उसको ऐसे पुत्र में अपने लौकिक और वैदिक ऋण संकेतित होते हैं। लौकिक अवस्था मे पुत्र पौत्र दि को ऋण अर्पण कर देने चाहिए ,ऐसा स्मृतिकार कहते हैं। तीन वैदिक ऋण होते हैं, ऐसा विद्वान मानते हैं। पुत्रप्राप्ति से संपत्ति के नामकरण का कर्म सम्पादित होता है। और उस कर्म के विषय में वाणसनेय ने भी कहा है -'**अथातः संपत्तिर्यदा प्रैष्यन् मन्यते अथ पुत्रमाह त्वं ब्रह्म त्वं यज्ञस्त्वं लोक इति। स पुत्रः प्रत्याहाहं यज्ञोहं लोक इति।** ब्रह्म मेरा कर्तव्य है वेदाध्ययन मेरा अनुष्ठान है और पंचमहायज्ञ मेरे संपाद्य कर्म उत्तम लोक के लिए हैं। ये सब पुत्र तेरे द्वारा संपादनीय है। ये पिता के वाक्य का अर्थ है। ये सब मैं संपादित करूंगा, पुत्र वाक्य का अर्थ है ।। आरण्यक काण्ड में भी संक्षिप्त रूप से बताया गया है - **सोस्यायमात्मा पुणेभ्यः कर्मभ्यः प्रतिधीयते इति।** इस प्रकार सभी ऋण पुत्र को समर्पित करता है तभी तत्वज्ञान सम्पादन से अमृतत्व और मरण रहित मुक्तिपद को प्राप्त करता है पुत्र को अर्पित लौकिक और वैदिक भार प्राप्त होता है, समस्त विघ्नों से छुटकर।

सरलार्थ- पिता यदि उत्पन्न और जीवित पुत्र का मुख दर्शन करे और पुत्र को समस्त वैदिक और लौकिक ऋण प्रदान करे तो अमृतत्व को प्राप्त होता है।

व्याकरण-

- गच्छति- गम् धातु से लट्-लकार, प्रथमपुरुष एकवचन में रूप।
- पश्येत्- दृश्-धातु से विधिलिङ्-लकार, प्रथमपुरुष एकवचन में रूप।

यावन्त: पृथिव्यां भोगा यावन्तो जातवेदसि। यावन्तो
अप्सु प्राणिनां भूयान् पुत्रे पितुस्तत:॥ इति।

व्याख्या- पृथिवी से भोग के रूप में सस्य निवास आदि है। जातवेदस् अग्नि से भोग के रूप में दहन पाचन आदि है। जल से स्नान पान आदि का भोग। प्राणियों के ये जितने भी भोग हैं, उन सब से बढ़कर एक पिता के लिए भोग पुत्र में विद्यमान होते हैं, क्योंकि वो अत्यन्त सुख का हेतु है। और भी कहा है -पुत्रोत्पत्ति और विपत्ति से अतिरिक्त कोई और सुख-दु:ख नहीं है।

सरलार्थ-जैसे पृथिवी पर प्राणीजन में जो भोग उपलब्ध है, अग्नि और जल में जो भोग उपलब्ध है, वैसे ही पिता के लिए सर्वाधिक भोगपुत्र में ही विराजमान है।

व्याकरण-

- भोगा: - भोग ये पुंलिङ्ग, अकारान्त प्रातिपदिक का प्रथमा बहुवचन का रूप है। भोगा: अर्थात भोग्य विषय समूह।
- अप्सु- अप् इति स्त्रीलिङ्ग में नित्य बहुवचनान्त प्रातिपदिक के सप्तमी बहुवचन का रूप है।

शश्वत् पुत्रेण पितरोऽत्यायन् वहुलं तम:। आत्मा हि जज्ञे
आत्मन: स इरावत्यतितारिणी।इति।

व्याख्या- पिता उत्पन्न पुत्र के लिए सर्वदा दोनों लोक (इहलोक और परलोक) में बहुत अधिक दु:ख सहन करता है। बौधायन ने कहा है - 'पुदिति नरकस्याख्या दु:खं च नरकं विदु:।' 'पुत्तस्तारणात्तत: पुत्रमिहेच्छन्ति परत्र च।' इति। और जिस कारण पिता से पुत्र उत्पन्न होने पर पिता स्वयमेव यज्ञ कहा जाता है फिर पिता जैसे स्वयं अपने दु:ख विनाश करे वैसे ही पुत्र भी इन दु:ख का विनाश करता है। वैसे ही वो पुत्र पृथ्वी पर अन्न के समान और नदी समुद्र आदि में नौका के समान है- जैसे नौका नद्यादि में दुर्घटना रहित यात्री को पार करवाती है, वैसे ही पुत्र भी इन लोकों के दु:खों से पार करवाता है।

सरलार्थ:- पिता सर्वदा (इहलोक और परलोक में) पुत्र के लिए बहुत दु:ख सहन करता है। जिससे आत्म रूप पितु के समीप पुत्र आत्मा की तरह जाता है। अत:एव पुत्र पिता के समीप दु:ख, दुर्घटना आदि से बचने के लिए योग्य अन्न युक्त और उत्कृष्ट नौका तुल्य है।

व्याकरण-

- जज्ञे- जनी(प्रादुर्भावे) इस लिट्-लकार धातु से प्रथमपुरुष एकवचन का रूप।
- आत्मा- आत्मन् नकारान्तप्रातिपदिक का प्रथमा एकवचन का रूप।

किं नु मलं किमजिनं किमु श्मश्रुणि किं तपः। पुत्रं ब्रह्माण
इच्छध्वं स वै लोकेऽवदावदः।इति।

व्याख्या- यहाँ मलाजिनश्मश्रुतपः शब्द से आश्रम चतुष्टय को कहा है। मलरूप शुक्ल और शोणित संयोग होने के कारण मलशब्द से गार्हस्थ्य को कहा है। कृष्ण अजिन संयोग से अजिन शब्द से ब्रह्मचर्य को कहा है।क्षौरकर्म से रहित होने से शाश्र शब्द से वानप्रस्थ को कहा है। मल को गार्हपत्य क्या नाम और क्या सुख नहीं करेगा।। हे ब्रह्माण! विद्वान विप्र क्षत्रिय आदि सभी तुम सब सुख के लिए पुत्र की कामना करो। ''स वै एव पुत्रोवदावदो लोकः। वदितुमयोग्यानि निन्दावाक्यान्यवदास्तैर्वाक्यैर्नोद्यन्ते न कथ्यन्ते इत्यवदावदः।'' अवदावदो दोष रहित अनिन्दा आदि को कहते हैं। ऐसे लोक का भोग हेतु पुत्र होता है। उन आश्रमों से अधिक पुत्र की इच्छा करनी चाहिए यद्यपि हरिश्चन्द्र ही यहाँ प्रष्टा है तथापि उनके साथ उनकी सभा में बहुत से ऋषि के होने से उनके लिए ब्रह्माण सम्बोधन है।

सरलार्थ- गार्हस्थ्य, ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और पारिव्राज अर्थात सन्यास से क्या होगा ? इसलिए हे विप्रगणों, तुम पुत्र की कामना करो, पुत्र ही आनन्दनीय है।

व्याकरणम्

- इच्छध्वम्- इष्-धातु से मध्यमपुरुष के बहुवचन में वैदिक रूप।
- अवदावदः - वदितुम् अयोग्यानि निन्दावाक्यानि अवदाः। तैः वाक्यैः न उद्यते न कथ्यते इति अवदावदः।

अन्नं ह प्राण शरणं ह वासो रूपं हिरण्यं पशवो विवाहाः।
सखा ह जाया कृपणं ह दुहिता ज्योतिर्ह पुत्रः व्योमन्।।
इति।

व्याख्या- अन्नादि लोक में सुख के हेतु के रूप में प्रसिद्ध है। जैसे कि शरीर में प्राणों की अवस्थिति के कारण अन्न ही प्राण हैं। वस्त्र शीत आदि उपद्रव से रक्षक होने से गृह के समान है। सोने के कुंडल, कर्णाभरणादि दृष्टि को प्रिय होने से सौन्दर्य के संपादक हैं। विवाह होने से गो, अश्व आदि पशु हमारे निर्वाहक हैं (पत्नी भोग में सहकारी होने से सखा के समान या सखि स्वरूप हैं। इस प्रकार ये सुख के हेतु प्रसिद्ध होते हुए भी तात्कालिक और अल्प सुख को देने वाले हैं। दुहिता या पुत्र केवल दुःखकारी होने से दैन्य का हेतु है। और कहा भी है-

संभवे स्वजनदुःखकारिका संप्रदानसमयेऽऽर्थहारिका।
यौवनेऽपि बहुदोषकारिका दारिका हृदयदारिका पितुः। इति।

पुत्र तो ज्योति स्वरूप और तमो निवारक होने से वह ही पिता को परम व्योम उत्कृष्ट आकाश में परब्रह्म स्वरूप में विराजित करता है। 'आकाशस्तल्लिङ्गादित्यनेन पूर्वमेवामृतत्वं च गच्छतीत्यत्र प्रतिपादितम्।'

सरलार्थः- अन्न ही प्राण है (प्राणधारण का सहायक), वस्त्र ही शरण है (आश्रय), हिरण्य ही रूप है (रूपोत्पादक), विवाह ही पशु लाभ का उपाय है। पत्नी सखि स्वरूप है, दुहिता या पुत्री दु:ख का हेतु है परन्तु पुत्र ही उत्कृष्ट ऊर्ध्वलोक में ज्योति स्वरूप है।

व्याकरणम्-

- सखा- सखिन् प्रातिपदिक का प्रथमा एकवचन का रूप।
- दुहिता- दुहितृ प्रातिपदिक का प्रथमा एकवचनका रूप।

पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वा स मातरम्।
तस्यां पुनर्नवे भूत्वा दशमे मासि जायते॥ इति।

व्याख्या- पति के दो आकार है। प्रथम वर्तमान पुरूषाकार और दूसरा रेतो रूप गर्भ में। जाया के भी दो आकार है। पतिरूप आकार जाया के लिए होता है। गर्भरूप आकार माता के लिए होता है। अत: स तादृश: पति: स्वयं रेतोरूपेण गर्भो भूत्वा पूर्वमवस्थितां जायां भविष्यदाकारेण मातरं सतीं प्रविशति। तस्यां मातरि पुनर्नवो भूत्वा पूर्वमन्यस्यां मातर्युत्पन्नो जरठ:। इदानीं पुनर्नूतनवालो भूत्वा तस्यामिदानीन्तन्यामस्यां मातरि गर्भ पाके सति दशमे मास्युत्पद्यन्ते तस्मात् पुत्र: स्वस्मादन्यो न भवति।

सरलार्थः- पति(रेतोरूप में) जाया में प्रवेश करता है, गर्भरूप से वह ही (भविष्यत्काल में विद्यमान) माता में प्रवेश करता है। और वो ही पुन: दशमास के भीतर उत्पन्न होता है।

व्याकरणम्-

- प्रविशति- प्र उपसर्ग पूर्वक विश्(प्रवेशने) अर्थक धातु से प्रथमपुरुष एकवचन में रूप।
- भूत्वा- भू- (सत्तायाम्) इत्यर्थक धातु कत्वाप्रत्ययान्तरूप।
- जायते- जनी(प्रादुर्भावे) इस धातु से प्रथमपुरुष एकवचन का रूप।

तज्ज्या जाया भवति यदस्यां जायते पुन:। आभूतिरेषा
भूतिर्वीजमेतन्निधीयते॥ इति।

व्याख्या- यदि इस कारण गर्भ धारीणी से पिता का पुत्र रूप में पुनर्जन्म होता है। इसी लिये लोक प्रसिद्ध जो जाया है वो 'जायतेऽस्यामिति व्युत्पत्ति' से जाया शब्द का वाचक होता है। और ये भूति अभूति शब्दों से जाने जाते हैं। भवत्यस्यांपुत्ररूपेण पतिरित्येषा भूतशब्दवाच्या रेतोरूपेणऽऽगत्यास्यां पुत्ररूपेण भवतीत्याभूतिशब्दवाच्या। एतदेतस्यां स्त्रियां बीजं रेतोरूपं निधीयते प्रक्षिप्यत् तस्मादुक्ता: शब्दा उपपद्यन्ते।

सरलार्थः- पति पत्नी से (पुत्र रूप में) पुन: उत्पन्न होता है। इसलिए पत्नी जाया (जाया इति आख्यां लभते) होती है। वो ही भूति और अभूति इन दो शब्दों द्वारा जानी जाती है। इसी में बीज स्थापित होता है।

टिप्पणी

व्याकरण-

- जायते- जनी(प्रादुर्भावे) इस धातु से प्रथमपुरुष के एकवचन का रूप।
- भवति- भू(सत्तायाम्) धातु से प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।

देवाश्चैतामृषयश्च तेजः समभरन्महत्। देवा
मनुष्यानब्रूवन्नेषा वो जननी पुनः॥ इति।

व्याख्या- एतामेतस्यां योषिति देवाश्च महर्षयश्च स्वकीयं महत्तेजो रेतोरूपं सारं समभरन् पुत्रोत्पादनाय संपादितवन्तः। स्वयमेव संपाद्य ततो मनुष्यानित्यब्रूवन्। हे मनुष्या जायारूपेण वर्तते सेयं युष्माकं पुत्ररूपे जन्मनि जननी भवति।

सरलार्थः- देव और मनुष्यों ने इसी (पत्नी गर्भ में) महातेज की स्थापना की, देवों ने मनुष्यों के लिए कहा - हे मनुष्यों ये पुनः तुम्हारी जननी होगी।

व्याकरण-

- अब्रूवन्- ब्रूञ्-धातु लङ्-लकार, प्रथमपुरुष बहुवचन का रूप।

नापुत्रस्य लोकोऽस्तीति तत्सर्वे पशवो विदुः। तस्मात्
पुत्रो मातरं स्वसारं चाधरोहति॥ इति।

व्याख्या- लोको लोकजन्यं सुखपुत्रस्य नास्ति। नहि पुत्रदर्शनेन यत्सुखं तदन्यदर्शनेन क्वचिदपि दृश्यते इति यदस्ति तत्सर्वे गोमहिष्यादयो जानन्ति यस्मात्तस्मादेव कारणात् पशुजातौ जातः पुत्रो वत्सः स्वकीयां मातरं भगिनीं वा पुत्रोत्पादनार्थमधिरोहति।

सरलार्थ- अपुत्र का कोई भी लोक नहीं होता है- यह विषय सभी पशु जानते हैं। इस कारण (पशुओं में) पुत्र अपनी जननी या भगिनी (पुत्रोत्पादनाय) से मिलता है।

व्याकरण-

- अस्ति- अस्-धातु का लट्-लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन का रूप।
- अधिरोहति- अधि उपसर्ग पूर्वक रुह्-धातु से प्रथमपुरुष एकवचन में रूप।

एष पन्था उरुगायः सुशेवो यं पुत्रिण आक्रमन्ते
विशोकाः। तं पश्यन्ति पशवो, वयांसि च तस्मात्ते
मात्राऽपि मिथुनी भवन्ति॥ इति हास्मा आख्याय॥

व्याख्या- पुत्रिण पुत्रवन्तो देवमनुष्यादयो विशोकाः शोकरहिताः सन्तो यं पन्थानं सुखानुभवरूपं मार्गमाक्रमन्ते प्राप्नुवन्त्येष पन्थाः पुत्रसुखानुभवरूपो मार्ग उरुगाय उरुभिर्महद्भिः शास्त्रज्ञैः राजामात्यादिभिश्च गीयते। तथा सुशेव सुष्ठु सेवितुं योग्यः सुखाधिक्यस्य विद्यमानत्वात्। तं

पुत्रसुखानुभवरूपं पशवो गवादयो वयांसि पक्षिणः संपश्यन्ति जानन्ति। तस्मात्ते पशुपक्ष्यादयः पुत्रसुखार्थं मात्र सह मिथुनीभवन्ति किं किमुतान्यया स्त्रिया सहेत्यर्थः।

इति (अनेन प्रकारेण) ह अस्मै (राज्ञे हरिश्चन्द्राय) आख्याय (अभिधाय) (स नारदः विरराम इति शेषः)।

सरलार्थः- पुत्रवान् लोग शोक रहित होकर जिस मार्ग को स्वीकार करते है वो ही मार्ग सब लोगों द्वारा प्रशंसनीय है और अच्छी प्रकार सेवन करने योग्य है। पशु और पक्षि इस विषय में जानते है। इसीलिये वे अपनी माता से मिलते है। नारद ऋषि ने हरिश्चन्द्र को ये सब कहा।

व्याकरण-

- पश्यन्ति- दृश्-धातु से लट्-लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन का रूप।
- भवन्ति- भू-धातु से लट्-लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन का रूप।
- आक्रमते- आङ् उपसर्ग पूर्वक क्रमु-धातु से प्रथमपुरुष, एकवचन का रूप।

पाठगत प्रश्न

40. हरिश्चन्द्र किसके पुत्र थे ?
41. हरिश्चन्द्र का पुत्र था अथवा नहीं?
42. हरिश्चन्द्र की कितनी पत्नियां थी?
43. हरिश्चन्द्र के गृह में कौन ऋषि थे ?
44. उन ऋषियों में किस ऋषि से हरिश्चन्द्र ने पुछा ?
45. नारद ने कितनी गाथाओं में उत्तर दिया ?
46. पिता के पास किसमें सर्वाधिक भोग होता है ?
47. प्राणतुल्य कौन है ?
48. शरण क्या है ?
49. भूति और आभूति ये दो शब्द किसके वाचक है ?

द्वितीयखण्ड

12.1.2 इदानींमूलपाठम्अवगच्छाम

अथैनमुवाच वरुणं राचानमुपधाव पुत्रे मे जायतां तेन त्वा यजा इति।

व्याख्या- पुत्र के लाभ का प्रतिपादन एवं नारद उपर्युक्त दश गाथा कहकर अब पुत्र जन्म के उपाय का उपदेश वाक्य यहाँ प्रस्तुत है -

अथ पुत्रेच्छानिमित्तकथनानन्तरमेनं पुत्रार्थिनं हरिशचन्द्रं नारद उवाच। हे हरिशचन्द्र वरुणं राजानमुपधार प्रार्थयस्व। येन प्रकारेण निश्चयः सोऽभिधीयते। हे वरुण त्वत्प्रसादान्मे पुत्रे जायतां ततस्तेन पुत्रेण त्वां यजै त्वामुद्दिश्य यज्ञं करवाणीति।

सरलार्थ-उसके बाद नारद ने हरिश्चन्द्र को कहा -आप वरुण राजा से प्रार्थना करो कि मुझे पुत्र प्राप्ति हो जाये। उससे (पुत्र से) मैं तुम्हारे लिए याग करूंगा।

व्याकरण-

- उवाच - वच्-धातु लिट्-लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन का रूप।
- जायताम्- जनी (प्रादुर्भावे) धातु से लोट्-लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन का रूप।

तथेति स वरुणं राजानमुपससार पुत्रे मे जायतां तेन
त्वा यजा इति तथेति तस्य पुत्रे जज्ञे रोहितो नाम इति।

व्याख्या- नारदोपदेश को स्वीकार किया हरिशचन्द्र वरुण को प्रसन्न करने के लिए प्रार्थना करता है। वरुण भी उसको पुत्र के लिए वर देते हैं- तथाऽस्तु। और उस वरुण के प्रसाद स्वरूप उत्पन्न पुत्र का नाम ही रोहित था।

सरलार्थ - वैसे ही करूंगा। ऐसा कहकर राजा हरिश्चन्द्र ने वरुण से प्रार्थना की कि- मेरे पुत्र हो जाए, उससे तेरा याग करूंगा। (वरुण ने कहा) तथैव भवतु। बाद में हरिश्चन्द्र के रोहित नामक एक पुत्र रत्न का जन्म हुआ।

व्याकरणम्-

- जायताम्- जनी (प्रादुर्भावे) धातु से लोट्-लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन का रूप।
- जज्ञे- जनी(प्रादुर्भावे) धातु से लिट्-लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन का रूप।

तं होवाचाजनि वै ते पुत्रे यजस्व मानेनेति स होवाच
यदा वै पशुर्निर्दशो भवत्यथ स मेध्यो भवति निर्दशो
न्वस्त्वथ त्वा यजा इति तथेति इति।

व्याख्या- इस प्रकार अनेक प्रकार से वरुण का कथन और हरिशचन्द्र का प्रतिकथन दोनों का प्रति पादन करते है। प्रथम रूप इसप्रकार है -

प्रकार हरिशचन्द्र ने उस वरुण को कहा। हे हरिशचन्द्र तेरे पुत्रउत्पन्न होने पर उस पुत्र से मेरे लिए याग करो। इसप्रकार वरुण के कहने पर हरिशचन्द्र ने पुनः कहा। याग के लिए जैसे पशु

निर्देश है वैसा ही वह पशुर्मेध याग के योग्य है। निर्गतान्यशौचदिनानि दशसंख्याकानि यस्मात् पशोः सोऽयं निर्देशः। तस्मादयं नु क्षिप्रं निर्देशोऽस्तु। अथानन्तरं त्वा प्रत्यहं यजा इत्यतद्वाक्यं वरुणस्तथाऽस्त्वित्यङगीचकार।

सरलार्थः- (बाद में) वरुण ने हरिश्चन्द्र को कहा -तेरे पुत्र हुआ है उससे मेरे लिए याग करो। हरिश्चन्द्र ने कहा - (जन्म के बाद) दशदिन बाद में ही पशुमेध्ययाग होता है। अतः शीघ्र दश दिन हो, उसके बाद तेरे लिए याग करूंगा। वरुण ने कहा - वैसा ही हो।

व्याकरण-

- उवाच- वच- धातु लिट्-लकार प्रथमपुरुष एकवचन का रूप।
- भवति- भू (सत्तायाम्) धातु से लट्-लकार प्रथमपुरुष एकवचन का रूप।

स ह निर्दश आस तं होवाच निर्दशो न्वभूद्यजस्व
माऽनेनेति स होवाच यदा वै पशोर्दन्ता जायन्तेऽथ स
मेध्यो भवति दन्ता न्वस्य जायन्तामथ त्वा यजा इति
तथेति इति।

व्याख्या- दशदिनाशौचापगमे शुद्धत्वाद्यथा यागयोग्यत्वं तथा दन्तोत्पन्नत्वादयवसंपूर्त्या यागयोग्यत्वमित्यभिप्रायः। स्पष्टमन्यत्।

सरलार्थ-उस रोहित के दश दिन समाप्त हो जाने पर वरुण ने हरिश्चन्द्र को कहा - दश दिन हो चुके है, अब तुम याग करो। हरिश्चन्द्र ने कहा -जब पशुदन्त वाला होता है तब वह मेध्य होता है। इसके दांत आ जाए तब हम याग करेंगे। वरुण ने कहा -तथैवास्तु।

व्याकरण-

- जायन्ते- जनी(प्रादुर्भावे) धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में रूप।
- भवति- भू(सत्तायाम्) धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- जायन्ताम्- जनी(प्रादुर्भावे) धातु से लोट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप।
- उवाच- वच्- धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।

तस्य ह दन्ता जज्ञिरे तं होवाचाज्ञत वा अस्य दन्ता
यजस्व माऽनेनेति स होवाच या वै पशोर्दन्ताः पद्यन्तेऽथ
स मेध्यो भवति दन्ता न्वस्य पद्यन्तामथ त्वा यजा इति
तथेति।

व्याख्या-अज्ञत वै जाता एव। पद्यन्ते पतन्ति। प्रथमोत्पान्नानां दन्तानमस्थायित्वेन मुख्यप श्वव्वयवत्वाभावात्तत्पाते सति पशोर्मेध्यत्वम्।

टिप्पणी

सरलार्थः-उसके बाद उसके दांत आ गये। वरुण ने हरिश्चन्द्र को कहा -इसके दांत आ गये अब तो मेरे लिए इससे याग करो। हरिश्चन्द्र ने कहा -जब पशु के दन्त गिरते है तब वो मेध्य अर्थात यज्ञ में बलि के योग्य होता है, इसके दांत गिरने दो तब तुम्हारे लिए इससे याग करूंगा। (वरुण ने कहा -तथैवास्तु)।

व्याकरण-

- उवाच- वच्- धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- जज्ञिरे- जनी इस धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप।
- पद्यन्ते - पद-गतौ धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप।
- पद्यन्ताम्- पद-गतौधातु से लोट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप।

तस्य ह दन्ता पेदिरे तं होवाचापत्सत वा अस्य दन्ता
यजस्व माऽनेनेति स होवाच यदा वै पशोर्दन्ताः पुनर्जायन्ते
पुद्यन्तेऽथ
अथ न मेध्यो भवति दन्ता न्वस्य पुनर्जायन्तामथ त्वा
यजा इति तथेति।

व्याख्या-अपत्सत वै पतिताः। पुनरुत्पन्नानां दन्तानां स्थिरत्वेन संपूर्णावयवत्वात् पशोर्मेध्यत्वम्।

सरलार्थः-अब उस रोहित के दांत गिर चुके थे - वरुण ने हरिश्चन्द्र को कहा इसके दन्त गिर चुके है अब तो इससे मेरे लिए याग करो। तब हरिश्चन्द्र ने कहा जब पशु के दांत पुनः उत्पन्न हो जाए तब वो मेध्य होता है। अतः इसके दन्त पुनः उत्पन्न हो जाए तब तेरे लिए याग करूंगा। वरुण ने कहा -तथैवास्तु।

व्याकरण-

- जायन्ताम् -जनी प्रादुर्भावे धातु से लोट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप।
- भवति- भू(सत्तायाम्) धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- जायन्ताम्- जनी(प्रादुर्भावे) धातु से लोट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप।

तस्य ह दन्ताः पुनर्जज्ञिरे तं होवाचाज्ञत वा अस्य
पुनर्दन्ता यजस्व माऽनेनेति स होवाच यदा वै क्षत्रियः
सांनाहुको भवत्यथ मेध्यो भवति संनाहं नु प्राप्नोत्वथ
त्वा यजा इति तथेति।

व्याख्या-अज्ञात वै जाता एव। पश्वन्तरस्य पुनर्दन्तोत्पत्तिक्रमेण मेध्यत्वेऽप्यस्य पशोः क्षत्रियत्वात् स्वजात्युचितधनुर्वाणकवचादिलसहनाहशीलित्वे सति जात्युचितव्यापारसंपूर्तौ मेधात्वम्। तस्मान्नु

क्षिप्रमेवासौ संनाहं प्राप्तोत्वन्तरमेव यजा इत्युत्तरं वरुणोऽङ्गीचकार।

सरलार्थ:-उस रोहित के दन्त पुन: उत्पन्न हो गये। वरुण ने हरिश्चन्द्र को कहा -इसके दन्त पुन: उत्पन्न हो गये। अब इससे मेरे लिए याग करो। हरिश्चन्द्र ने कहा -क्षत्रिय जब सन्नाहुक अर्थात् धनुष बाण कवच आदि पर अधिकार कर ले तब वो मेध्य होता है। मेरा पुत्र सन्नाहुक हो जाए तब तेरे लिए याग करूंगा। वरुण ने कहा-तथैवास्तु।

व्याकरण-

- उवाच- वच्- धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- जज्ञिरे- जनी धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप।
- प्राप्नोति- प्र उपसर्गपूर्वक आप्-धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।

स ह संनाहं प्रापत्तं होवाच संनाहं नु प्राप्नोद्यजस्व
माऽनेनेति स तथेत्युक्त्वा पुत्रमामन्त्रयामास ततायं वै
मह्यं त्वामददाद्धन्त त्वयाऽहमिमं यजा इति।

व्याख्या- संनाहप्राप्तोरुर्द्ध्वं स हरिशचन्द्रो वरुणोक्तिमङ्गीकृत्य पुत्रमामन्त्र्यैवमुवाच। उपलालनार्थं पुत्रे पिततृवाचितशब्दप्रयोग:। हे तात हे पुत्रय एव वरुणो मह्यं त्वां पुत्रवरेण दत्तवान्। हन्त दुष्टोऽहमिमं वरुणं यत्त्वया पुत्रेण यजै यागरूपां करवाणीति हरिशचन्द्रस्योक्ति:।

सरलार्थ:-उसके बाद वह बालक सन्नाहुक हो गया। तब वरुण ने हरिश्चन्द्र को कहा - ये अब सन्नाहुक हो गया। अत: अब इससे मेरे लिए याग करो। राजा हरिश्चन्द्र ने कहा -तथैव भवतु अर्थात वैसा ही हो। ऐसा कहकर पुत्र को बुलाकर बोले -वत्स!ये वरुणदेव है जिन्होंने तुझे मुझको प्रदान किया है। अब तुझसे वरुण के लिए याग करना है।

व्याकरणम्-

- उवाच- वच्- धातु लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- प्राप्नोति- प्र उपसर्ग पूर्वक आप्-धातु से लट्-लकार प्रथमपुरुषएकवचन का रूप।
- यजस्व - यज् इत्यर्थक लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन का रूप।

स ह नेत्युक्त्वा धनुरायारण्यमुपातस्थौ स संवत्सरमरण्ये चचार।

व्याख्या-स ह स खलु रोहिताख्य: पुत्र: पितृवाक्यं निषिध्य स्वरक्षणार्थं धनु: स्वीकृत्याहरणं प्रत्युपगतोऽभूत्। कलस्मिश्चिदरण्यो नैरन्तर्येन स रोहित: संवत्सरं चचारेति।

सरलार्थ:-ऐसा कभी नहीं होगा, ऐसा कहकर वो रोहित धनुष उठाकर वन को चला गया। और फिर एकवत्सर तक वह अरण्य में घूमता रहा।

व्याकरण-

- चचार - चर-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- उक्त्वा - वद्-धातु से क्त्वा प्रत्ययान्त रूप।

पाठगत प्रश्न

50. इस पाठ में किसकी कथा वर्णित है ?
51. हरिश्चन्द्र ने राजा वरुण से क्या प्रार्थना की ?
52. हरिश्चन्द्र ने किसके लिए याग किया ?
53. पशु मेध्य याग का कब अनुष्ठान किया जाता है ?
54. कैसे पशु पशु मेध्य याग के योग्य होता है ?
55. हरिश्चन्द्र को किसने कहा कि अब इसके दन्त आ गये।
56. कौन धनुष लेकर अरण्य में चला गया ?
57. सन्नाहुक: का क्या अर्थ है ?
58. हरिश्चन्द्र ने अपने गृह में ठहरे हुए नारदर्षि को क्या पूछते है ?
59. हरिश्चन्द्र किसको प्रत्युत्तर देते है ?

पाठसार

इस पाठ में एक उपाख्यान है।जिसमे शुन:शेपोपाख्यान में हरिश्चन्द्र कथा वर्णित है। हरिश्चन्द्र की यद्यपि सौ पत्नियां थी फिर भी किसी के भी पुत्र नहीं था। तब वो अपने घर में रहने वाले नारदर्षि को पूछा। उन्होंने दश गाथा में प्रत्युत्तर दिया। उन्होंने विविध प्रकार से पुत्र का माहात्म्य बताते है। इस प्रकार सभी मन्त्रो से स्पष्ट है कि पुत्र सर्वाधिकभाग्य का विषय है पिता के लिए निकट होने से।

पाठांत प्रश्न

60. शुन: शेपोपाख्यान का सार लिखो ?

शुन:शेपोपाख्यान-1

61. हरिश्चन्द्रो ह वैधस... इस शुन:शेपोपाख्यान अंश का सायणभाष्य के अनुसार व्याख्या करो।

62. अन्नं ह प्राण:... इस शुन:शेपोपाख्यान अंश सायणभाष्य के अनुसार व्याख्या करो।

63. पतिर्जायां प्रविशति... इस शुन:शेपोपाख्यान अंश सायणभाष्य अनुसार व्याख्याकरो।

64. नापुत्रस्य... इस शुन:शेपोपाख्यान अंश सायणभाष्य अनुसार व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तरकूट-1

65. वेधस।

66. आम्।

67. सौ।

68. पर्वत और नारद।

69. नारद।

70. दश से।

71. पुत्र में।

72. अन्न।

73. वस्त्र।

74. पत्नी।

उत्तरकूट-2

75. हरिश्चन्द्र के।

76. मेरे पुत्र हो जाए।

77. वरुण को।

78. जन्म के बाद दशदिन व्यतीत हो जाने पर।

79. याग के लिए पशु का जैसा निर्देश होता है तब वह पशुर्मेध्य याग योग्य होता है।

80. वरुण।

81. रोहित।

82. कवच परिधान अर्थात धारण करने योग्य पुरुष।

83. सौ पत्नियां होने पर भी उसके कोई पुत्र नहीं था।

84. दश से।

बारहवां पाठ समाप्त

13

शुन:शेपोपाख्यान-2

प्रस्तावना

वेद में जैसे सूक्तो का वर्णन है, वैसे ही आख्यान का भी वर्णन प्राप्त होता है। इसी प्रकार का एक उपाख्यान है। वह शुन:शेप उपाख्यान इस नाम से प्रसिद्ध है। ऋग्वेद के ऐतरेयब्राह्मण का तैतीसवें अध्याय में इस उपाख्यान का वर्णन है। यह उपाख्यान अत्यधिक विशाल है। अत: यद्यपि एक ही विषय का वर्णन है, फिर भी उपाख्यान का तीन भागों की कल्पना करके तीन पाठों की रचना की है। तीनों पाठों में सम्पूर्ण उपाख्यान है ऐसा जानना चाहिए। पूर्वपाठ में शुन:शेप उपाख्यान पढ़ा है। वहाँ शुन:शेप उपाख्यान के पांच खण्डो में प्रथम खण्ड और दूसरे खण्ड का वर्णन किया गया है। इस पाठ में आप शुन:शेप उपाख्यान के तीसरे खण्ड और चौथे खण्ड को पढेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- शुन:शेप उपाख्यान को जान पाने में;
- शुन:शेप उपाख्यान पढ़ने से नीतिशिक्षा को प्राप्त कर पाने में;
- तीसरे खण्ड के विषय को जान पाने में;
- चौथे खण्ड के विषय को जान पाने में;
- अपने आप ही मन्त्रों की व्याख्या करने में समर्थ बन पाने में;
- अपने आप ही मन्त्रों का अन्वय आदि विषय को जान पाने में;
- मन्त्र में स्थित व्याकरण को जान पाने में।

टिप्पणी

तीसराखण्ड

13.1 अब मूलपाठ को पढ़ेंगे

अथ हैक्ष्वाकं वरुणो जग्राह तस्य होदरं जज्ञे तदु ह रोहितः शुश्राव सोऽरण्याद्ग्राममेयाय तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-

नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित शुश्रुम। पापो नृषद्वरो
जन इन्द्र इच्चरतः सखा चरैवेति॥

पुष्पिण्यौ चरतो जङ्घे भूष्णुरात्मा फलग्रहिः। शेरेऽस्य
सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताश्चरैवेति।

चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह तृतीयं संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरण्याद्ग्राममेयाय तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-

आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।

शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगश्चरैवेति॥ इति।
चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह चतुर्थं संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरण्याद् ग्राममेयाय तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।

उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरंश्चरैवेति इति।
चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह पञ्चमं संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरण्याद् ग्राममेयाय तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-

चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्वरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरंश्चरैवेति। इति।
चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह षष्ठं संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरण्याद् ग्राममेयाय तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-

तस्य ह त्रयः पुत्रः आसुः शुनःशेपः शुनोलाङ्गुल इति तं होवाच ऋषेऽहं ते शतं ददाम्यहमेषामेषामेकेनात्मानं निष्क्रीणा इति स ज्येष्ठं पुत्रं निगृह्णणान् उवाच न न्विममिति ने एवेममिति कनिष्ठं माता तौ ह मध्यमे

संपादयां चक्रतुः शुनःशेपे तस्य ह शतं दत्त्वा स तमादाय सोऽरण्याद् ग्राममेयाय इति।

स पितरमेत्योवाच तत हन्ताहमनेनात्मानं निष्क्रीणा इति स वरुणं राजानमुपससारानेन त्वा यजा इति तथेति भूयान् वै ब्राह्मणः क्षत्रियादिति वरुण उवाच तस्मा एतं राजसूयं यज्ञक्रतुं प्रोवाच तमेतमभिषेचनीये पुरुषं पशुमालेभे इति।

चौथाखण्ड

तस्य ह विश्वामित्रो होताऽहसीज्जदग्निरध्वर्युर्वसिष्ठो ब्रह्माऽयास्य उद्गाता तस्मा उपकृताय नियोक्तारं न विविदुः स होवाचाजीगर्तः सौयवसिर्मह्यमपरं शतं दत्ताहमेनं नियोक्ष्यामीति तस्मा अपरं शतं ददुस्तं स निनियोज इति।

तस्मा उपाकृताय नियुक्तायाऽऽप्रीताय पर्यग्निकृताय विशसितारं न विविदुः स होवाचाजीगर्तः सौयव-सिर्मह्यमपरं शतं दत्ताहमेनं विशसिष्यामीति तस्मा अपरं शतं ददुः सोऽसिं निःशान एयाय इति।

अथ ह शुनःशेप ईक्षांचक्रेऽमानुषामिव वै मा विशसिष्यन्ति हन्ताहं देवता उपधावामीति स प्रजापतिमेव प्रथमं देवतानामुपससार कस्य नूनं कतमस्यामृतानामित्येतयर्चा इति।

तं प्रजापतिरुवाचाग्निर्वै देवानां नेदिष्ठस्तमेवोपधावेति सोऽग्निमुपससाराग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानामित्येतयर्चा इति।

तमग्निरुवाच सविता वै प्रसवानामीशे तमेवोपधा-वेति स सवितारमुपससाराभि त्वा देव सवितरित्ये-तेन तृचेन इति।

तं सवितोवाच वरुणाय वै राज्ञे नियुक्तोऽसि तमे-वोपधावेति स वरुणं राजानमुपससारात उत्तराभिरेकत्रिंशता इति।

तं वरुण उवाचग्निर्वै देवानां मुखं सुहृ-
दयतमस्तं नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति
सोऽग्नि तुष्टावात उत्तराभिर्द्वाविमशत्या इति।

तमग्निरुवाच विश्वान्नु देवान्त्स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम
इति स विश्वान्देवांस्तुष्टाव नमो महद्‌भ्यो नमो
अर्भकेभ्यो इत्येतयर्चा इति।

तं विश्वे देवा ऊचुरिन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो
वलिष्ठः सहिष्ठः सत्तमः पारयिष्णुतमस्तं
नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति स इन्द्रं तुष्टाव
यच्चिद्धि सत्य सोमपा इति
चैत्येन सूक्तेनोत्तरस्य च पञ्च दशभिः इति।

तस्मा इन्द्र स्तूयमानः प्रीतो मनसा हिरण्यरथं
ददौ तमेतया प्रतीयाय शश्वदिन्द्र इति इति।

तमिन्द्र उवाचाश्विनौ नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति
सोऽश्विनौ तुष्टावात उत्तरेण तृचेन इति।

तमश्विना उचतुरुषसं नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति
स उषसं तुष्टावात उत्तरेण तृचेन। इति

तस्य ह स्मर्च्यृच्युक्तायां वि पाशो मुमुचे कनीय
ऐक्ष्वाकस्योदरं भवत्युत्तमस्यामेवर्च्युक्तायां वि पाशो
मुमुचेऽगद ऐक्ष्वाक आस॥ इति।

13.1.1 व्याख्या

**अथ हैक्ष्वाकं वरुणो जग्राह तस्य होदरं जज्ञे तदु ह
रोहितः शुश्राव सोऽरण्याद्‌ग्राममेयाय तमिन्द्रः पुरुषरूपेण
पर्येत्योवाच-**

व्याख्या- वचन भंग करने के कारण वरुण का कोप इक्ष्वाकु-वंशोत्पन्न हरिश्चन्द्र पर 'जलोदर' रोग बन कर टुटा।रोहित ने सुना तो पिता के मोह में उनसे मिलने अरण्य से ग्राम की ओर चला। वह वन से लौट ही रहा था कि मार्ग में उसे पुरुष वेशधारी इन्द्र ने उसे चरैवेति की सूक्ति के साथ अविश्रान्त रहते हुए शाश्वत विचरण का उपदेश दिया।।

सरलार्थ-उसके बाद वरुण ने इक्ष्वाकु वंशीय राजा को अधिकृत किया, उसको उदर रोग हो गया। रोहित ने यह समाचार सुना तो, वह अरण्य से ग्राम को आने लगा। (तब) इन्द्र पुरुष रूप में उसके समीप आकर बोले-

व्याकरण-

- उवाच- ब्रू- धातु से लिट्-लकार के प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- जज्ञे - जनी(प्रादुर्भावे) धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।

नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित शुश्रुम। पापो नृषद्वरो
जन इन्द्र इच्चरतः सखा चरैवेति॥ इति।

व्याख्या- हे रोहित! परिश्रम से थके व्यक्ति को ही विभिन्न प्रकार की श्री प्राप्त हो जाती है ऐसा हमने ज्ञानी जनों से सुना है। एक स्थान पर निष्क्रिय बैठे रहने वाले विद्वान् व्यक्ति तक को लोग तुच्छ मानते हैं। और विचरण में लगे जन का साथी तो इन्द्र होता है। अतः तुम चलते ही रहो ! चर एव ! चरैवेति !॥

अब इन्द्र और रोहित के संवाद में प्रथम पर्याय को दिखाकर द्वितीय पर्याय दिखाता है-

सरलार्थ- हे रोहित, हम सुनते हैं कि जो (भ्रमण से) श्रान्त नहीं होता है उसको बहुविध सम्पत्ति का लाभ नहीं होता है। और श्रेष्ठ जन भी मानव समाज में (एक स्थान में) स्थित होकर सब से अवज्ञात होकर क्लेश प्राप्त करते हैं।

व्याकरण-

- चर- चर (गतौ) धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- शुश्रुम- श्रु (श्रवणे) धातु से लिट्-लकार उत्तम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह द्वितीयं
संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरर्ण्याद्ग्राममेयाय तमिन्द्रः
पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-

व्याख्या- ब्राह्मण रूपी इन्द्र के इस वाक्य को सुनकर इस ब्राह्मण ने मेरे लिए कहा ऐसा सोचकर अरण्य में जाकर चरैवेति ऐसा करने लगा मन में ब्राह्म णवाक्य में महान् आदर करके पुनः एक संवत्सर अरण्य में विचरण करके फिर पिता को देखने के लिए ग्राम को आते हुए उसे देखकर पुनः इन्द्र ब्राह्मण के रूप में आकर उसे कहने लगा।

सरलार्थ- ब्राह्मण ने मुझे विचरण के लिए कहा ऐसा चिन्तन करके उस (रोहित ने) द्वितीय वर्ष भी अरण्य में ही विचरण किया। उसके बाद अरण्य से ग्राम की और आते समय पुरुष रूपी इन्द्र उसके समीप आकर बोला-

टिप्पणी

व्याकरण-

- चर – चृर (गतौ) धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष एक वचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- चचार – चर-धातू से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- अवोचत्- वच(परिभाषणे) धातू के लुङ्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

पुष्पिण्यौ चरतो जङ्घे भूष्णुरात्मा फलग्रहिः। शेरेऽस्य
सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताश्चरैवेति।

व्याख्या- निरंतर चलने वाले की जंघाए पुष्पित होती हैं, (अर्थात उस वृक्ष की शाखाओं-उपशाखाओं की भांति होती है जिन पर सुगन्धित एवं फलीभूत होने वाले फूल लगते हैं) और उसका शरीर (बढ़ते हुए वृक्ष की भांति फलों से पूरित होता है, अर्थात वह भी) फल ग्रहण करता है। प्रकृष्ट मार्गों पर श्रम के साथ चलते हुए उसके समस्त पाप नष्ट होकर सो जाते हैं (अर्थात निष्प्रभावी हो जाते हैं)। अतः तुम चलते ही रहो, विचरण करते ही रहो! चर एव ! चरैवेति !!।

तृतीय पर्याय को दर्शाता है-

सरलार्थ-जो जन पर्यटन करता है उसकी जाँघ सुनिर्मित होती हैं। एवं वह शोभन सम्पन्न होता है। उसका शरीर बढ़ता है। एवं वह आरोग्य आदि को प्राप्त करता है। उत्कृष्ट मार्ग में पर्यटन जनित श्रम से समस्त पाप विनष्ट होने पर वह शायित होता है। अतः तू विचरण कर।

व्याकरण-

- चर – चर् (गतौ) धातु के लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन यह रूप सिद्ध होता है।
- हताः – हन्-धातु का क्त प्रत्ययान्त रूप है

चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह तृतीयं
संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरण्याद्ग्राममेयाय तमिन्द्रः
पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-

व्याख्या- ब्राह्मण रूपी इन्द्र के इस वाक्य को सुनकर इस ब्राह्मण ने मेरे लिए कहा ऐसा सोचकर अरण्य में जाकर चरैवेति ऐसा करने लगा मन में ब्राह्मण वाक्य में महान् आदर करके पुनः एक संवत्सर अरण्य में विचरण करके फिर पिता को देखने के लिए ग्राम को आते हुए उसे देखकर पुनः इन्द्र ब्राह्मण के रूप में आकर उसे कहने लगा।

सरलार्थ- ब्राह्मण ने मुझे विचरण के लिए कहा ऐसा चिन्तन करके उस (रोहित ने) तृतीय वर्ष भी अरण्य में ही विचरण किया। उसके बाद अरण्य से ग्राम की और आते समय पुरुष रूपी इन्द्र उसके समीप आकर बोला-

व्याकरण-

- चर - चर् (गतौ) धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- चचार - चर्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- अवोचत्- वच्(परिभाषणे) धातु के लुङ्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठत:।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगश्चरैवेति इति।

व्याख्या- जो मनुष्य बैठा रहता है, उसका भग(भाग्य या सौभाग्य) भी रुका रहता है। जो उठ खड़ा होता है उसका सौभाग्य भी उसी प्रकार उठता है। जो पड़ा या लेटा रहता है उसका सौभाग्य भी सो जाता है। और जो विचरण में लगता है उसका सौभाग्य भी चलने लगता है। इसलिए तुम विचरण करते ही रहो! चर एव! चरैवेति!।।

सरलार्थ-जो जन आसनस्थ होता है उसका भाग्य भी आसनस्थ हो जाता है, जो उत्थित होता है उसका भाग्य भी उत्थित हो जाता है। जो सोता है उसका भाग्य भी सो जाता है। जो पर्यटन करता है उसका भाग्य भी सर्वदा विचरण करता रहता है। अत: तू सदा विचर।

व्याकरण-

- चर - चर् (गतौ) धातु के लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- तिष्ठत: - स्था- धातु के लट्-लकार प्रथम पुरुष द्विवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- शेते- शीङ्-धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह चतुर्थं
संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरण्याद् ग्राममेयाय तमिन्द्र:
पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-

व्याख्या- पूर्ववत्।(ब्राह्मण रूपी इन्द्र के इस वाक्य को सुनकर इस ब्राह्मण ने मेरे लिए कहा ऐसा सोचकर अरण्य में जाकर चरैवेति ऐसा करने लगा मन में ब्राह्मण वाक्य में महान् आदर करके पुन: एक संवत्सर अरण्य में विचरण करके फिर पिता को देखने के लिए ग्राम को आते हुए उसे देखकर पुन: इन्द्र ब्राह्मण के रूप में आकर उसे कहने लगा।)

सरलार्थ- ब्राह्मण ने मुझे विचरण के लिए कहा ऐसा चिन्तन करके उस (रोहित ने) चतुर्थ वर्ष भी अरण्य में ही विचरण किया। उसके बाद अरण्य से ग्राम की ओर आते समय पुरुष रूपी इन्द्र उसके समीप आकर बोला-

टिप्पणी

व्याकरण-

- चर - चर (गतौ) धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- चचार - चर-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- अवोचत्- वच(परिभाषणे) धातु के लुङ्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरंश्चरैवेति इति।

व्याख्या- शयन की अवस्था कलियुग के समान है, जगकर सचेत होना द्वापर के समान है, उठ खड़ा होना त्रेता के सदृश है, और उद्यम में संलग्न एवं चलन शील होना कृतयुग (सतयुग) के समान है। अतः तुम चलते ही रहो। चर एव! चरैवेति!।

पंञ्चम पर्याय को दिखाता है-

सरलार्थ-शयन की अवस्था कलियुग, जगकर सचेत होना द्वापर, उठ खड़ा होना त्रेता, कृत में विचरण से सम्पदा का लाभ होता है। अतः विचर।

(कलि, द्वापर, त्रेता, और कृत ये चार पौराणिक युग विभाग के नाम हैं। इनके उत्तरोत्तर श्रेष्ठ प्रतिपादन के लिए पुरुष की चार अवस्था प्रतिपादित हैं- निद्रा, जागरण, उत्थान, और विचरण। ये क्रम से पुरुष की ऊर्ध्वगति की सूचना देते हैं।)

व्याकरण-

- संपद्यते- सम् उपसर्ग पूर्वक पद् (गतौ) धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचनमें यह रूप सिद्ध होता है।
- चर - चर (गतौ) धातु के लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह चतुर्थं
संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरण्याद् ग्राममेयाय तमिन्द्रः
पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-

व्याख्या- पूर्ववत्।(ब्राह्मण रूपी इन्द्र के इस वाक्य को सुनकर इस ब्राह्मण ने मेरे लिए कहा ऐसा सोचकर अरण्य में जाकर चरैवेति ऐसा करने लगा मन में ब्राह्मण वाक्य में महान् आदर करके पुनः एक संवत्सर अरण्य में विचरण करके फिर पिता को देखने के लिए ग्राम को आते हुए उसे देखकर पुनः इन्द्र ब्राह्मण के रूप में आकर उसे कहने लगा।)

सरलार्थ- ब्राह्मण ने मुझे विचरण के लिए कहा ऐसा चिन्तन करके उस (रोहित ने) पञ्चम वर्ष भी अरण्य में ही विचरण किया। उसके बाद अरण्य से ग्राम की ओर आते समय पुरुषरूपी इन्द्र उसके समीप आकर बोला-

व्याकरण-

- चर - चर (गतौ) धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- चचार - चर-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- अवोचत्- वच(परिभाषणे) धातु के लुङ्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्वरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरंश्चरैवेति। इति।

व्याख्या- इधर उधर करते हुए मनुष्य को मधु प्राप्त होता है, उसे उदुम्बर सरीखे सुस्वादु फल मिलते हैं। सूर्य की श्रेष्ठता को तो देखो जो विचरण करते हुए जरा भी आलस्य नहीं करता है। उसी प्रकार तुम भी चलते रहो! चर एव! चरैवेति!

इस प्रकार इन्द्रके उपदेश से आचरण करते हुए रोहित के अपने जीवन और पिता के आरोग्यका कारण भूत श्रेय लाभ को दिखाया गया है-

सरलार्थ-जो जन विचरण करता है वह मधु (श्रेयवस्तु) प्राप्त करता है, वह मधु से स्वादु उदुम्वर नामक फल को प्राप्त करता है। जो सूर्य सतत विचरण करता हुआ भी आलस्य ग्रस्त नहीं होता है, उस सूर्य के महात्म्य का अवलोकन कर। अतः तू विचरण कर।

व्याकरण-

- चर - चर (गतौ) धातु के लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- चरन्- चर (गतौ) धातू का शतृ प्रत्ययान्त रूप है।
- विन्दति - विद् धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- पश्य - दृश् (दर्शने) धातु के लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह षष्ठं संवत्सरमरण्ये
चचार सोऽजीगर्तं सौयवसिमृषिमशनया परीतमरण्य
उपेयाय इति।

व्याख्या- छठे संवत्सर में पूर्ववत् अरण्य सञ्चारी उस रोहित ने किसी ऋषि को उस अरण्य में प्राप्त किया। उसकी भेंट अजीगर्त नामक सूर्यवस के पुत्र से हुए क्षुत्पीडित थे।

अजीगर्त और रोहित के मध्य संवाद दर्शाया गया है-

सरलार्थ- ब्राह्मण ने मुझे विचरण के लिए कहा ऐसा चिन्तन करके उस (रोहित ने) छठे वर्ष भी अरण्य में ही विचरण किया। उसके बाद अरण्य से ग्राम की और आते समय पुरुष रूपी इन्द्र उसके समीप आकर बोला-

व्याकरण-

- चर - चर (गतौ) धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- चचार - चर-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- अवोचत्- वच(परिभाषणे) धातु के लुङ्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

तस्य ह त्रयः पुत्राः आसुः शुनःपुच्छः शुनःशेपः
शुनोलाङ्गुल इति तं होवाच ऋषेऽहं ते शतं
ददाम्यहमेषामेषामेकेनात्मानं निष्क्रीणा इति

स ज्येष्ठं पुत्रं निगृह्णान् उवाच न न्विममिति ने
एवेममिति कनिष्ठं माता तौ ह मध्यमे संपादयां चक्रतुः
शुनःशेपे तस्य ह शतं दत्त्वा स तमादाय सोऽरण्याद्
ग्राममेयाय इति।

व्याख्या-उस अजीगर्त के शुनःपुच्छादि नामक तीन पुत्र थे। पुत्रवान् ऋषि को रोहित ने कहा। हे ऋषि, तुझे मैं सौ गाय देता हूँ। और देकर मैं इसके बदले में पुत्रों में से किसी एक पुत्र को अपने देह से वरुण को निकालने में मूल्य देकर अपने आप को छुडाऊंगा। ऐसा कहने पर अजीगर्त ने अपने ज्येष्ठ पुत्र शुनःपुच्छ नामक को हाथ से पकड़कर अपने समीप खींचते हुए रोहित को कहा। तुझे एक पुत्र देता हूँ परन्तु यह शुनःपुच्छ तो नहीं देता हूँ। मेरे प्रियत्व के कारण। उसके बाद माता कनिष्ठ पुत्र को हाथ में पकड़ कर बोली। इस शुनो लाङ्गूल मेरे प्रिय को तो हम किसी भी प्रकार न देंगे। उसके बाद उन दोनों माता पिता ने मध्यम पुत्र शुनःशेप को देकर दान को सम्पादित किया तथा अङ्गीकार भी किया। उसके बाद अजीगर्त को रोहित सौ गायें देकर तथा शुनःशेप को लेकर च पड़ा। तब रोहित शुनःशेप के साथ आरण्य से अपने ग्रामको आया।

उसके आगमन से पूर्व का वृत्तान्त दिखाया-

सरलार्थ-उसके (ऋषि अजीगर्त के) शुनःपुच्छ, शुनःशेप, तथा शुनोलाङ्गुल तीन पुत्र थे। उसने अजीर्गत को कहा- हे ऋषि मैं आपको एक सौ गायें देता हूँ, इसके बदले में इन पुत्रों में से एक निष्क्रिय को देकर मैं मुक्त हो जाऊंगा। (तब) अजीगर्त ज्येष्ठ पुत्र के समीप जाकर बोले इसको नहीं दूंगा। कनिष्ठ के समीप जाकर माता ने कहा कि इसको नहीं दूंगी। उन दोनों ने शुनःशेप को देने की स्वीकृति दे दी। तब उस ऋषि को एक सौ गायें देकर शुनःशेप को लेकर रोहित अरण्य से ग्राम को आगया।

व्याकरण-

- उवाच - वच्- धातु के लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- दत्त्वा - दा- धातु का क्त्वा प्रत्ययान्त रूप है।
- चक्रतुः - कृ-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष द्विवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

स पितरमेत्योवाच तत हन्ताहमनेनात्मानं निष्क्रीणा
इति स वरुणं राजानमुपससारानेन त्वा यजा इति तथेति
भूयान् वै ब्राह्मणः क्षत्रियादिति वरुण उवाच तस्मा एतं
राजसूयं यज्ञक्रतुं प्रोवाच तमेतमभिषेचनीये पुरुषं
पशुमालेभे॥ इति।

व्याख्या- वह रोहित पिता के समीप जाकर इस प्रकार बोला। हे तात पितर्हन्तावयोर्हर्ष सम्पन्न। मैं शुनःशेप के रूप में मूल्य देकर देकर अपने आप को छुड़ा रहा हूँ। ऐसा कहने पर हरिश्चन्द्र ने वरुण को कहा शुनःशेप ब्राह्मण से आपका याग करूँगा। वह वरुण भी उसको अङ्गीकार करके इस प्रकार बोला। तुझ क्षत्रिय के पुत्र से अद्रोहित होता हुआ भी यह ब्राह्मण मुझे अधिक प्रिय है। यह कहकर हरिश्चन्द्र को कर्त्तव्यत्वसे राजसूय का उपदेश दिया। हरिश्चन्द्र ने राजसूय के मध्य में अभिषेचनीय सोमयाग में शुनःशेपन पुरुष को पशु बनाने के लिए सवनीय पशुत्व से प्राप्त करवाने का निश्चय किया।

सरलार्थ- रोहित पिता के निकट जाकर बोला हे पिता मैं इस पुरुष को देकर अपनी मुक्ति चहाता हूँ। उसके बाद हरिश्चन्द्र ने राजा वरुण के समीप जाकर कहा कि मैं इस पुरुष से आपका याग करूँगा। वरुणबोला ठीक है। क्षत्रिय से ब्राह्मण अवश्य ही श्रेष्ठ है। ऐसा कहकर हरिश्चन्द्र को उसने राजसूय नामक यज्ञ के अनुष्ठान का उपदेश दिया। हरिश्चन्द्र ने भी अभिषेचनीय यज्ञ में शुनःशेप मनुष्य को पशु के रूप में आदिष्ट किया।

व्याकरण

- हन्ता - हन्-धातु के लुट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन यह रूप बनता है।
- उवाच - वच्- धातु के लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

टिप्पणी

- प्रोवाच - प्र उपसर्ग पूर्वक वच्- धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- आलेभे- आङ् उपसर्ग पूर्वक लभ्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न

85. उदर रोग किसको हुआ?
86. इन्द्र पुरुष के रूप में किसके समीप आये?
87. वरुणने किसको कहा कि मुझे उदर रोग हो गया?
88. कौन अरण्य से ग्राम के प्रति आया?
89. किसका भाग्य आसनस्थ होता है?
90. किसका भाग्य उत्थित होता है?
91. किसका भाग्य शयित होता है?
92. किसका भाग्य सर्वदा विचरण करता है?
93. रोहित कितने वर्ष अरण्य में विचरण करता है?
94. जो जन विचरण करता है वह किस वस्तु को प्राप्त करता है?

13.1.2 व्याख्या

तस्य ह वि श्वामित्रो होताहहसीज्जदग्निरध्वर्युर्वसिष्ठो ब्रह्माहयास्य उद्‌गाता तस्मा उपकृताय नियोक्तारं न विविदु: स होवाचाजीगर्त: सौयवसिर्मह्यमपरं शतं दत्ताहमेनं नियोक्ष्यामीति तस्मा अपरं शतं ददुस्तं स निनियोज इति।

व्याख्या- विश्वामित्र आदि हरिश्चन्द्र के याग राजसूय में होता आदि चार ऋत्विज थे। जमदग्नि अधवर्यु ने अभिशेचनीय सोमयाग में शुन:शेप को सवनीय पशुत्व से उपकृत किया। बहिर्युक्त प्लक्ष शाखा से मन्त्र पुर:सर समुपस्पृश्य उपाकरण को स्वीकार करा। उसके ऊपर युपबन्धन का नियोजन किया गया। उस क्रूरकर्म के नियोजन के लिए अध्वर्यु प्रवृत्त नहीं हुआ। तब उपाकृत हुए उपाकरण से संस्कृत शुन:शेप को यूप पर बांधने का क्रूर कार्य किसी ने स्वीकार नहीं किया। तभी सुर्यवस के पुत्र शुन:शेप के पिता अजीगर्त ने (कहा) पहले मुझे पूर्व कथित सौ गायें दे दो तो हे यजमान उसके बाद मैं शुन:शेप को खूंटे के बाँध दूंगा, मैं रशना कटी शिर

पैर रशनाग्र को यूप के बन्धन में नियोजन करूँगा। अतः अजीगर्त को सौ गायें दी। तथा शुनःशेप को अजीगर्त ने बाँधा।

सरलार्थ-उस हरिश्चन्द्र के विश्वामित्र होता, जमदग्नि अध्वर्यु, वशिष्ठ ब्रह्मा और उदगाता रहते हुए। उपाकरण के पश्चात् पशु का नियोक्ता अप्राप्त था। तब सूर्यवस के पुत्र अजीगर्त बोले, मुझे एक सौ गायें दो, मैं उसे खूंटे पर बांधता हूँ। हरिश्चन्द्र ने उसको एक सौ गायें दी। और उसने उसको वहाँ बाधाँ।

व्याकरण-

- उवाच - वच्- धातु के लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- दत्ता- दा-धातु का क्त प्रत्ययान्त रूप है।
- विविदुः - विद्-धातु के लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन यह रूप सिद्ध होता है।
- ददुः - दा-धातु के लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

तस्मा उपाकृताय नियुक्तायाऽऽप्रीताय पर्यग्निकृताय
विशसितारं न विविदुः स होवाचाजीगर्तः सौयव-
सिर्मह्यमपरं शतं दत्ताहमेनं विशसिष्यामीति तस्मा
अपरं शतं ददुः सोऽसिं निःशान एयाय इति।

व्याख्या- उस शुनःशेप के उपाकरण कर्म और नियोजन कर्म की समाप्ति के बाद आप्रीमन्त्र पाठ और पर्यग्निकरण अनुष्ठान की समाप्ति के बाद उसके हनन के लिए कोई भी प्राप्त नहीं हुआ। तब सूर्यवस का पुत्र अजीगर्त बोला मुझे एक सौ गायें और दे दो, तो मैं इसका वध कर दूँगा। हरिश्चन्द्र ने पुनः एक सौ गायें दी। वह भी गायों को लेकर तलवार को तीक्ष्ण करके वहाँ आगया।

पिता अजीगर्त (शुनःशेप) का वृत्तान्त दिखाता है --

सरलार्थ-उस शुनःशेप के उपाकरण कर्म और नियोजन कर्म की समाप्ति के बाद आप्री मन्त्रपाठ और पर्यग्नि करण अनुष्ठान की समाप्ति के बाद उसके हनन के लिए कोई भी प्राप्त नहीं हुआ। तब सूर्यवस का पुत्र अजीगर्त बोला मुझे एक सौ गायें और दे दो, तो मैं इसका वध कर दूँगा। हरिश्चन्द्र ने पुनः एक सौ गायें दी। वह भी तलवार को तीक्ष्ण करके गया।

व्याकरण-

- उवाच - वच्- धातु के लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन यह रूप सिद्ध होता है।
- दत्ता- दा-धातु का क्त प्रत्ययान्त रूप है।
- विविदुः - विद्-धातु के लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

- ददुः - दा-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप बनता है।
- एयाय- इन्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- विशसिष्यामि - वि उपसर्ग पूर्वक णिजन्त शस्-धातु से लृट्-लकार उत्तम पुरुष के एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

अथ ह शुन:शेप ईक्षांचक्रेऽमानुषामिव वै मा विशसिष्यन्ति हन्ताहं देवता उपधावामीति स प्रजापतिमेव प्रथमं देवतानामुपससार कस्य नूनं कतमस्यामृतानामित्येतयर्चा इति।

व्याख्या- अब पिता के अरण्य उद्योग के बाद शुन:शेप पुत्र मन में समीक्षा करते हुए विचार किया। ''अन्यत्र पर्यग्निकृतं पुरुषमारण्यांश्चोत्सृजन्ति''। अहिंसा की इस श्रुतिमें पर्यग्नि करणादूर्ध्व मनुष्य को छोड़ देता है। ये मेरा अमानव की तरह ही वध करेंगे। अहो मैं देवताओं की शरण में जाता हूँ। ऐसा चिन्तन करके वह देवों में मुख्य प्रजापति की 'कस्य नूनं कतमस्यामृतानाम्' इस ऋचा से उपासना की।

उस प्रजापति के सबकारित्व से अग्नि की सेवा को दिखाया है--

सरलार्थः- तब शुन:शेप चिन्तन करता है कि ये मेरा अमानव की तरह ही वध करेंगे। अहो मैं देवताओं की शरण में जाता हूँ। ऐसा चिन्तन करके वह देवों में मुख्य प्रजापति की 'कस्य नूनं कतमस्यामृतानाम्' इस ऋचा से उपासना की।

व्याकरण-

- ईक्षांचक्रे - अक्ष्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- विशसिष्यन्ति - वि उपसर्ग पूर्वक णिजन्त शस्-धातु से लृट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

तं प्रजापतिरुवाचाग्निर्वै देवानां नेदिष्ठस्तमेवोपधावेति सोऽग्निमुपससासाग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानामित्येतयर्चा इति।

व्याख्या- उस सेवक शुन:शेप को प्रजापति इस प्रकार बोले। अग्नि सभी देवताओं के नेदिष्ट हविर्वहन से अतिसमीपवर्ती है अत: उसका आश्रय लो। उसने (शुन:शेप ने) 'अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानाम्' इस ऋचा से अग्नि की उपासना की।

और उस अग्नि के सहकारित्व से सविता की उपासना दिखाई है--

सरलार्थ- प्रजापति ने उसको कहा- अग्नि ही देवों में निकटतम है। अत: उसका आश्रय लो। उसने (शुन:शेप ने) 'अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानाम्' इस ऋचा से अग्नि की उपासना की।

तमग्निरुवाच सविता वै प्रसवानामीशे तमेवोपधा-
वेति स सवितारमुपससाराभि त्वा देव सवितरित्येतेन
तृचेन इति।

व्याख्या- प्रसवों के सभी कार्यों में प्रेरणा रूप के अनुज्ञान से सविता ईश स्वामी हैं। अत: तू सविता की उपासना कर। उसने भी 'अभि त्वा देव सवित:' इस ऋचा से सविता की उपासना की।

और उस सविता के सहकारित्व से वरुण की उपासना दिखायी गयी है-

सरलार्थ- अग्नि ने (शुन:शेप को) उसको कहा कि सविता ही प्रेरणा दान में समर्थ है, अत: तू सविता की उपासना कर। उसने भी 'अभि त्वा देव सवित:' इस ऋचा से सविता की उपासना की।

तं सवितोवाच वरुणाय वै राज्ञे नियुक्तोऽसि तमे-
वोपधावेति स वरुणं राजानमुपससारात
उत्तराभिरेकत्रिंशता इति।

व्याख्या- हे शुन:शेप तू वरुणार्थ यूप पर बंधा हुआ है सविता ने उसको कहा, तू राजा वरुण के लिए यूप में बन्ध जा। तू उसी की उपासना कर। वह (शुन:शेप) भी पूर्वोक्त तीनों मन्त्रों के स्थान पर इकत्तीस ऋचाओं से वरुण देवता की उपासना की। न हि ते क्षत्रम् (1-24-6) इत्यादि सूक्त शेषभूत दशर्चो यच्चिद्धि ते विश: (1-29-1) इत्यादि इक्कीस ऋचा सूक्त इक्कतीस संख्या देखनी चाहिए।

उस वरुण के सहकारित्व से फिर भी अग्नि की उपासना दिखाता है-

सरलार्थ- सविता ने उसको कहा, तू राजा वरुण के लिए यूपमें बन्ध जा। तू उसी की उपासना कर। वह (शुन:शेप) भी पूर्वोक्त तीनों मन्त्रों के स्थान पर इकत्तीस ऋचाओं से वरुण देवता की उपासना की।

तं वरुण उवाचग्निर्वै देवानां मुखं सुहृ-
दयतमस्तं नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति
सोऽलग्न तुष्टावात उत्तराभिर्द्वाविमशत्या इति।

व्याख्या- यह अग्नि सभी देवताओं का मुख और मुख स्थानीय है। अग्नि के द्वारा ही सभी देव आहुति स्वीकार करते हैं। अत: प्रीति के हविर्वहन से अतिशय से सुहृदय है। सुहृदय उस अग्नि की तू शीघ्र ही स्तुति कर ऐसा वरुण ने कहा। उसके बाद ही तुझे मैं मोक्ष दूंगा। तब उसने वायस ऋचाओं से अग्नि की स्तुति की कृतवान्।वसिष्वाहीत्यादिकं (6-26-5) दशर्चं सूक्तम्। अश्वं नत्वा (1-27-1) इत्यादि तेरह ऋचा सूक्त है। अग्नि के सहकारित्व से विश्व के सभी देवताओं की उपासना दिखाई गई है --

सरलार्थ:- वरुण ने उस (शुन:शेप को) कहा- अग्नि ही देवों में मुख्य है, वही श्रेष्ठ सुहृत्

है, अत: शीघ्र ही उसको उद्देश्य करके स्तुति कर। उसके बाद ही तुझे मैं मोक्ष दूंगा। तब उसने वापस ऋचाओं से अग्नि की स्तुति की कृतवान्।

व्याकरण-

- उवाच - वच्- धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- उत्स्रक्ष्याम: - उत् पूर्वक सृज्(विसर्गे) धातू से लृट्-लकार उत्तम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- तुष्टाव - ष्टुञ् (स्तुतौ) धातू के लिट्-लकार उत्तम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

तमग्निरुवाच विश्वान्नु देवान्त्स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम
इति स विश्वान्देवांस्तुष्टाव नमो महद्भ्यो नमो
अर्भकेभ्यो इत्येतयर्चा इति।

व्याख्या- यद्यपि वरुण के पाश से बन्धे हुए शुन:शेप को वरुण ही छुड़ा सकता था तथापि अग्नि आदि का सहकारित्व वचन दृढ़ता के लिए द्रष्टव्य है। विश्वेदेव गणरूप नहीं होते हैं उसके बाद 'नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्य:' इत्यादि ऋचाओं से विश्वेदेवताओं की स्तुति की।

और उन विश्वे देवताओं के सहकारित्व से इन्द्र की उपासना दिखायी गई है-

सरलार्थ- (तब) अग्नि ने उसको कहा, तू विश्वेदेवताओं की स्तुति कर, तो मैं तुम्हे मोक्ष दूंगा। उसके बाद 'नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्य:' इत्यादि ऋचाओं से विश्वेदेवताओं की स्तुति की।

व्याकरण-

- उवाच - वच्- धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- उत्स्रक्ष्याम: - उत् पूर्वक सृज्(विसर्गे) धातु से लृट्-लकार उत्तम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- तुष्टाव - ष्टुञ् (स्तुतौ) धातु के लिट्-लकार उत्तम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

तं विश्वे देवा ऊचुरिन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो
वलिष्ठ: सहिष्ठ: सत्तम: पारयिष्णुतमस्तं
नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति स इन्द्रं तुष्टाव
यच्चिद्धि सत्य सोमपा इति
चैत्येन सूक्तेनोत्तरस्य च पञ्च दशभि: इति।

व्याख्या- ओडोवल आदिशव्द पूर्वाचार्यो के द्वारा ही व्याख्यात है--

ओजो दीप्तिर्वलं दाक्ष्यं प्रसह्यकरणं सहः।
सुजनः सन्यारयिष्णुरुपक्रान्तसमाप्तिकृत।इति

इष्ट प्रत्ययतमप्प्रत्ययों से वहाँ अतिशय कहते हैं। वैसे इन्द्र की सत्य सोमपा ने सप्तर्च सूक्त से इन्द्र इत्यादि बाईस ऋचाओं के सूक्त में पन्द्रह ऋचाओं से की। इन्द्र ही देवताओं में सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न है, दैहिक बल युक्त है, और सहायक श्रेष्ठ कर्म कारक है। तू उसी की स्तुति कर। तो तुझे हम मोक्ष देंगे। उस शुन:शेप ने 'यच्चिद्धि सत्य सोमपा:' इत्यादि सूक्तों से और उसके बाद विद्यमान पचास मन्त्रों से इन्द्र की स्तुति की।उस उपदेश के फलपर्यवसायित्व का अनुस्मरण करते हुए इन्द्र से शुन:शेप की प्रीत्यतिशय दिखाई गई है--

सरलार्थः-इसके बाद विश्वे देवों ने उसे कहा कि इन्द्र ही देवताओं में सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न है, दैहिक बल युक्त है, और सहायक श्रेष्ठ कर्म कारक है। तू उसी की स्तुति कर। तो तुझे हम मोक्ष देंगे। उस शुन:शेप ने 'यच्चिद्धि सत्य सोमपा:' इत्यादि सूक्तों से और उसके बाद विद्यमान पचास मन्त्रों से इन्द्र की स्तुति की।

व्याकरणम्-

- ऊचुः - वच्- धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- उत्स्रक्ष्यामः - उत् पूर्वक सृज्(विसर्गे) धातु से लृट्-लकार उत्तम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- तुष्टाव - ष्टुञ् (स्तुतौ) धातु के लिट्-लकार उत्तम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

तस्मा इन्द्रः स्तूयमानः प्रीतो मनसा हिरण्यरथं
ददौ तमेतया प्रतीयाय शश्वदिन्द्र इति इति।

व्याख्या- शुन:शेप से स्तूयमान इंद्र ने प्रसन्न होकर शुनशेप को सुवर्णमय दिव्य रथ आरोहण के लिए अपने मन से ही दिया। शुन:शेप ने भी उसका अनुग्रह जानकर पूर्वोक्त पन्द्रह सूक्तियों से इन्द्र की अर्चना की रथ को मन से ग्रहण किया।

सरलार्थः- इन्द्र स्तुत होकर प्रसन्न हुआ और मन से उसको हिरण्यमय रथ दिया। वह भी 'शश्वदिन्द्र' मन्त्र से इन्द्रकी स्तुति करने लगा।

व्याकरण-

- स्तूयमानः - ष्टुञ्-धातु शानच्-प्रत्ययान्त रूप है।
- ददौ- दा-धातू से लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रुप सिद्ध होता है।

तमिन्द्र उवाचाश्विनौ नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति
सोऽश्विनौ तुष्टावात उत्तरेण तृचेन इति।

टिप्पणी

व्याख्या- पूर्वोक्त शश्वदिन्द्रो इसके उत्तरेणाश्विनाव श्वावत्या (1-30-27) इस ऋचा से अश्विन की स्तुति की।

अश्विन के सहकारित्व से उषा की स्तुति दिखाता है--

सरलार्थ- इन्द्र ने उसे कहा दोनों अश्विन का स्तवन कर, तो तुझे मोक्ष दूंगा। उसने भी उसके बाद तीन ऋचाओं से दोनों अश्विन का स्तवन किया।

व्याकरण-

- उवाच - वच्- धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- उत्स्रक्ष्यामः - उत् पूर्वक सृज(विसर्गे) धातु से लृट्-लकार उत्तम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- तुष्टाव - ष्टुञ् (स्तुतौ) धातु के लिट्-लकार उत्तम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

तमश्विना उचतुरुषसं नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम
इति स उषसं तुष्टावात उत्तरेण तृचेन इति।

व्याख्या- कस्त उषः (1-30-20) इत्यादि उत्तरस्तृच है। अथ उक्त सभी देवताओं के अनुग्रह से शुनःशेप का बन्ध मोक्ष और हरिश्चन्द्र का आरोग्य दिखाता है--

सरलार्थ-दोनों अश्विन ने उसे कहा- तू उषादेवी का स्तवन कर। तो मैं तुझे मोक्ष दूंगा। उसके बाद उसने तीन ऋचाओं से उषादेवी का स्तवन किया।

व्याकरण-

- उत्स्रक्ष्यामः - उत् पूर्वक सृज्(विसर्गे) धातु से लृट्-लकार उत्तम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- तुष्टाव - ष्टुञ् (स्तुतौ) धातु के लिट्-लकार उत्तम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

तस्य ह स्मर्च्यृच्युक्तायां वि पाशो मुमुचे कनीय
ऐक्ष्वाकस्योदरं भवत्युत्तमस्यामेवर्च्युक्तायां वि पाशो
मुमुचेऽगद ऐक्ष्वाक आस॥ इति।

व्याख्या- उस पूर्वक्त ऋचा के संबन्धिनी एक एक ऋचा कहने से क्रम से शुनःशेप का पाश विमुक्त होता गया विशेष मुक्त हो गया, ऐक्ष्वाक हरिश्चन्द्र का जो महोदर था वह भी क्रम से अल्प होता गया। अन्तिम ऋचा का उच्चारण होने पर समस्त बन्धन की मुक्ति हो गयी। इक्ष्वाकुवंशधर हरिश्चन्द्र भी रोग मुक्त हो गया।

सरलार्थ- ऋचाओं के उच्चारित होने पर पर शुन:शेप का बन्धन मुक्त हो जाता है। इक्ष्वाकुवंशधर का महोदर भी क्षुद्र हो गया। अन्तिम ऋचा का उच्चारण होने पर समस्त बन्धन की मुक्ति होगयी। इक्ष्वाकुवंशधर हरिश्चन्द्र भी रोग मुक्त हो गया।

व्याकरण-

- मुमुचे- मुच -धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप बनता है।

पाठगत प्रश्न

95. मुझे एक सौ गायें दो यह वाक्य किसने बोला?
96. किसने उसे एक सौ गायें दी?
97. सूयवस पुत्र अजीगर्त ने पुन: किस लिए गायें माँगी?
98. देवों में कौन निकटतम है?
99. अग्नि ही देवों में सबसे निकटतम इस उक्ति को किसने प्रत्युक्त किया?
100. अग्नि ने शुन:शेप को क्या कहा?
101. सविता ने शुन:शेप को क्या कहा?
102. वरुण ने शुन:शेप को क्या कहा ?
103. विश्वेदेव शुन:शेप के किस मन्त्र से स्तुत हुआ?
104. किसकी स्तुति के बाद शुन:शेप पाश से उन्मुक्त हुआ?

पाठ का सार

इस पाठ में शुन:शेप उपाख्यान दो खण्डो में वर्णित है। दोनों खण्डों में जो कहा गया है वह सार रूप से कहते हैं। तृतीय खण्ड में जब रोहित अरण्य से अपने पिता के उदररोग के कारण गाँव आ रहा था तब इन्द्र ब्राह्मण के रूप में उसके समीप आया। उस ब्राह्मण ने उसे पर्यटन का माहात्म्य बताया। उस माहात्म्य को समझ कर रोहित छह वर्ष तक अरण्य में घूमता रहा। छठे वर्ष उसे अजीगर्त का साक्षात्कार हुआ। वहाँ उसने अजीगर्त के एक पुत्र को सौ गायों के बदले माँगा। अजीगर्त ने मध्यमपुत्र शुन:शेप उसको दे दिया। रोहित उसको लेकर घर आगया।

इसी प्रकार चतुर्थ खण्ड में हरिश्चन्द्र के घर पर यज्ञ आयोजित किया गया। वहाँ अजीगर्त एक सौ गायों के बदले अपने पुत्र शुन:शेप के वध के लिए प्रवृत्त हुआ। यह सब देख कर उसने प्रजापति को आहूत किया। प्रजापति ने अग्नि की स्तुति के लिए कहा। अग्नि ने सविता की

टिप्पणी

स्तुति के लिए कहा। सविता ने वरुण की स्तुति के लिए कहा। वरुण ने अग्नि की स्तुति के लिए कहा। अग्नि ने विश्वदेवों की स्तुति के लिए कहा। विश्वेदेवों ने इन्द्र की स्तुति के लिए कहा। इन्द्र ने दो अश्विनी कुमारों की स्तुति के लिए कहा। दोनों अश्विनि कुमारों ने उषा देवी की स्तुति के लिए कहा। इस प्रकार उषा देवी की स्तुति के बाद वह पाशमुक्त हो गया।

पाठांत प्रश्न

105. रोहित और इन्द्र के वार्तालाप का वर्णन करो?

106. अजीगर्त और शुन:शेप के मध्य वार्तालाप का वर्णन करो?

107. शुन:शेप की देवों के प्रति प्रार्थना का वर्णन करो?

108. चतुर्थ खण्ड का सार लिखो?

109. तृतीय खण्ड का सार लिखो?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तरकूट-1

110. वरुण का

111. रोहित का

112. राजा को

113. रोहित

114. जो जन आसनस्थ होता है।

115. जो उत्थित होता है।

116. जो शयित होता है।

117. जो पर्यटन करता है।

118. छह वर्ष।

119. श्रेय वस्तु।

उत्तरकूट-2

120. सूयवस पुत्र अजीगर्त।

121. हरिश्चन्द्र।

122. यज्ञ के बाद वध करूँगा ऐसा सोच कर।

123. अग्नि ही।

124. प्रजापति शुनशेप के प्रति।

125. सविता ही प्रेरणा दान में समर्थ है।

126. तू राजा वरुण के लिए यूप में बंधा हुआ है। तू उसी की उपासना कर।

127. अग्नि ही देवों में मुख्य है, वह ही श्रेष्ठ सुहृत् है, अतः शीघ्र ही उसको उद्देश्य करके स्तुति कर।

128. नमो महद्भ्यो नमोऽकर्मकेभ्यः।

129. उषा देवी से।

तेरहवाँ पाठ समाप्त

14

शुनःशेपोपाख्यान-3

प्रस्तावना

पूर्व पठित पाठ से जैसा कि स्पष्ट है कि ऋग्वेद का शुनःशेपोपाख्यान अत्यन्त प्रसिद्ध है। आपने पूर्व के दो पाठ में शुनःशेपोपाख्यान के चार खंडो को पढ़ा। अत एव खण्ड चतुष्टय के अध्ययन से शुनःशेपोपाख्यान का साधारण ज्ञान तो आपको हो ही गया है। अब इस पाठ का अवशिष्ट भाग इस पाठ में मिलेगा। मन्त्र, कथा माध्यम द्वारा एक वृत्तान्त को पादित किया है। ऋग्वेद का यह मूल आख्यान अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस पाठ में शुनःशेपोपाख्यान का पञ्चम खण्ड वर्णित है। इस पाठ में सायण भाष्य के आधार पर व्याख्या है। क्योंकि सायण भाष्य के विना मन्त्र का अर्थ समझना बहुत कठिन है। इस पाठ में विश्वामित्र और शुनःशेप के मध्य में प्रवृत्त वार्तालाप का वृत्तान्त है और शुनःशेप को विश्वामित्र द्वारा पुत्र रूप में स्वीकारना ये भी वृत्तान्त है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- शुनःशेपोपाख्यान के पञ्चम खण्ड को जान पाने में;
- शुनःशेप और विश्वामित्र के वार्तालाप को जान पाने में;
- शुनःशेप को विश्वामित्र द्वारा क्यों पुत्र रूप में स्वीकार किया गया ये जान पाने में;
- स्वयमेव मन्त्र की व्याख्या सम्पादित करने में;
- स्वयमेव अन्वय कर पाने में;
- मन्त्र में स्थित व्याकरण को भी जान पाने में;
- मन्त्र का सामान्यार्थ जान पाने में।

14.1 मूलपाठ

पञ्चम खण्ड

तमृत्विज ऊचुस्त्वमेव नोऽस्यानह्नः संस्थामधिगच्छे-
त्यथ हैतं शुनःशेपोऽञ्ःसवं ददर्श तमेताभिश्चतसृ-
भिरभिसुषाव यच्चिद्धि त्वं गृहे गृह इत्यथैनं द्रोण-
कलशमभ्यवनिनायोच्छिष्टं चम्वोर्भरेत्येतयर्चाऽथ
हास्मिन्नन्वारब्धे पूर्वाभिश्चतसृभिः स स्वाहाकारा-
भिर्जुहवांचकाराथैनमवभृथमभ्यवनिनाय त्वं नो
अग्ने वरुणस्य विद्वानित्येताभ्यामथैनमत ऊर्ध्वम-
गिन्माहवनीयमुपस्थापयांचकार शुनश्चिच्छेपं निदितं
सहस्रादिति इति।

अथ ह शुनःशेपो विश्वामित्रस्याङ्कमाससाद स
होवाचाजीगर्तः सौयवसिर्ऋषे पुनर्मे पुत्रं देहीति
नेति होवाच वि श्वामित्रो देवा वा इमं मह्यमरास-
तेति स ह देवरातो वैश्वामित्र आस तस्यैते कापि-
लेयबाभ्रवाःइति।

स होवाचाजीगर्तः सौयवसिस्त्वं वेहि विह्वयावहा
इति स होवाचाजीगर्तः सौयवसिराङ्गरसो जन्म-
नाऽस्याजीगर्तिः श्रुतः कविः। ऋषे पैतामहात्तन्तो-
र्माऽपगाः पुनरेहिमामिति स होवाच शुनःशेपोऽ-
दर्शुस्त्वा शासहस्तं न यच्छूद्रेष्वलप्सत। गवां
त्रीणि शतानि त्वमवृणीथा मदङ्गिरः इति।

स होवाचाजीगर्तः सौयवसिस्तुद्वै मा तात तपति
पापं कर्म मया कृतम्। तदहं निह्नुवे तुभ्यं
प्रतियन्तु शता गवामिति स होवाच शुनःशेपो यः
सकृत्पापकं कुर्यात्कुर्यादेनत्ततोऽपरम्। नापागाः
शौद्रान्न्यायादसंधेयं त्वया कृतमिति इति।

असंधेयमिति ह वि श्वामित्र उपपपाद स होवाच
वि श्वामित्रे भीम एव सौयवसिः शासेन विशिशा-

सिषुः अस्थान्मैतस्य पुत्रो भूर्ममैवोपेहि पुत्रता-
मिति, इति।

स होवाच शुनःशेपः स वै यथा नो ज्ञपयाऽऽ
राजपुत्रे तथा वद। यथैवाऽऽङ्गिरसः सन्नुपेयां
तव पुत्रतामिति स होवाच वि श्वामित्रो ज्येष्ठो मे
त्वं पुत्रणां स्यास्तव श्रेष्ठा प्रजा स्यात्। उपेया-
दैवं मे दायं तेन वै त्वोपमन्त्रय इति इति।

स होवाच शुनःशेपः संज्ञानानेषु वै ब्रूयात् सौहार्द्याय
मे श्रियै। यथाऽहं भरतऋषभोपेयां तव पुत्रतामि-
त्यथ ह विश्वामित्रः पुत्रनमन्त्रयामास मधुच्छन्दाः
शृणोतन ऋषभो रेणुरष्टकः। ये के च भ्रातरः
स्थ नास्मै ज्यैष्ठ्याय कल्पध्वमिति॥ इति।

तस्य ह विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्रा आसुः पञ्चाश-
देव ज्यायांसो मधुच्छन्दसः पञ्चाशत्कनीयांसः इति।

तद्ये ज्यायांसो न ते कुशलं मेनिरेताननु व्याज-
हारान्तन्वः प्रजा भक्षीष्टेति त एतेऽन्ध्रा पुण्ड्राः
शबराः पुलिन्दा मूतिबा इत्युदन्त्या बहवो वैश्वा-
मित्र दस्यूनां भूयिष्ठाः इति।

14.1.1 इदानींमूलापाठम्अवगच्छाम

तमृत्विज ऊचुस्त्वमेव नोऽस्याह्नः संस्थामधिगच्छे-
त्यथ हैतं शुनःशेपोऽञ्जःसवं ददर्श तमेताभिश्चतसृ-
भिरभिसुषाव यच्चिद्धि त्वं गृहे गृह इत्यथैनं द्रोण-
कलशमभ्यवनिनायोच्छिष्टं चम्वोर्भरेत्येतयर्चाऽथ
हास्मिन्नन्वारब्धे पूर्वाभिश्चतसृभिः स स्वाहाकारा-
भिर्जुहवांचकाराथैनमवभृथमभ्यवनिनाय त्वं नो
अग्ने वरुणस्य विद्वानित्येताभ्यामथैनमत ऊर्ध्वम-
ग्निमाहवनीयमुपस्थापयांचकार शुनश्चिच्छेपं निदितं
सहस्रादिति इति।

शुन:शेपोपाख्यान-3

व्याख्या- देवतानुग्रहयुक्तं तं शुन:शेपं विश्वामित्रदय: सर्व ऋत्विज एवमूचु:। हे शुन:शेप त्वमेव नोऽस्मारकमस्याह्नोऽभिषचनीयाख्यसंस्थां समप्तिमधिगच्छ प्राप्नुहि। अनुष्ठापत्येर्थ:। तैरेवमुक्ते सत्यनन्तरं शुन:शेप एवमभिषेचनीयाख्यां सोमयागमञ्ज:सवं ददर्श। अञ्जसर्जुमार्गेन सव: सोमाभिषवो यस्मिन्यागो सोऽञ्जसवस्तादृशं प्रयोगप्रकारं निश्चितवान्। निश्चित्य च तं सोमं यच्चिद्धीत्यादिभिश्चतसृभिऋग्भिरभिषुतं कृतवान्। अथैनमभिषुतं सोममेतयोच्छिष्टं चम्वोरित्यृचा द्रोणकलशममिक्ष्यावनिनाय द्रोणकलश प्रक्षिप्तवान्। अथानन्तरमस्मिन्हरिशचन्द्रोणाण्वारद्धे शुन:शेलदेहमुपस्पृष्टवति सत्युक्ताभ्य ऋग्भ्य: पूर्वाभिर्यत्र ग्रावेत्यादिभिश्चतसृर्भिऋग्भि: स्वाहाकारसहिताभि: सोमं जुहुवांचकार। यत्र ग्रावेत्यादिकं सूक्तं नर्वचं तत्र यच्चिद्धीति पञ्चमी तामारभ्य चतसृर्ग्भिऋग्भिरभिषव:। उच्छिष्टमित्यादिका नवमी तया द्रोणकलशे प्रक्षेप:। यत्र ग्रावेत्यादिभिश्चतसृग्भिर्होम इत्येवं कृत्स्नस्य सूक्तस्य विनियोग:। अथ: होमानन्तरमेव कर्तव्यमवभृथमभिलक्ष्यावनिनाय सर्वमवभृथसाधनं तद्देश नीत्वा त्वं नो अग्न इत्यादिकाभ्यामृग्भ्यामवभृथयागं कृतवान्। अथ तथा कृत्वा तत ऊर्ध्वमेनमाहवनीयमग्नि शुनश्चिदित्यनेनोपस्थापयांचकार हरिश्चन्द्रमुपस्थाने प्रेरयामास। सोऽयमञ्ज:सव:। इष्टिपशुसांकर्यम् अन्तरेणाञ्जसर्जमार्गेणानुष्ठितत्वात्।

विश्वमित्र और अजीगर्त का संवाद प्रस्तुत है –

सरलार्थ- (उसके बाद) ऋत्विज ने शुन:शेप को कहा –हमारे इस अनुष्ठान की तुम ही समाप्ति करो। (ऐसा सुनकर) शुन:शेप ने सरल उपाय से सोमाभिषवपूर्वकयागानुष्ठान की व्यवस्था की। स 'यच्चद्धि त्वं गृहे गृहे' इत्यादि ऋचाओं से सोम का अभिषव किया। उसके बाद 'उच्छिष्टं चम्भोर्भव' इत्यादि ऋचाओं से सोम को द्रोण कलश में डाला। उसके बाद अनुष्ठान के आरम्भ से समाप्ति तक स्वाहाकार समेत पूर्व में कही गई 'यत्र गावा' इत्यादि चार ऋचाओ से होम किया। फिर 'त्वा नो अग्ने वरुणस्य विद्वान' इत्यादि दो ऋचाओं से अवभृथयाग का अनुष्ठान किया और फिर उसके बाद 'शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्रम' इत्यादि ऋचाओं से हरिश्चन्द्र को बुलाने के लिए अग्नि में उपस्थान किया।

व्याकरण-

- ऊचु: – वच्-धातु से लिट्-लकार का प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप।
- आह- ब्रू-धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- ददर्श- दृश्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- उपस्थापयाञ्चकार – उप उपसर्गपूर्वक णिजन्त स्था-धातु से लिट्-लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन का रूप।

अथ ह शुन:शेपो विश्वमित्रस्याङ्कमाससाद स
होवाचाजीगर्त: सौयवसिऋर्षे पुनर्मे पुत्रं देहीति
नेति होवाच विश्वामित्रे देवा वा इमं मह्यमरास-
तेति स ह देवरातो वैश्वामित्र आस तस्यैवे कापि-
लेयबाभ्रवा:इति।

टिप्पणी

व्याख्या- अथ अभिषेचनीय कार्य के समापन के बाद हरिश्चन्द्र सहित सभी प्रसन्नचित ऋत्विजों में वो शुन:शेप किसका पुत्र है? ऐसा विचारने पर महर्षियों के वचन सुनकर शुन:शेप: स्वेच्छा से विश्वामित्र को पिता स्वीकार कर उनकी गोद में बैठ गया। पुत्र सर्वत्र और सदा पिता की गोद ही बैठता है। फिर सूयवस पुत्र अजीर्गत द्वारा विश्वामित्र से पुत्र मागने पर उसने मना करके कहा। प्रजापति आदि देवों ने इस शुन:शेप को मुझे दिया इसलिए तुझे नहीं दे सकता। और फिर वो शुन:शेप देवों द्वारा दिए जाने के कारण देवरात नाम से विश्वामित्र का पुत्र कहलाया। उस देवरात के कपिल गोत्र में उत्पन्न और वभ्रुगोत्रउत्पन्न बन्धु हो गये।

शुन:शेप और अजीर्गत में बीच संवाद प्रस्तुत है -

सरलार्थ-फिर शुन:शेप विश्वामित्र के गोद में बैठ गये। उस सूयवस पुत्र अजीगर्त ने कहा - तू मेरा पुत्र दे। विश्वामित्र ने कहा -कभी नही,देवों ने इसे मुझे दिया। फिर उसके बाद शुन:शेप विश्वामित्र के पुत्र देवरात के नाम से विख्यात हुआ। कपिलगोत्र में उत्पन्न बभ्रुगोत्रीय उसके बान्धव हो गये।

व्याकरण-

- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- देहि- दा-धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन का रूप।

स होवाचाजीगर्तः सौयवसिस्त्वं वेहि विह्वयावहा
स होवाचाजीगर्तः सौयवसिराङ्गरसो
जन्मनाऽस्याजीगर्तिः श्रुतः कविः। ऋषे
पैतामहात्तन्तोर्माऽपगाः पुनरेहिमामिति स होवाच
शुन:शेपोऽदर्शुस्त्वा शासहस्तं न यच्छूद्रेष्वलप्सत। गवां
त्रीणि शतानि त्वमवृणीथा मदङिगरः इति।

व्याख्या-विशामित्र द्वारा मना करने पर वो अजीर्गत शुन:शेप को फिर कहता है। हे पुत्र तू विश्वामित्र को छोड़कर मेरे पास आ जा। तेरी माता और मैं दोनों विशिष्ट रूप से तेरा आह्वान करते है। ऐसा कहकर चुप रहे उस शुन:शेप के लिए पुन: एक और बात कही। हे शुन:शेप तुम जन्म सही अंङिगरा गोत्र उत्पन्न अजीगत के पुत्र होकर विद्वान रूप में सर्वत्र प्रसिद्ध हो। अत: हे महर्षि! शुन:शेप प्रजापति द्वारा दादा-परदादा की परम्परा के रूप में संपादितसंतान से अंङिगरस वंश को मत छोड़। इसलिए पुन: मेरे घर में आजा शुन:शेप ने प्रत्युत्तर में देते हुए कहता है कि ''शासो विशसनहेतु: खड्ग:।'' हे अजीर्गत मेरे वध के लिए आप सभी को हाथ में तलवार लिए देखता हुँ। ये जो तुम क्रूर कर्म, जो अत्यंत नीच शूद्रों में भी नहीं देखने को मिलता है और न ही इस संसार में तुम जैसा क्रूर कर्म करने वाला हुआ भी नहीं है। हे अङिगरस गोत्र में उत्पन्न अजीर्गत के पुत्र तू मेरे भाग की सौ गायों को चुनकर वरण कर ले। ऐसा उसने बार बार कहा।

पुन: अजीर्गत और शुन:शेप का संवाद होता है -

शुन:शेपोपाख्यान-3

सरलार्थ- सूयवस के पुत्रअजीगर्त ने शुन:शेप को कहा - (हे पुत्र) तू ही (मेरे समीप) आ जा हम दोनों तेरे पिता तुझे बुलाते है। सूयवस पुत्र अजीगर्त ने (पुन: शुन:शेप को) कहा - (हे पुत्र) तू तेरे जन्म से ही अङि्गरस अजीगर्त का पुत्र है और एक विद्वान के रूप में प्रसिद्ध है। अत: हे ऋषि! शुन:शेप, तू तेरी पितामह वंश परम्परा से दूर मत जा। पुन: तु मेरे समीप आ जा। (ये सुनकर) शुन:शेप ने कहा - (मारने के लिए) तलवार धारी तुम लोगो को देखा है, ऐसी क्रूरता तो राक्षसों में भी नहीं दिखाई देती है। हे अङि्गरस वंश में उत्पन्न (अजीगर्त) मेरी जगह तू तीन सौ 300 गायें ले ले।

व्याकरण-

- उवाच- वच्-धातु लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- श्रुत: -श्रु-धातु क्त प्रत्ययान्त रूप।

स होवाचाजीगर्त: सौयवसिस्तुद्वै मा तात तपति
पापं कर्म मया कृतम्। तदहं निह्नुवे तुभ्यं
प्रतियन्तु शता गवामिति स होवाच शुन:शेपो य:
सकृत्पापकं कुर्यात्कुर्यादेनत्ततोऽपरम्। नापागा:
शौद्रान्न्यायादसंधेयं त्वया कृतमिति इति।

व्याख्या-शुन:शेप को चाहने वाला अजीर्गत अब अपने पश्चाताप को दिखाने के लिए कुछ कहता है। हे तात पिता के समान पालनीय शुन:शेप मैंने जो पाप किया उससे मेरे मन को उद्वेलित कर दिया है। मैं उस पाप से निवृत होना चाहता हूँ। वो 300 गायें जो पहले मेरे द्वारा अपनाई गई थी वो प्रत्येक गाय तेरे लिए देता हूँ। उसके बाद उस शुन:शेप ने अपनी गाथा से प्रत्युत्तर देता है।जो व्यक्ति धर्मशास्त्र के भय से रहित होकर पाप किया है वो पुरुष उन पापों को प्रवृत्ति के कारण पुन: कर सकता है। तुने जो शुद्र से भी नीच जाति से सम्बंधित क्रुर आचरण किया है उससे मुक्त नहीं हो पायेगा। शून:शेप ने कहा संधान रहित पाप तेरे द्वारा किया गया है।

अब विश्वामित्र के कृत्य को दर्शाते है -

सरलार्थ:- सूयवस पुत्र अजीगर्त ने कहा - वत्स, मैने जो पापकर्म किया है उससे मैं सन्तप्त हुँ। उस पापकर्म को मैं त्यागता हूँ। 30 गायें तुझको देता हूँ। शुन:शेप ने (तब) कहा - जिसने एकवार पापकर्म को किया है वह उस पाप को पुन: कर सकता है। तूने शूद्र तुल्य जो पापाचरण किया है उससे तू मुक्त नहीं होगा। तुमने जो किया है उसके बाद कभी समझौता नहीं हो सकता है।

व्याकरण-

- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।

- कृतम्- कृ धातु से क्त प्रत्ययान्त रूप।
- कुर्यात् - कृ-धातु से विधिलिङ्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।

असंधेयमिति ह विश्वामित्र उपपपाद स होवाच विश्वामित्रो भीम एव सौयवसि: शासेन विशिशा-सिषु: अस्थान्मैतस्य पुत्रे भूर्ममैवोपेहि पुत्रतामिति, इति।

व्याख्या-''असंधेयप्रतिसमाधेयं पापमितिद्य'' शुन:शेप द्वारा जो कहा गया है वो विश्वामित्र युक्ति द्वारा कहते है।उसकी बात को पुष्ट करने के लिए ही विश्वमित्र ने इस गाथा को कहा। सूयवस का पुत्र अजीर्गत भीम या भयंकर हस्त गत खडग लिए हुए वह अपने पुत्र को मारने वाला लग रहा था। अत: हे शुन:शेप इस पापी का पुत्र मत होना किन्तु मेरे पुत्रत्व को प्राप्त कर।

शुन:शेप और विश्वामित्र के मध्य सम्वाद होता है -

सरलार्थ:- विश्वामित्र ने भी कहा, (उस कर्म के बाद) सन्धि नही हो सकती है। उसने (विश्वामित्र ने) उससे कहा तलवार को हाथ में लिए, पुत्र को मारने की इच्छा से, सूयवस का पुत्र अति भयङ्कर लग रहा था। (शुन:शेप) तू उसका पुत्र मत हो, तू मेरा ही पुत्र रह।

व्याकरण-

- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथमपुरुष एकवचन का रूप।

स होवाच शुन:शेप: स वै यथा नो ज्ञपयाऽऽ राजपुत्रे तथा वद। यथैवाऽऽङ्गिरस: सन्नुपेयां तव पुत्रतामिति स होवाच विश्वामित्रे ज्येष्ठो मे त्वं पुत्रणां स्यास्तव श्रेष्ठा प्रजा स्यात्। उपेया-दैवं मे दायं तेन वै त्वोपमन्त्रय इति।

व्याख्या-विश्वमित्र द्वारा संबोधित शुन:शेप पुन: गाथा से विश्वमित्र को कहता है। ये विश्वमित्र जो जन्म से क्षत्रिय होते हुए भी अपने तपो महिमा से ब्रह्मत्व को प्राप्त हुआ। ऐसा कहते हुए उसे हे! राजपुत्र इस प्रकार से संबोधित किया। वो जिस प्रकार राज जातीय होते हुए जिस प्रकार से हम सब के सामने ब्राह्मण के रूप में जाने जाते है। उसी प्रकार मैं कैसे होऊ, इस विषय में भी आप कुछ कहो। उसने कहा कैसे बताऊ? मैं अब कैसे अंङिगरस गोत्र का परित्याग करके तेरे पुत्रत्व को स्वीकार करू जिस प्रकार तुमने प्राप्त किया है, आप ही कहो। इस वाक्य का अभिप्राय: पूर्व में संक्षिप्त दर्शित है।

व्याकरण-

- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।

- वद- वद्-धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन का रूप।

'पुराऽऽत्मानं नृपं विप्र (प्रं) तपसा कृतवानसि।
एवमङ्गिरसं मा त्वं वैश्वामित्रमृषे कुरु' इति।

उसके बाद विश्वामित्र ने प्रत्युत्तर में कहा। हे शुन:शेप तू सभी पुत्रों में ज्येष्ठ है ज्येष्ठ हो। तेरी पुत्रदि रूप प्रजा भी और श्रेष्ठ होवे। मुझ विश्वामित्र को देवों ने प्रसन्न होकर देने योग्य पुत्र लाभ दिया तू उसी स्वीकार कर। उसी प्रकार में तुझे पुत्र के समान मानता हूँ।

पुन: शुन:शेप और विश्वामित्र के मध्य वृत्तांत दर्शाते है -

सरलार्थ:- तब शुन:शेप ने कहा, हे राजपुत्र, आप जैसे (राजवंशीय होते हुए भी) मेरे पास (ब्राह्मणरूप में) है उसी प्रकार मैं भी अङ्गिरस: होते हुए भी कैसे आपके पुत्रत्व को प्राप्त कर पाऊंगा, आप ही बताओ। तब विश्वामित्र ने कहा - (हे शुन:शेप) मेरे सभी पुत्रों में तुम ही ज्येष्ठ होओ, तेरे पुत्र भी श्रेष्ठत्व को प्राप्त करे। देवों ने जो मुझे पुत्र भार समर्पित किया है वो तू लेवे। इसीलिए मैं तुझे पुत्र रूप में स्वीकार करता हूँ।

व्याकरण-

- कृतवान्- कृ-धातु से वतु-प्रत्ययान्त रूप।
- कुरु- कृ-धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन का रुप।

स होवाच शुन:शेप: संज्ञानानेषु वै ब्रूयात् सौहार्द्याय
मे श्रियै। यथाऽहं भरतऋषभोपेयां तव पुत्रतामि-
त्यथ ह विश्वामित्र: पुत्रनमन्त्रयामास मधुच्छन्दा:
शृणोतन ऋषभो रेणुरष्टक:। ये के च भ्रातर:
स्थ नास्मै ज्यैष्ठ्याय कल्पध्वमिति इति।

व्याख्या-विश्वामित्र द्वारा प्रलोभित शुन:शेप अपने कार्य की दृढ़ता के लिए कहते है। आपके पुत्रों में मेरे विषय में एकमत जानने के लिए सभी को बुलाओ। जो ज्येष्ठ भातृत्व का व्यवहार करे। और फिर मैं भाइयों के अतिस्नेह से सौहार्द्य और धनलाभ को प्राप्त कर सकूं। हे भरतवंश श्रेष्ठ विश्वामित्र आपके पुत्रत्व को प्राप्त करूँ जिसके लिए उन पुत्रों के अग्रज रूप में स्वीकार किया जाऊ। फिर विश्वामित्र ने सभी पुत्रों को बुलाकर कहा। जो मधुच्छन्दा, ऋषभ, रेणु, अष्टक नाम के है। हे पुत्रों मेरी आज्ञा सुनों। तुम सभी भ्राता इस शुन:शेप को ज्यैष्ठ मानो और अपने में ज्येष्ठत्व का अभिमान मत करो। जिससे कि तुम सभी में ये ज्येष्ठ होकर रह सके

अब विश्वामित्र के पुत्रों का वृत्तान्त कहते है -

सरलार्थ-उस शुन:शेप ने कहा - हे भरतर्षभ, आपके पुत्रों को एक साथ में बुलाओ , जिससे कि मैं आपके पुत्रत्व को प्राप्त करू। जिससे मेरा सौहार्द लाभ और श्रीलाभ होवे। इसके बाद विश्वामित्र ने अपने पुत्रों को बुलाकर कहा- हे मधुच्छन्द, ऋषभ, रेणो, अष्टक, सुनों। तुम्हारे ये जो भ्राता है उनमें शुन:शेप ज्येष्ठ रूप में माने जाए।

टिप्पणी

व्याकरण-

- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- ब्रूयात्- ब्रू- धातु से विधिलङ्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- कल्पध्वम् - कल्प-धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष बहुवचन का रूप।

तस्य ह विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्र आसुः पञ्चाश-
देव ज्यायांसो मधुच्छन्दसः पञ्चाशत्कनीयांसः इति।

व्याख्या- मधुच्छन्द नामक कोई पुत्र मध्यम है, उससे ज्योष्ठ और कणिष्ठ, जो 50-50 है इस प्रकार उसके सौ पुत्र है।

उनमें ज्येष्ठों का वृत्तान्त कहा है -

सरलार्थः-उस विश्वामित्र के सौ पुत्र थे, (उनमें) 50 मधुच्छन्द से ज्येष्ठ और 50 मधुच्छन्द से कनिष्ठ थे।

व्याकरणम्-

- ज्यायांसः - अयम् अनयोः अतिशयेन वृद्धः प्रशस्यः वा। ज्यादेशः। ज्या+ईयसुन्। ईयसुन् प्रत्ययान्तं पुंलींग प्रथमा बहुवचन का रूप।
- कनीयांसः - अयम् अनयोः अतिशयेन युवा अल्पो वा। कनादेशः। कन्+ईयसुन्। ईयसुन् प्रत्ययान्त पुल्लिंग प्रथमा बहुवचन का रूप।

तद्ये ज्यायांसो न ते कुशलं मेनिरे ताननु व्याज-
हारान्तन्वः प्रजा भक्षीष्टेति त एतेऽन्ध्रा पुण्ड्राः
शबराः पुलिन्दा मूतिबा इत्युदन्त्या बहवो वैश्वा-
मित्र-दस्यूनां भूयिष्ठाः इति।

व्याख्या- **उन सौ** पुत्रें में जो 50 मधुच्छन्द से ज्येष्ठ है वे शुनःशेप को विश्वामित्र के पुत्रत्व रूप में कुशलरूप से नही मानते है अर्थात भली प्रकार से स्वीकार नहीं करते है। उन 50 ज्येष्ठों को लक्ष्य करके विश्वमित्र ने व्याहरण शापरूप वाक्य कहा। हे ज्येष्ठ पुत्रों तुमने मेरी आज्ञा का उलंघन किया अतः प्रजा पुत्रादि चण्डालादि रूप नीच जाति-विशेष को प्राप्त हो जावे। वे सात इसप्रकार है अन्ध्रत्वादि पांच प्रकार की नीचजाति विशेष होते है। इति शब्द से और भी नीच जाति विशेष सभी का ग्रहण होता है। उद्गातोऽन्त उदोन्तोऽन्यन्तनीचजातिस्तत्र भवा ऊदन्त्याः। वे बहुत है अनेक विध है वैश्वामित्र अर्थात विश्वमित्र संतति सभी दस्युओं की जातियों में प्रधान है।

सरलार्थ-और जो उनमें ज्येष्ठ है उन्होनें इससे पूर्णरूप से नहीं स्वीकार किया। उनके लिए विश्वामित्र ने अभिशाप वाक्य कहा -तुम्हारे पुत्र शूद्रत्व को प्राप्त करे। उनमें अन्ध्र, पुण्ड्र,

शवर, पुलिन्द, मूतिव इत्यादि ने शूद्रत्व को प्राप्त किया। विश्वामित्र के वंश ने उत्पन्न हुए ये सभी विविध जातियों के दानवों में प्रधान है।

व्याकरण-

- भूयिष्ठाः –अतिशय रूप से। बहु+इष्ठन्। भ्वादेशे युक् च। प्रथमा बहुवचन का रूप है।

स होवाच मधुच्छन्दाः पञ्चाशता सार्धं यन्नः
पिता संजानीते तस्मिंस्तिष्ठामहे वयम्। पुरस्त्वा
सर्वे कुर्महे त्वामन्वञ्चो वयं स्मसीति इति।

व्याख्या-कनिष्ठपुत्रणां पञ्चशाता सह मधुच्छन्दोनामकः स मध्यमः पुत्रः शुनःशेपं प्रत्येवमुवाच। हे शुनःशेप नोऽस्माकं पिता विश्वामित्रे यत्कार्यं त्वदीयज्ज्येष्ठपुत्रत्वरूपं संजानीते सम्यग्जानात्यङ्गीकरोति तस्मिन् कार्ये वयं तिष्ठामहे तत्कार्यमङ्गीकुर्मः। सर्वे वयं त्वा शुनःशेपनामानं त्वां पुरस्कुर्महे पुरस्कृत्य ज्येष्ठं कृत्वा वर्तामहे। त्वामन्वञ्चः शुनःशेपमनुगच्छतः स्मसि भवाम इत्युक्तवान्।

ज्येष्ठो का वृत्तान्त कहकर मधुच्छन्द से कनिष्ठों का वृत्तान्त कहा गया-

सरलार्थः-उस मधुच्छन्द ने पचास के साथ कहा -हमारे पिता ने जो आदेश दिया है हम उसका पालन करेंगे। हम आप ही को अग्रज रूप तथा ज्येष्ठ भ्रातृ रूप में मानकर आचरण करेंगे।

व्याकरण-

- संजानीते- सम् उपसर्ग पूर्वक ज्ञा- धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- तिष्ठामहे- स्था- धातु से उत्तम पुरुष बहुवचन में वैदिक रूप।
- कुर्महे- आत्मनेपद पक्ष में कृ- धातु से लट्-लकार उत्तम पुरुष बहुवचन का रूप।

अथ ह विश्वामित्रः प्रतीतः पुत्रंस्तुष्टाव इति।

व्याख्या- अब मधुच्छन्द सहित 50 कनिष्ठ पुत्र को शुनःशेप के ज्येष्ठ पुत्रत्व अङ्गीकरण के बाद उस विश्वामित्र ने इनके दृष्टिकोण को या इनकी बात को अपने अनुकूल है, ऐसा मानकर प्रीतिपूर्वक पुत्रें को गाथाओं द्वारा कहा।

यहाँ विश्वामित्र का वृत्तान्तबताया गया है -

सरलार्थः- इसके बाद में विश्वामित्र (पुत्र वाक्य में) विश्वास करके उनको सांत्वना प्रदान करने के लिए ऐसे बोले -

व्याकरण-

- स्तुष्टाव- ष्टुञ्-धातु से लिट्-लकार उत्तम पुरुष द्विवचन का रूप।

ते वै पुत्रः पशुमन्तो वीरवन्तो भविष्यथ।
ये मानं मेऽनुगृह्णन्तो वीरवन्तमकर्त मा इति।

व्याख्या-हे मधुच्छन्द प्रमुख कनिष्ठ पुत्र तुमने मुझे मेरे मत को अनुगृहित और अनुकूलता से स्वीकार करके इस विश्वामित्र को वीरवान अर्थात स्वधर्म(शूरपुत्र) से युक्त किया वे ही इसी प्रकार बहुविध पुत्र युक्त और बहुविध अनुकूल पुत्र युक्त होंगे।

प्रथम गाथा कहते है -

सरलार्थ-मेरे जिन पुत्रों मेरे वाक्य को अङगीकार करके मुझे वीर पुत्रवान किया है। वे ही अनुकूल पुत्र युक्त और बहुविध पुत्र युक्त होंगे।

व्याकरण-

- वीरवन्तः - वीर प्रातिपदिक से मतुब प्रत्यय होने पर प्रथमा बहुवचन का रूप।
- पशुमन्तः - वीर प्रातिपदिक से मतुब प्रत्यय होने पर प्रथमा बहुवचन का रूप।
- भविष्यथ - भू (सत्तायाम्) धातु से लट्-लकार मध्यम पुरुष बहुवचन का रूप।

पुर एत्रा वीरवन्तो देवरातेन गाथिनाः।
सर्वे राध्याः स्थ पुत्र एष वः सद्विवाचनम्। इति।

व्याख्या- गाथिन शब्द से विश्वामित्र के पिता को कहा गया है। हे गाथि पौत्र तुम सबके पूर्व में होने वाला मुख्य देवरात के साथ तुम सब भी वीरवान श्रेष्ठ पुत्रयुक्त हो। सभी पुरुषो द्वारा तुम आराध्य हों। हे पुत्रों! मधुच्छन्द आदि अनेक को ये देवरात सुवाचन से सन्मार्ग का विशेष अध्यापन कराएगा।

दुसरी गाथा कहते है -

सरलार्थ- हे गाथिवंशीय! तुम्हारे से पूर्व विद्यमान देवरात के साथ तुम भी वीरपुत्र विशिष्ट होवों, आप सभी पूज्य हों। हे पुत्रों! ये देवरात ही तुमको सदुपदेश देगा।

व्याकरण-

- वीरवन्तः - वीर प्रातिपदिक से मतुब प्रत्यय होने पर प्रथमा बहुवचन का रूप।
- स्थ - अस्-धातु से लट्-लकार मध्यम पुरुष बहुवचन का रूप।

एष वः कुशिका वीरो देवरातस्तमन्वित। युष्मांश्च
दायं म उपेता विद्यां यामु च विद्मसि। इति।

व्याख्या- हे कुशिका- कुशिकन नाम के मेरे पितामह के सम्बन्धित मधुच्छन्द आदि सुनो -ये देवरात तुम्हारा ज्येष्ठ भ्राता है। उस देवरात का तुम सभी अनुगमन करो। मेरा देने योग्य धन तुमको और देवरात को प्राप्त होवे। और जो कोई भी वेदशास्त्रादि रूप विद्या में जानता हूँ वो भी तुम सभी को प्राप्त होवे।

तृतीय गाथा कहते है -

सरलार्थ- हे कुशक गोत्र में उत्पन्न पुत्रों, यह वीर देवरात है, तुम सब उसका अनुगमन करो। मेरा जो धन और शास्त्रदि ज्ञान है वो तुम सभी प्राप्त करो।

व्याकरण-

- विद्मसि- विद्-धातु से लट्-लकार उत्तमपुरुष बहुवचन का रूप। वैदिक में मसि प्रयोग होता है।

ते सम्यञ्चो वैश्वामित्रः सर्वे साकं सरातयः।
देवराताय तस्थिरे धृत्यै श्रैष्ठ्याय गाथिनाःइति।

व्याख्या- हे विश्वामित्र-विश्वामित्र के अर्थात मेरे पुत्र, ये गाथिना -गाथिपौत्र तुम सभी सम्यक बुद्धि से युक्त, देवरात के साथ धनसंपत्ति से युक्त हो, देवराताय-मेरे श्रेष्ठपुत्र देवरात को धारण करने से, युष्मत्पोषणं श्रैष्ठ्याय-तुम्हारे मध्य में और श्रेष्ठत्व के रूप में स्वीकृत किया।

चौथी गाथा कहते है -

सरलार्थः- हे विश्वामित्र पुत्रों, हे गाथि पौत्रें, तूम सभी भली-भांति बुद्धिसम्पन्न हो, तुम सभी देवरात के साथ धन सम्पदा के भोक्ता होवें, क्योंकि तुमने देवरात को श्रेष्ठ रूप में स्वीकृत किया।

अधीयत देवरातो रिक्थयोरुभयोर्ऋषिः।
जह्नुनां चाऽऽधिपत्ये दैवे वेदे च गाथिनाम्। इति।

व्याख्या-इक् स्मरण इति धातुः। अधीयत स्मृतिकारैर्महर्षीभिः स्मर्यते। कथमिति तदुच्यते। अयं देवरातो द्वामुष्यायणत्वादुभयोरजीर्गताविश्वमित्र्योः संवन्धिनि ये रिकथे धने तर्योऋषिद्रष्ट्रा। तदुभयमर्हतीत्यर्थः। अजीगर्तस्य कूटस्य ऋषिर्जह्संज्ञकस्तस्य वंशे जाताः सर्वे जहरुवस्तेषां चाऽऽधिपत्ये स्वामित्ये देवरातो योग्यः। तथा दैवे देवसंवन्धिनी यागादिकर्माणि वेदे च मन्त्ररूपे समर्थः। गाथिनामस्मत्पितृसंशोत्पन्नानां च सर्वेषामधिपत्ये योग्यः।

पांचवी गाथा को कहा-

सरलार्थ- देवरात और ऋषि दोनों सम्पदा के अधिकारी होकर जह्णु वंशीयों के आधिपत्य की शक्ति से, गाथि वंशीयों के दैवकर्म से, वेदज्ञान के योग्य इत्यादि द्वारा ख्याति प्राप्त करेंगे।

टिप्पणी

व्याकरण-

- अधीयते - अधि उपसर्ग से अध्ययनार्थक इङ्-धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।

तदेतत्परऋक्शतगाथां शौन:शेपमाख्यानम्_इति।

व्याख्या- कस्य नूनं निधारयेत्यान्ता: सप्ताधिकनवतिसंख्यका ऋचस्त्वं न: स त्वमित्यादिकास्तिस्र ऋच एवमृचां शतम्। पर:शब्दोऽधिकवाची। पूर्वोक्तदृक्शतात्-परोऽधिका एकत्रिंशत्संख्यका यं न्विममित्याद्या गाथा यस्मन्नाख्याने तदेतत्परऋक्शतगाथम्। शुन:शेपेन दृष्टा: सप्ताधिकनवतिसंख्यायुक्ता ऋचो या: सन्त्यन्येन दृष्टास्तश्र ऋचो या: सन्ति ब्राह्मणे प्रोक्ता एकत्रिशदगाथाविशेषा ये सन्ति तै: सर्वैरुपेतं हरिश्चन्द्रो ह वैधस इत्यादिकं सर्वं शुन:शेपविषयमाख्यानम्।

उनके आख्यान में राजसूय यज्ञ का विनियोग दर्शाया गया है -

सरलार्थ- सौ ऋचाओं से और कुछ गाथाओ से युक्त ये शुन:शेप का उपाख्यान है।

व्याकरण-

- आख्यानम्- आङ्- उपसर्ग पूर्वक अदादिगणीय ख्या धातु से ल्युट का रूप है।

तद्धोता राज्ञेऽभिषक्ताऽचष्टे। इति।

व्याख्या-राजसूय यज्ञ में अभिर्षेचनीय कर्म में जब राजा अभिषिक्त होता है तब उस राजा के लिए यह आख्यान होता कहे।

अब यहां होता के कर्तव्य का वर्णन किया जा रहा है -

सरलार्थ-अभिषेक हुए राजा को होता ये उपाख्यान कहें।

व्याकरण-

- आचष्टे- आङ्- उपसर्ग पूर्वक चक्षिङ्- धातु से लट्-लकार प्रथमपुरुष एकवचन का रूप।

**हिरण्यकशिपावासीन आचष्टे हिरण्यकशिपावा-
सीन: प्रतिगृणाति यशो वै हिरण्यं यशसैवैनं
तत्समर्धयति। इति।**

व्याख्या-होता जब-जब उपाख्यान कहता है तब, हिरण्यकशिपौ- सुवर्णनिर्मीत धागों से र्निष्पादित कशिप(आसन पर) वो होता बैठता है।और उस आख्यान में बीच बीच में अध्वर्यु हिरण्य आसन पर विराजित होकर संबोधित करता है। हिरण्य यश का हेतु है अत: उसको यश भी कहते है। तथा इसीलिए राजा को यशस्वी और समृद्ध करता है।

अधवर्यु द्वारा बोले गए संबोधनों की विशेषता दिखाते है -

सरलार्थ- होता स्वर्ण निर्मित आसन पर बैठते हुए ये आख्यान कहता है। अध्वर्यु भी स्वर्ण निर्मित आसन पर बैठते हुए पुन: उच्चारित करते है। हिरण्य अर्थात सोना यश का हेतु है और यश से ही राजा समृद्ध होता है।

व्याकरण-

- आचष्टे- आङ्-उपसर्ग पूर्वक चक्षिङ्- धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- प्रतिगृणाति- प्रति उपसर्ग से क्र्यादिगणीय गृ धातु से लट में तिप होकर रूप बना।
- समर्धयति- सम उपसर्ग पूर्वक णिजन्त ऋधु (वृद्धौ) अर्थक धातु से लट्-लकार प्रथमपुरुष एकवचन का रूप।

ओमित्यृच: प्रतिगर एवं तथेनि गाथाया ओमिति
वै दैवं तथेति मानुषं दैवेन चैवैनं तन्मानुषेण च
पापादेनस: प्रमुञ्चति। इति।

व्याख्या-होत्रा प्रयुक्ताया एकैकस्या ऋचोऽन्तेऽधवर्योरोमित्येतादृश: प्रतिगरो भवति। ओमित्येतच्छन्दोरूपं दैवं देवैवङ्गीकारार्थे प्रयुज्यते। तत्तथेत्यन्तं (तथेति) मानुषं मनुष्या अङ्गीकारे तथेतिशब्दं प्रयुञ्जते। तत्तेन प्रतिगरेण दैवेम मानुषेण चाधर्वयुरेनं राजानं पापादैहिकादकपकीर्तिरूपादेनसो मरकहेतोश्च प्रमुञ्चति प्रमुक्तं करोति।

यज्ञ के विषय में उपाख्यान करके यज्ञीय निरपेक्ष पुरुषार्थ का विधान करते है -

सरलार्थ- होता द्वारा प्रत्येक ऋचा के बाद ओम् और प्रत्येक गाथा के बाद उसका पुन: कथन करे। ओम् शब्द दैव है, तथा शब्द मानव है, दैव और मानव कहने से राजा को पार लौकिक और ऐहिक समस्त पापों से अध्वर्यु मुक्त करवाता है।

व्याकरण-

- प्रमुञ्चति- प्र उपसर्ग पूर्वक मुच् धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।

तस्माद्यो राजा विजिती स्यादप्ययजमान आख्या-
पयेतैवैतच्छौन:शेपमाख्यानं न हास्मिन्नल्पं चनैन:
परिशिष्यते। इति।

व्याख्या- जिसके उपाख्यान को पाप प्रशमन का हेतु कहा है उसको यजमान भी, राजा विजिती- विजय प्राप्त राजा हो, यदि वो भी इस शून:शेपख्यान को कहे।उस राजा को कोई ब्राह्मण उपाख्यान कहे। तथा सति - इससे उस राज्य में थोड़ा भी पाप नही परिशिष्ट रहता है अर्थात सम्पूर्ण पापों का नाश हो जाता है।

अख्यान के बाद अब दक्षिणा को बताते है -

सरलार्थ-इसके बाद उस राजा ने विजय प्राप्त की, वो यजमान होकर भी यदि शुन:शेप के आख्यान को बोलता है तो उसके पापों का कण भी अवशिष्ट नहीं रहता है।

व्याकरण-

- स्यात् - अस्-धातु से विधिलिङ-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- परिशिष्यते - परि उपसर्ग पूर्वक शास्(अनुशिष्टौ) अर्थ वाली धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।

सहस्रमाख्यात्रे दद्याच्छतं प्रतिगरित्र एते चैवाऽऽ-
सने श्वेतश्चाश्वतरीरथो होतुः। इति।

व्याख्या-योऽमाख्यात होता तस्मै क्रत्वर्थदक्षिणामन्तरेणोपाख्यान-प्रयुक्तां दक्षिणां गोसहस्ररूपां दद्यात्। प्रतिगरित्रेऽधवर्यवे गोशतं दद्यात्। ये हिरण्यकशिपुरूपे द्वे स्त एते अपि ताभ्यामेव दद्यात्। अश्वतरीभ्यां संकीर्णज्ञातियुक्ताभ्यामधिकशक्तिभ्यां युक्तो रथोऽश्वतरीरथः। स च रजतेनालं -कृतत्वाच्छ्वेतः। सोऽपि तादृशो होतुर्देयः।

पूर्वमयज्ञसंयुक्तं कल्पो विजयिनो राज्ञोऽभिहितः। इदानीं पुत्रकामानामपि (सर्वेषामपि) विधत्ते-

सरलार्थ-जो आख्यान को कहते है उसको 1000 गायें देनी चाहिए और जो संबोधन करे उसे 100 गायें देनी चाहिए। वे दोनों हिरण्य से युक्त होते है अतः उनको सुवर्ण भी देना चाहिए। श्वेत अश्वों से युक्त रथ होता को देना चाहिए।

व्याकरण-

- दद्यात्- दा-धातु से विधिलिङ्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।
- होतुः- होतृ प्रातिपदिक षष्ठ्यन्त का रूप है।

पुत्रकामा हाप्याख्यापयेरल्लँभन्ते ह पुत्राँल्लभन्ते ह
पुत्रान्॥18॥इति।

व्याख्या- ये पुत्र कामना वाले हैं, वे इस प्रसिद्ध उपाख्यान को ब्राह्मण मुख से सुने। वे पुत्र से लाभान्वित होते है। (अभ्यासोऽभ्यायसमाप्त्यर्थः)।

सरलार्थ- पुत्र की कामना वाले लोग भी आख्यान को पढ़ते है। इससे उनको पुत्रलाभ होता है।

व्याकरण-

- लभन्ते- लभ्-धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप।

पाठगत प्रश्न

130. ऋत्विज ने किसको अनुष्ठान समाप्त करने के लिए कहा?

131. शुन:शेप किसकी गोद में बैठा ?

132. उसके बान्धव कौन हो गये ?

133. कितनी गायें उसको दी ?

134. विश्वामित्र के कितने पुत्र थे ?

135. किससे 50 ज्येष्ठ और कनिष्ठ थे ?

136. विश्वामित्र में किसके लिए अभिशाप वाक्य कहे ?

137. विश्वामित्र ने कनिष्ठ पुत्रों के लिए क्या कहा ?

138. गाथिन: शब्द किसकी और संकेत करता है?

139. कौन गाथि वंशीयों के लिए सदुपदेश देगा ?

पाठसार

इस पाठ में शुन:शेप उपाख्यान का पांचवे खण्ड का वर्णन किया गया है। इस खण्ड में जो कहा गया है उसको सार रूप से कहते है। इस खण्ड में शुन:शेप को विश्वामित्र पुत्र के रूप में स्वीकार किया। वस्तुत शुन:शेप अजीगर्त का पुत्र था, उसके अपने पिता की क्रूरता को देखकर विश्वामित्र का पुत्र रूप को स्वीकार किया है। विश्वामित्र में भी उसको पुत्ररूप से स्वीकार किया है। विश्वामित्र के सौ पुत्र था। उनमे पचास पुत्रो ने शुन:शेप को भाई के रूप में स्वीकार नही किया। उससे विश्वामित्र ने उनको अभिशाप दिया। पुन पचास पुत्रो ने उसे भाई के रूप में स्वीकार किया है।

पाठान्त प्रश्न

140. शुन:शेप उपाख्यान के तीसरे पाठ का सार संक्षेप से लिखो।

141. ''तमृत्विज उचुस्त्वमेव......सहस्रादिति'' मन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या करो।

142. ''अथ ह शुनःशेपो..... कापि लेयवाभ्रवा:'' इस मन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या करो।

143. ''स होवाचाजीगर्तः....शतानि त्वमवृणीथा मदङ्गिर'' इस मन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या करो।

144. ''स होवाचाजीगर्तः.... त्वया कृतमिति'' मन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या करो।

145. ''असंधेयमिति ह विश्वामित्र......पुत्रतामिति'' मन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या करो।

146. ''स होवाच शुनःशेपः .....त्वोपमन्त्रय'' इस मन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या करो।

147. ''स होवाच शुनःशेपः....ज्यैष्ठ्याय कल्पध्वमिति'' इस मन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या करो।

148. ''तस्य ह विश्वामित्रस्यैकशतं...'' इत्यादिमन्त्रों का सरलार्थ और प्रसङ्ग का वर्णन करो।

149. ''स होवाच मधुच्छन्दाः.....वयं स्मसीति'' इस मन्त्र की सरलार्थ और प्रसङ्गका वर्णन करो।

150. ''ते वै पुत्राः पशुमन्तो ...'' इत्यादिमन्त्र की सरलार्थ और प्रसङ्गका वर्णन करो।

151. ''एष वः कुशिका वीरो...यामु च विद्मसि'' इस मन्त्र को पूर्ण करके व्याख्या करो।

152. अजीगर्त को अवलम्ब करके एक लघु कथा लिखो।

153. शुनःशेप को अवलम्बन करके एक लघुप्रबन्ध लिखो।

154. विश्वामित्र को आश्रित करके लघुप्रबन्ध लिखो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

155. ऋत्विज ने शुनःशेप को अनुष्ठान की समाप्ति के लिए कहा।

156. विश्वामित्र के गोद में बैठा।

157. कपिल गोत्र में उत्पन्न वभ्रुगोत्रीय उसके बान्धव हुए।

158. उसको 300 गायें दी।

159. 100 पुत्र थे।

160. मधुच्छन्दसः।

161. जिन्होंने अपने पिता के वाक्य असमीचीन रूप में समझे थे।

162. तुम सभी बहुविध पुत्र युक्त और बहुविध अनुकूल पुत्र युक्त होवों।

163. विश्वामित्र के पिता को कहता है।

164. देवरात ने।

14.2 शुन:शेप उपाख्यान का सार

शुन:शेप उपाख्यान अत्यन्त विशाल तीन पाठो में लिखा गया है। प्रसङ्ग से उसको एक जगह एकत्रित करके नीचे दिया गया है वैदिक साहित्य का मण्डन करने वाले ब्राह्मणों में श्रेष्ठ अनेक आख्यान से समृद्ध ऐतरेय ब्राह्मण है। इस ब्राह्मण के तैतीसवें अध्याय में राजसूय यज्ञ के वर्णन अवसर पर शुन:शेप का जो आख्यान उपलब्ध होता है, वह आधुनिक काल में भी प्रसङि्गक है। इस आख्यान के तीन अंश है। प्रथम भाग में हरिश्चन्द्र नारद संवाद, दूसरे भाग में हरिश्चन्द्र वरुण संवाद, तीसरे भाग में हरिश्चन्द्र पुत्र रोहित अजीगर्त का पुत्र शुन:शेप ऋषि विश्वामित्र संवाद है। सम्पूर्ण आख्यान में तीस गाथा है।

इक्ष्वाकुवंश में हरिश्चन्द्र नाम का राजा था। उसकी सौ पत्नियों के होने पर भी वह सन्तान रहित था। एक बार उसके महल की तरु पर्वत नारद नाम के दो ऋषि आये। राजा अपनी दुर्दशा प्रकट करते हुए ऋषि नारद से कहा - विवेकि मनुष्य आदि प्राणि विवेकहीन पशु पक्षी आदि सम्पूर्ण जीवकुल भी सन्तान की कामना करते है -इसका क्या कारण है। तब नारद दशगाथा के द्वारा इस प्रश्न का सुंदर उत्तर देते है - ''वह एक ही प्रश्न को दश प्रकार से कहते है। नारद कहते है की यदि पिता जीव दशा में पुत्र के मुख का दर्शन करता है, तो वह वैदिक और लौकिक ऋण से मुक्त होता है। और ऋण मुक्त होने पर उसको अमृत की प्राप्ति होती है। वह अपने ऋणसमूह को पुत्र में आदान कर सकता है। पुत्र के जन्म से पितर कुल प्रसन्न होता है, क्योकि सम्पूर्ण पार्थिव सुख से पुत्रलाभ अधिक सुखप्रद है। ये बहुत प्राचीनकाल से ही प्रसिद्ध सभी के द्वारा और अनुभव सिद्ध मत है। उससे वैयाकरण भी अर्द्ध मात्र कम होने पर पुत्र के उत्पन्न होने के समान उत्सव मनाते है - ''अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सव इव मन्यन्ते वैयाकरणा:''। पुत्र रहित पिता बहुत सम्पन्न होने पर भी दु:ख विघ्न रहते है। मनु संहिता आदि धर्म शास्त्रों में कहा गया है - पुत् नाम का एक भंयकर घनघोर अन्धकार से आच्छादित नरक है। पुत्र उस नरक से पितर को पार कर सकता है। अत वह पुत्र है। ''पुंनाम नरकात् त्रायते स पुत्र:'' यह पुत्रशब्द की व्युत्पत्ति है। वहाँ पर मल-अजिन-श्मश्रु-तप: -इन चार प्रतीक के द्वारा नारद ने भारतीय चार आश्रम व्यवस्था का निर्देश किया। ये चार आश्रम निष्फल होते है, यदि संसार में सन्तान नही हो तो। पुत्रहीन समाज में निन्दा को प्राप्त होता है, पुत्र के होने पर हर जगह प्रशंसा को प्राप्त होता है। अत: पुत्र लाभ अत्यन्त आवश्यक है। कन्या सन्तान भी प्रशंसा के योग्य है (कृपणं ह दुहिता, 33।1)। केवल पुत्र ही नही कन्या भी पिता के सम्मान को आगे बढ़ाती है। क्योकि व: स्वयं ही परमलोक के अमृत स्वरूप और ज्योति स्वरूप है। पति की आत्मा ही पुत्ररूप से जन्मलाभ प्राप्त होता है। पुत्रहीन के लिए सभी अच्छे लोक के द्वारा बांध रहते है। अविवेकि पशु भी इस संस्कार को जानते है। अत: वे प्रयोजन के होने पर सन्तान लाभ में लिए अपनी बहन आदि के साथ सङ्गम आदि करते है। इए दृष्टान्त से नारद ये बोध कराना चाहते हैं की पुत्र केवल इच्छा विषय नहीं है, अपितु ऋणमुक्त करने में यहाँ और परलोक दोनों में सुख दु:ख से विमुक्त करने का श्रेष्ठ मार्ग है। इसलिए ही पुत्रहीन राजा हरिश्चन्द्र को पुत्रसन्तान की अत्यन्त आवश्यकता थी। अत: नारद पुत्र लाभ के उपायों को भी महाराज हरिश्चन्द्र को बताये। नारद ने कहा -राजा यदि वरुणदेव से प्रार्थना करके सन्तोष करने में समर्थ हो तो आपका अभीष्ट सिद्ध होगा। नारद के उपदेशानुसार से राजा हरिश्चन्द्र ने वरुण से प्रार्थना की।

वर के साथ वरुण ने राजा को एक स्वर्ण मुद्रा भी दी, जो नवजात पुत्र से उसके याग अनुष्ठान को पूर्ण करेगा। पुत्र विरह से पीडित राजा उसके द्वारा सहमत हुए। समय के अनुसार राजा हरिश्चन्द्र ने पुत्र सन्तान को प्राप्त किया। उसका नाम रोहित था। उसके अनुसार राजा हरिश्चन्द्र पुत्र वियोग की इच्छा के भय से अनेक याग देर से करते थे। कभी पुत्र के दश दिन होने दो, कभी पुत्र के दांत उत्पन्न हो जाए, कभी वे दांत गिर जाये, पुन दांत उत्पन्न हो जाए, कभी यह क्षत्रिय की सन्तान है, अतः कुछ धनुर्विद्या आदि की शिक्षा हो ऐसा कहकर प्रत्येक बार वह वरुण का निराकरण करता था। वरुण भी प्रत्येक बार 'यजस्व मानेन' ऐसा कहकर उसकी प्रार्थना को सुनकर दयावश पुनः चले जाते थे। इसी प्रकार सोलह वर्ष बीत गये। एकबार जब कोई उपाय नही शेष रहा तो राजा ने पुत्र को बुलाकर के उसका सम्पूर्णजन्मवृत्तान्त का वर्णन किया। किन्तु तब पुत्र रोहित स्वाधीनचिन्तन आदि करने में समर्थ था। अतः वह वरुण की मुद्रा लेकर के धनुष बाण आदि से सज्जित होकर जंगल में घुमने के लिए निकल गया। राजा मुद्रा से रहित हो गए थे। क्रुद्ध वरुण राजा हरिश्चन्द्र को श्राप दिया की राजा को कठिन उदररोग होगा। यहाँ हमारे द्वारा यह स्मरण करना चाहिए की वेद में वरुणदेव के श्राप की अत्यधिक प्रार्थना की। ये रोग भी उनके पाशों में से एक अकाट्य है। वह जिस किसी को भी रोग ग्रस्त अथवा पाशग्रस्त करने में समर्थ है। वन में परिभ्रमण शील रोहित को पिता की कठिन रोग की बात को राज्य की तरफ से आ रहे आगन्तुक के वेश में स्वयं देवराज इन्द्र ने ब्राह्मण वेश में मार्ग को रोककर कहा। वह किसी गाथा के द्वारा रोहित को चरैवेतितत्व को समझाया। वह बोला की जो हमेशा विचरणशील घुमने की प्रकृति उस प्रकार का परिश्रमी मनुष्य धन-धान्य से युक्त होता है। उसके दोनों पैर अनेक तीर्थ के पर्यटन करने से लक्ष्मी से मण्डित होते है। वह फलयुक्तवृक्ष के समान धन से युक्त है। आलस्य कर्महीन मनुष्यों के एक जगह स्थित होने पर पापा बढ़ते है। सोने वालो के भाग्य भी सो जाते है। बैठे हुए निष्काम वाले मनुष्य के भाग्य भी स्थाणु के समान एक ही स्थान पर रहते है, कही पर भी जाने में समर्थ नही है। इस प्रकार के मनुष्यों का आलस्य तामसिक प्रवृति का ही है। चलने वाला और परिश्रमी मनुष्य सत्यगुण को धारण करने वाला है। आलसी मनुष्य के मन अनेक प्रकार के बुरे आचरण करने में चालाक है। जिस पत्थर पर से मनुष्य चलते है, उस पर घास उत्पन्न नही होता है। इसी प्रकार कर्मरत मनुष्य कभी भी बुरे आचरण में प्रवृत नहीं होगा। 'चरन् वै मधु विन्दति' यह ब्राह्मण का कथन है। वह दृष्टान्त के द्वारा दिखाता है की सूर्य का श्रेष्ठ होना (सूर्यस्य पश्य श्रेमाणम्) उसका आलस्य से रहित परिक्रम करना ही उसका श्रेष्ठ होने को प्रकट करता है। इस प्रकार इन्द्र के उपदेश को सुनकर छः वर्ष तक वही पर रोहित स्थित रहा।

एक बार वन में वह किसी दरिद्र भूख से पीडित ब्राह्मण परिवार को प्राप्त हुआ। परिवार के मुखिया का नाम अजीगर्त है। उसके तीन पुत्र है शुनःपुच्छ, शुनःशेप,और शुनोलाङ्गूल। लोभी दरिद्र ब्राह्मण रोहित से सौ गायो को स्वीकार करके मध्यमपुत्र शुनःशेप को रोहित के लिए देता है। वरुणदेव ने भी क्षत्रिय सन्तान के स्थान पर ब्राह्मण सन्तान से विहित याग का समर्थन किया। उसके अनुसार ही सवनीय से पुरुष पशु के द्वारा शुनःशेप ने याग प्रारम्भ किया। पुरुषमेध याग में पुरुष का लकड़ी के खम्भे से बन्धन किया जाता है। किन्तु यहाँ पर शुनःशेप के बन्धन करने में कोई भी आगे नहीं बढ़ा क्योंकि यह कर्म बहुत ही अमानवीय है। किन्तु यहाँ पर भी शुनःशेप के पिता अजीगर्त सौ गायों के बदले अपने पुत्र को लकड़ी के खम्भे से बंधन किया। परन्तु मारने में भी कोई आगे नही बढ़ा। क्योकि मनुष्य का वध करने में कोई भी उद्यत नहीं

था। वहाँ पर भी आङ्गिरस ने धन के लोभ में अजीगर्त को पुत्र के वध करने के लिए उद्यत किया। देश के राजा श्रद्धेय ऋषियों के और अपने पिता के कठोर आचरण से भयभीत शुन:शेप ने देवो को स्मरण किया। यहाँ पर शुन:शेप ने अपने असीमधैर्य को स्थिर किया और मानसिक शूक्ति विद्या इत्यादि को अच्छी प्रकार से प्रकट किया। क्रम से प्रजापति ने वह्नि सविता वरुण विश्वदेव दोनों अश्विनि कुमारों की और इन्द्र इत्यादि देवों की अनेक प्रकार के मन्त्र से स्तुति और वन्दना की। और बलि के लिए मुक्ति की याचना की। किन्तु किसी ने भी उसकी सहायता नहीं की। अन्त में देवी उषा ममता क्रान्त शुन:शेप को छोड़ दिया। केवल इतना ही नहीं राजा का भंयकर उदररोग भी चला गया। बन्धन से शुन:शेप मुक्त हुआ। इस प्रकार रोहित शुन:शेप संवाद समाप्त हुआ।

उसके चित्त आकर्षक को तीसरे पर्व में आरम्भ करते हैं। शुन:शेप का विशिष्ट सामर्थ्य को देखकर अनुष्ठान कारि ऋत्विज आश्चर्य में पड़ गए। इन ऋत्विजो में प्रधान विश्वामित्र थे। वे शेष सभी याग के अवशेष भाग समाप्ति का भार शुन:शेप के लिए दिया। विश्वामित्र ने अत्यधिक स्नेह से उसे अपनी गोद में ग्रहण किया। और अपने पुत्ररूप से ग्रहण किया। उसका नाम देवरात वैश्वामित्र हुआ। इन सब को देखकर अजीगर्त ने पुन अपने पुत्रको वापस लौटाने के लिए विश्वामित्र को कहा – ''ऋषे पुनर्मे पुत्रं देहि'' इति। पुत्र जैसे वंश त्याग करके नही जाते वैसे ही प्रयत्न किये। किये कर्मो के करने पर वह आत्मा से रोष को प्रकट किया। और प्रयोजन होने पर तीस गाये और सौ पुत्रो को देने के लिए तैयार है। किन्तु तब शुन:शेप को मेरी बुद्धि स्वीकार नहीं करेगी। वह निर्दय पिता की कठोर भाषा से निन्दा की। उस प्रकार से आङ्गिरस शुन:शेप देवरात वैश्वामित्र हुआ।

यहाँ पर भी आख्यान समाप्त नहीं हुआ। महर्षि विश्वामित्र केवल शुन:शेप को पुत्ररूप से ग्रहण ही नहीं किया अपितु अपने सौ पुत्रों के मध्य में शुन:शेप को पचास पुत्रो से बड़े भाई के रूप में स्वीकार किया। ये पचास मधुच्छन्दा इसकी अपेक्षा से बड़े थे और अन्य पचास उसकी अपेक्षा से छोटे थे। देवरात वैश्वामित्र के शुन:शेप का स्थान मध्यवलत था, मधुच्छन्दा के उपर। यहाँ पर ही समस्या का आरम्भ हुआ। जो मधुच्छन्दा इसकी अपेक्षा से बड़े थे, वे शुन:शेप को पुत्र के रूप में स्वीकार नहीं किया (न ते कुशलं मेनिरे)। इसलिए उन्होंने विद्रोह किया। उनके द्वारा उन सभी विद्रोहियों का विश्वामित्र ने अपने पुत्र के अधिकार से उन्हें वंचित कर दिया। केवल इतना ही नहीं, कुलीनता के रहित होने से और विद्या के अभाव से वे क्रम से अधोगति को प्राप्त हुए। उनका वंश दस्यु कहलाया। ब्राह्मण ने उनका कुछ वंशपरिचय दिया –जैसे अन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द, मुतिब इत्यादि। अब ये कुछ इनमे से प्रदेश के नाम से अथवा कुछ जातिरूप से प्रसिद्ध है। अन्य पुत्रों के लिए विश्वामित्र के द्वारा आशीर्वाद की वर्षा हुई। वह उनके लिए धनवान वीरवान हो –इत्यादि अनेक प्रकार के आशीर्वाद दिया और वे ही विश्वामित्र के सम्पत्ती के उत्तराधिकारी होगे ये भी जान लिया गया। शुन:शेप द्वैत उत्तराधिकार को प्राप्त किया। उसने आङ्गिरस गाथी ये दोनों प्राप्त की। उसके दरिद्रता अध्यवसायनिष्ठाविद्याधैर्यसहिष्णुता इत्यादि गुण सार्थकमण्डित हुए।

चौदहवां पाठ समाप्त

टिप्पणी

15

विश्वामित्र-नदी संवाद

प्रस्तावना

जैसे किसी भवन की भित्ति होती है वैसे ही भारतीय संस्कृति की भित्ति वेद हैं। अत: संस्कृत साहित्य में वेदों का स्थान सबसे श्रेष्ठ है। भारत में धर्म व्यवस्था वेदाधारित ही है। वेद धर्म के निरूपण में स्वतन्त्र भाव से प्रमाण है, स्मृति आदि तो वेद मूलक ही हैं। अत: श्रुति और स्मृति के विरोध में श्रुति ही मान्य है। न केवल धर्म की मूलकता से ही वेद समादृत है, अपितु इस विश्व में सर्वप्राचीन ग्रन्थ भी ये ही हैं। प्राचीन धर्म समाज-व्यवहार-आदि के वस्तु ज्ञान के लिए श्रुति ही सक्षम है। ''विद्यन्ते धर्मादय: पुरुषार्था: यै: ते वेदा:''। सायण ने तो अपौरुषेय वाक्य को वेद कहा है। इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट के परिहार के लिए जो अलौकिक उपाय बताता है वह वेद होता है। कारिका –

> **''प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।**
> **एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता।।''**

वेद चार होते हैं। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, और अथर्ववेद। वहाँ ऋग्वेद में अनेक रसपूर्ण संवाद सूक्तहैं। वैदिक कथा साहित्य में विश्वामित्र-नदी कथा एक अन्यतम कथा है। इस प्रकार ऋग्वेद में अनेक सूक्त कथोपकथन की प्रधानता वाले दिखते हैं। अत: यह कथोपकथन संवाद नाम से प्रसिद्ध है। कथोपकथन में विश्वामित्र-नदी कथा अतीव मनोरम है। यहाँ शुतुद्रु और विपाशा नदी की कथा है। उनकी सृष्टी की कारण क्या है। उनका सृष्टि कर्ता कौन है? विश्वमित्र के साथ नदीयों की क्या वार्ता हुई इत्यादि इस पाठ में प्रस्तुत है।

उद्देश्य

इस पाठको पढ़कर आप सक्षम होंगे–

- वैदिक साहित्य का इतिहास जान पाने में;

- मुनि-ऋषीयों का चारित्रिक वर्णन जान पाने में;
- वैदिक युग में जो नदियाँ थी उनके विषय में जान पाने में;
- किस लिए नदीयों का सृजन किया उनका क्या कारण था जान पाने में;
- मन्त्र का संहिता पाठ जान पाने में;
- मन्त्र का पदपाठ जान पाने में;
- स्वयं ही मन्त्रों की व्याख्या कर जान पाने में;
- स्वयं ही मन्त्रों का अन्वय कर पाने में;
- मन्त्र में स्थित व्याकरण को जान पाने में;

15.1 मूलपाठ

प्र पर्व॑तानामुश॒ती उ॒पस्था॒दश्वे॑इव॒ विषि॑ते॒ हास॑माने।
गावे॑व शु॒भ्रे मा॒तरा॑ रिहा॒णे विपा॑ट्छुतु॒द्री पय॑सा जवेते॥1॥

इन्द्रे॑षिते प्रस॒वं भिक्ष॑माणे॒ अच्छा॑ समु॒द्रं र॒थ्ये॑व याथः।
स॒मा॒रा॒णे ऊ॒र्मिभिः॒ पिन्व॑माने अ॒न्या वा॑म॒न्याम॒प्ये॑ति शु॒भ्रे॥2॥

अच्छा॒ सिन्धुं॑ मा॒तृत॑मामयासं॒ विपा॑शमु॒र्वीं सु॒भगा॑मगन्म।
व॒त्समि॑व मा॒तरा॑ संरिहा॒णे स॑मा॒नं योनि॒मनु॑ सं॒चर॑न्ती॥3॥

ए॒ना व॒यं पय॑सा॒ पिन्व॑माना॒ अनु॒ योनिं॑ दे॒वकृ॑तं॒ चर॑न्तीः।
न वर्त॑वे प्रस॒वः सर्ग॑तक्तः किं॒युर्विप्रो॑ न॒द्यो॑ जोहवीति॥4॥

रम॑ध्वं मे॒ वच॑से सो॒म्याय॒ ऋता॑वरी॒रुप॑ मु॒हूर्त॒मेवैः॑।
प्र सिन्धु॒मच्छा॑ बृह॒ती म॑नी॒षाव॒स्युर॑ह्वे कु॒शि॒कस्य॑ सू॒नुः॥5॥

इन्द्रो॑ अ॒स्माँ अ॑रद॒द्वज्र॑बाहु॒रपा॑हन्वृ॒त्रं प॑रि॒धिं न॒दीना॑म्।
दे॒वो॑ऽनयत्सवि॒ता सु॑पा॒णिस्तस्य॑ व॒यं प्र॑स॒वे या॑म उ॒र्वीः॥6॥

प्र॒वाच्यं॑ शश्व॒धा वी॒र्यं॑ 100 तदिन्द्र॑स्य॒ कर्म॒ यदहिं॑ वि॒वृश्च॑त्।
वि वज्रे॑ण परि॒षदो॑ जघा॒नाय॒न्नापोऽय॑नमि॒च्छमा॑नाः॥7॥

ए॒तद्वचो॑ जरित॒र्मापि॑ मृष्ठा॒ आ यत्ते॒ घोषा॒नुत्त॑रा यु॒गानि॑।
उ॒क्थेषु॑ कारो॒ प्रति॑ नो जुष॒स्व मा नो॒ नि कः॑ पुरुष॒त्रा नम॑स्ते॥8॥

ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः॥9॥

आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते॥10॥

यदङ्ग त्वा भरता संतरेयुर्गव्यन्ग्राम इषित इन्द्रजूतः।
अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम्॥11॥

अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम्।
प्र पिन्वमाध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम्॥12॥

उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत।
मादुष्कृतौ व्येनसान्यौ शूनमारताम्॥13॥

15.1.1 व्याख्या

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वेइव विषिते हासमाने।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते॥1॥

पदपाठ– प्र। पर्वतानाम्। उशती इति। उपस्थात्। अश्वे इवेत्यश्वेऽइव।
विसिते इति विऽसिते। हासमाने इति॥ ग्रावाऽइव। शुभ्रे इति।
मातरा। रिहाणे इति। विऽपाट् शुतुद्री। पयसा। जवेते इति॥1॥

अन्वय– पर्वतानाम् उपस्थात् विपाट्शुतुद्री उशती, विषिते अश्वेइव, हासमाने शुभ्रे मातरा रिहाणे पयसा प्र जवेते।

व्याख्या –कुशिक पुत्र विश्वामित्र घूमते घामते विपाट और शुतुद्री नदियों के किनारे पहुंचे। उन नदियों में अगाध जल था। अतः नदियों को पार करने की इच्छा करने वाले विश्वामित्र ने नदियों से प्रार्थना की। प्रथम के तीन मन्त्रों द्वारा विश्वामित्र नदियों की स्तुति करते हैं। विपाट् (आधुनिक व्यास) और शुतुद्री (आधुनिक सतलज) ये दोनों नदियाँ पहाड़ से निकल कर पानी से भरपूर होकर वेग से समुद्र की तरु उसी प्रकार दौड़ी जा रही हैं, जिस प्रकार दो घोड़ियाँ बन्धन से मुक्त होने पर प्रसन्नता के कारण हिनहिनाती हुई इधर-उधर वेग से भागती हैं, अथवा दो गायें अपने बछड़ों की तरफ वेग से दौड़ती हैं॥

सरलार्थ–

(विश्वामित्र नदी के प्रति कहते हैं कि) पर्वत की गोद से निकल कर (समुद्र को उद्देश्य करके) गमन लिप्सा से (परस्पर) स्पर्धिनी के रूप में दोड़ती हुई, दो घोड़ियाँ बन्धन से मुक्त होने पर प्रसन्नता के कारण हिनहिनाती हुई इधर-उधर वेग से भागती हैं, अथवा दो गायें अपने बछड़ों की तरफ वेग से दोड़ती हैं ऐसा प्रतीत होता है।

व्याकरण -

- शती-वश्-धातु से शतरि ङीप्। ग्रहिज्या इत्यादि सूत्र से संप्रसारण से उशती बनता है।
- उपस्थात्- उप पूर्वक स्था-धातु से क प्रत्यय में उपस्थ बनता है। उसके पञ्चमी एकवचन में।
- विषिते-वि पूर्वक षिञ्-धातु से क्त प्रत्यय में विषित। तथा उसका स्त्री लिङ्ग प्रथमा द्विवचन में यह रूप बनता है।
- हा समाने-हस्-धातु से शानच में हसमान। तथा उसके स्त्री लिङ्ग प्रथमा द्विवचन में यह रूप बनता है।
- शुभ्रे- शुभ्-धातु से र प्रत्यय करने पर स्त्रीलिङ्ग प्रथमाद्विवचन में यह रूप बनता है।
- रिहाणे- लिह धातू से शानच में लस्य छन्दसि आदेशे से न को ण आदेश से स्त्री लिङ्ग प्रथमा द्विवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- जवेते-जङ् धातु से लट् लकार प्रथम पुरुष द्विवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः।
समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रेछ्

पदपाठ- **इन्द्रेषिते इतीन्द्रऽइषइवे। प्रऽसवम्। भिक्षमाणे इति। अच्छ। समुद्रम्। रथ्याऽइव। याथः समाराणे इति सम्ऽआराणे। ऊर्मिऽभि!। पिन्वमाने इति। अन्या। वाम्। अन्याम्। अपि। एति। शुभ्रे इति**

अन्वय- इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाने समुद्रम् अच्छा रथ्येव याथः। (हे) शुभ्रे! समारणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने वाम् अन्या अन्याम् अति एति।

व्याख्या- हे नदीयों! 'इन्द्रेषिते' इन्द्र के द्वारा प्रेरित होकर 'सं आराणे' एक दूसरे के अनुकूल चलती हुई तथा 'उर्मिभिः पिन्वमाने' अपनी लहरों से आसपास के प्रदेशों को तृप्त करती हुई तथा 'प्रसवंभिक्षमाणे' उन उपजाऊ प्रदेशों में धान्य की उत्पत्ति को उत्तम बनाती हुई 'शुभ्रे' तेजस्वी तुम दोनों 'रथ्या इव' रथ से जाने वाले रथियों के समान 'समुद्रं अच्छा याथः' समुद्र की तरफ सीधी जाती हो। 'वां' तुम में से 'अन्या' एक'अन्यां अप्येति' दूसरी से मिलती है।

सरलार्थ-इन्द्र से प्रेषित, प्रवाह की भिक्षयित्री, और दो सारथियों की तरह समुद्र को उद्देश्य करके (तुम दोनों) दोड़ती है। हे शुभ्रजले, (तुम दोनों) यौग पद्य से जाती हो, ऊर्मियों के द्वारा दौड़ते हुए परस्पर परस्पर एक दुसरे के प्रति जाती हैं।2

व्याकरण -

- इन्द्रेषिते- इन्द्रेण इषिते, इष्-धातु से क्त प्रत्यय इडागम करने पर यह रूप सिद्ध होता है।
- भिक्षमाणे- भिक्ष-धातु से शानच करने पर यह रूप सिद्ध होता है।

- प्रसवम्- प्रपूर्वक सू-धातु से अप्प्रत्यय करने पर प्रसव सिद्ध होता है।
- रथ्या- रथ्यास्य इदम् तस्येदम् इस अर्थ में रथाधत् इस सूत्र से यत् प्रत्यय करने पर रथ्य सिद्ध होता है।
- याथः-या-धातु से लट् लकार मध्यम पुरुष द्विवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- समाराणे-सम्पूर्वक आपूर्वक ऋ गतौ धातु से कानच में गुण में यह रूप सिद्ध होता है।
- पिन्वमाने-पिवि धातु से शानच् नमागम मुकागम में यह रूप बनता है।

अच्छा सिन्धु मातृतमामयासं विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म।
वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु संचरन्ती॥3॥

पदपाठ- **अच्छ। सिन्धुम्। मातृऽतमिम्। अयासम्। विऽपाशम्। उर्वीम्। सुऽभगाम्। अगन्म वत्सम्ऽइव। मातरा। संरिहाणे इति सम्ऽरिहाणे। समानम्। योनिम्। अनु। संचरन्ती इति सम्ऽचरन्ती॥3॥**

अन्वय- मातृतमां सिन्धुम् अच्छ अयासम्, उर्वीं सुभगां विपाशाम् अगन्म। मातरा वत्समिव संरिहाणे समानं योनिम् अनु सञ्चरन्ती (अगन्म)।

व्याख्या-जिस प्रकार दो गाये बछड़े को चाटती है उसी प्रकार एक ही उदिष्ट स्थान समुद्र की तरफ दौड़ती आती जाती है इनमे अत्यंत प्यार से युक्त तथा समुद्र की तरु बहने वाली शतुद्री के पास गया और अति विशाल और उत्तम ऐश्वर्यवाली विपाशा के पास भी गए।

सरलार्थ - जिस प्रकार दो गाये अपने बछड़े को चाटने के लिए उसकी तरफ भागती है उसी प्रकार ये दोनों नदिया अपने एक ही उदिष्ट स्थान समुद्र की तरु भागती है ये दोनों ही माता के समान लोगों का पालन करती है विशाल और ऐश्वर्यशाली हैं।

व्याकरण

- मातृतमाम्-अतिशयेन मातरम्। अतिशय अर्थ में तमप् प्रत्यय है।
- अयासम्- या-धातु से लुङ् लकार उत्तम पुरुष एकवचन में।
- सुभगाम्- शोभनः भगः यस्याः ताम्।
- संरिहाणे- सम्पूर्वक लिह्-धातु से शानच करने पर लकार के स्थान में रकार आदेश और नकार के स्थान में णकार करने पर।
- अगन्म- गम्-धातु से लुङ् उत्तम पुरुष द्विवचन में यह रूप बनता है।
- सञ्चरन्ती- सम्पूर्वक चर्-धातु से शतरि ङीप् करने पर प्रथमा द्विवचन में यह रूप बनता है। पदान्त ईकार प्रगृह्य है।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न

165. पर्वत की गोद से कौन सी नदी प्रवाहित होती है?

166. कौन इस प्रकार की नदी प्रवाहित किया गया है?

167. पिन्वमाने इसकी व्युत्पत्ति लिखो।

168. इन्देषिते इसका क्या अर्थ है?

169. विपाशा नदी के तट पर कौन आये?

170. संरिहाणे इसकी व्यत्पत्ति लिखो।

एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः कियुविप्रो नद्यो जोहवीति॥4॥

पदपाठ- **एना। वयम्। पयसा। पिन्वमानाः। अनु। योनिम्। देवऽकृतम्। चरन्तीः न। वर्तवे। प्रऽसवः। सर्गऽतक्तः। किम्ऽयुः। विप्रः। नद्यः। जोहवीति॥4॥**

अन्वय- एना वयं पयसा पिन्वमाना देवकृतं योनिम् अनु चरन्तीः। सर्गतक्तः प्रसवः न वर्तवे। किंयुः विप्रः नद्यो जोहवीति।

व्याख्या-इसी प्रकार स्तुति में नदी विश्वामित्र के प्रति कहता है। हम नदियाँ इस पानी से प्रदेशों को तृप्त करती हुई देव के बताए गए स्थान की तरफ चली जा रही है बहने के काम में रत रहने वालो हम अपने उद्योग से कभी विराम नहीं लेती हैं फिर यह ब्राह्मण नदियों की क्यों स्तुति कर रहा है।

सरलार्थ- (इस प्रकार की स्तुति करते हुए विश्वामित्र के प्रति नदिया कहती हैं की) इस प्रकार की हम (नदियां) अपनी जलधारा से इन्द्र के द्वारा निर्मित समुद्र की तरफ जाती हैं। स्वभाव से प्रवाहित होने से हमारी गति रोकी नही जा सकती है हमारी गति बिना रुकावट के है। कैसे यह ऋषि नदी की बार-बार स्तुति करता है।

व्याकरण -

- एना- इदम् शब्द का तृतीया एकवचन में, विभक्ति इसको आदेश होने पर।
- देवकृतम्- देव के द्वारा किया गया। कृ-धातु से क्त प्रत्यय करने पर।
- वर्तवे- वृ-धातु से तवेन प्रत्यय करने पर। (वैदिक रूप है)।
- प्रसवः -प्रपूर्वक षू-धातु से अप् प्रत्यय करने पर।
- सर्गतक्तः - सर्गे तक्तः। सृज्-धातु से घञ प्रत्यय करने पर सर्ग। तक् +क्त।

टिप्पणी

- कियु:- किम् इच्छन् इस अर्थ में क्यच् प्रत्यय करने पर। क्य छन्दसि इससे उ प्रत्यय करने पर।
- जोहविति- पुनः पुनः ह्वयति। यङ् प्रत्यय करने पर द्वित्व होने पर अभ्यास में ज आदेश गुण करने पर संप्रसारण में इडागम गुण और अव आदेश करने पर।

रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः॥5॥

पदपाठ- **रमध्वम्। मे। वचसे। सोम्याय। ऋतऽवरीः। उप। मुहूर्तम्। एवैः प्र। सिन्धुम्। अच्छ। बृहती। मनीषा। अवस्युः। अह्वे। कुशिकस्य। सूनुः॥**

अन्वय- (हे) ऋतावरीः मे सोम्याम् वचसे मूहर्तम् एवैः उप रमध्वम्। कुशिकस्य सूनुः (अहम्) अवस्युः बृहती मनीषा सिन्धुम् अच्छा प्र अह्वे।

व्याख्या-विश्वामित्र नदी के प्रति कहते है। 'ऋतावरी'। ऋत-जल को कहते है। उस प्रकार की हे नदियों आप 'मे' विश्वामित्र के सोम का सम्पादन के लिए आप प्रयत्न कीजिए। पञ्चमी अर्थ में तृतीया है। शीघ्र जाने के लिए 'मुहूर्त' मुहूर्तमात्र की आवश्यकता है। उपपूर्वक रमिरुप संहार अर्थ में है। क्षणमात्र शीघ्र जाना। सामान्य रूप से नदियों को समाहित करने वाली प्रयोजन करने वाली पुरोवति शुतुद्री के प्रति कहते है। 'कुशिक' राजर्षि का पुत्र मैं विश्वामित्र'बृहती' महान 'मनीषा' मन से युक्त स्तुति 'अवस्युः' आत्मा की रक्षा करने के लिए 'सिन्धु' शुतुद्री आपकी विशेष रूप से पूजा करता हूँ। यहाँ निरुक्त में कहा गया है -जल से परिपूर्ण नदियां 'थोड़ी देर के लिए सोम के लिए अथवा सोम संपादन के लिए रोक दीजिये। बहती हुई महान सिन्धु आपको मैं मन से प्रार्थना करता हुआ कुशिक का पुत्र आप को कुछ समय के लिए रुकने के लिए प्रार्थना करता हूँ। कुशिक नाम का राजा हुआ (निरु. 2/25) इति।।

सरलार्थ-(विश्वामित्र नदी के प्रति कहते है) हे नदियों मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ मैं आदर भावना से आपके रुकने के लिए प्रार्थना करता हूँ। आप हमारी हितैशी हो (मैं) कुशिक पुत्र (विश्वामित्र) उच्चै प्रकार से नदी (शुतुद्री का) आह्वान करता हूँ।

व्याकरण -

- ऋतावरीः -ऋतम् यस्याः सा इस अर्थ में मतुप् करने पर छन्दससीवनिपौ इससे वनिप करने पर, वनो र च इससे ङीप् करने पर वन के नकर को रादेश होने पर वा छन्दसि इससे दीर्घ होने पर। उसका सम्बोधन बहुवचन में यह रूप बनता है।
- एवैः- इण्-धातु से इणशीङ्भ्यां वन् इससे वन् प्रत्यय करने पर और गुण करने पर तृतीया बहुवचन में यह रूप बनता है।
- मनीषा-मन का स्वामी मनीषा।

- अवस्यु:-अव: आत्मन इच्छति इस अर्थ में सुप् आत्मन क्यच् इससे क्यच् करने पर उसके बाद क्याच् छन्दसि इससे उ प्रत्यय करने पर अवस्यु: यह रूप बनता है।

इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्रबाहुरपाहन्वृत्रं परिधिं नदीनाम्।
देवोऽनयत्सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः॥6॥

पदपाठ- **इन्द्रः। अस्मान्। अरदत्। वज्रऽबाहुः। अप। अहन्। वृत्रम्। परिऽधिम्। नदीनाम्॥**
देवः। अनयत्। सविता। सुऽपाणिः। तस्य। वयम्। प्रऽसवे। यामः। उर्वीः॥6॥

अन्वय- वज्रबाहु: इन्द्र: अस्मान् अरदत्, नदीनां परिधि वृत्तम् अप अहन्। सुपाणि: सविता देव: (अस्मान्) अनयत्। वयं उर्वी: तस्य प्रसवे याम:।

व्याख्या-नदी प्रत्युत्तर में कहती है। हे विश्वमित्र, 'वज्रबाहु:' वज्र से युक्त जिसकी भुजा है वह वज्र बाहु। उस प्रकार का बलवान् 'इन्द्र' ने हम नदीयों का निर्माण किया है। रदति खनति कर्मा। इंद्र ने हमे खोदा। कैसे खोदा इस विषय में कहते है। नदियों को सिमित करने वाले वृत्र को मारो। वरण करने वाले आकाश को वृत्र मेघ कहते हैं। उस प्रकार के मेघ को मारो। उसके मरने पर जल गिरता है। उस प्रकार के मेघ से हमारा निर्माण होता है। इस प्रकार से मेघ के मारने पर हम नदियों का निर्माण किया है। केवल उसने हमारा निर्माण ही नहीं किया, अपितु 'सविता' सभी जगत के प्रेरक'सुपाणि:' शोभन हाथ से हमारी उत्पत्ति की गई है, प्रकाशमान देव इन्द्र हमको लेकर जाते हैं। बादलों को भेद करके उसने हम को जल से परिपूर्ण समुद्र को पूर्ण करो। 'उस प्रकार के सामर्थ्य वाले इन्द्र हम को जल से परिपूर्ण करके ले जाता है। उक्त अर्थ में यास्क कहते है - 'इन्द्र ने हाथ में वज्र धारण किया हुआ है। रदति खनति कर्म। उसने वृत्र को मारकर जल का निर्माण किया है। देवो को ले जाने वाले सुंदर हाथ वाले कल्याण कारी इन्द्र है। 'पाणि: पणायते: पूजाकर्मण: प्रगृह्य पाणी' देवो की पूजा करता है। उसकी आज्ञा से हम प्रवाहित होती है' (निरु. 2/26) इति।

सरलार्थ- हाथो में वज्र को धारण करने वाले इन्द्र ने हम (नदी) को बहाया है। वह (इन्द्र) नदियों के गति में बाधा डालने पर वृत्र(मेघ) को मारा है। सुन्दर हाथों से युक्त इन्द्र हम नदियों को ले जाता है। हम (नदि) उस(इन्द्र की) आज्ञा से ही बहते है।

व्याकरण -

- अरदत्- रद्-धातु से लङ् प्रथम पुरुष एकवचन में।
- अनयत्-नी-धातु से लङ् प्रथम पुरुष एकवचन में।
- याम:-या-धातु लट् प्रथम पुरुष एकवचन में।

पाठगत प्रश्न

171. नदियाँ कहाँ पर जाती है?

172. ऋषि नदी की स्तुति क्यों करता है?

173. भरताः इसका क्या अर्थ है?

174. शीभम् इसका क्या अर्थ है?

175. वज्रबाहु कौन है?

176. वृत्र कौन है?

प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं 100 तदिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत्।
वि वज्रेण परिषदो जघानायन्नापोऽयनमिच्छमानाः॥7॥

पदपाठ- **प्रऽवाच्यम्। शश्वधा। वीर्यम्। तत्। इन्द्रस्य। कर्म। यत्। अहिम्। विऽवृश्चत्॥ वि। वज्रेण। परिऽसदः। जघान। आयन्। आपः। अयनम्। इच्छमानाः**

अन्वय- इन्द्रस्य तत् वीर्यं कर्म यदलह विवश्चत् शश्वधा प्रवाच्यम्। वज्रेण परिषदः वि जघानः (तदनन्तरम्) आपः अयनम् इच्छमानाः आयन्।

व्याख्या-जो यह इन्द्र है इसने 'अहि राक्षस को मारा, इन्द्र का वह कर्म और बल अनेक तरह से वर्णन करने योग्य है। जब इन्द्र ने अपने वज्र से चारो स्थित असुरों को मारा, तब जल प्रवाह अपने स्थान से समुद्र की इच्छा करता हुआ बहने लगा।।

सरलार्थ-इन्द्र के वे पराक्रमशालि कार्य है जो उसने अहि(वृत्र को) मारा, वह (प्रशंसनीय) ही है। वह वज्र से (जल का प्रतिबन्धक) मेघ को काट डाला। जल अपने मार्ग का अन्वेषण करता हुआ बहाने लगा।

व्याकरण -

- प्रवाच्यम्- प्र पूर्वक वच्-धातु से ण्यत् प्रत्यय करने पर।
- वीर्यम् - वीर्-धातु से यत् प्रत्यय करने पर।
- विवृश्चत् - व्रश्च्-धातु लङ प्रथम पुरुष एकवचन में।
- परिषदः - परि पूर्वक सद्-धातु से क्विप करने पर।
- जघान- हन्-धातु से लिट् प्रथम पुरुष एकवचन में।
- आयन्-इ-धातु से लङ् प्रथम पुरुष बहुवचन में।
- इच्छमानाः -इष्-धातु से शनच् प्रथमा बहुवचन में।

एतद्वचो जरितर्मापि मृष्ठा आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्र नमस्ते॥8॥

पदपाठः- **एतत्। वचः। जरितः। मा। अपि। मृष्ठाः। आ। यत्। ते घोषान्। उत्ऽतरा। युगानि उक्थेषु। कारो इति। प्रति। नः जुषस्व। मा। नः। नि। कारिति कः। पुरुषऽत्रा। नमः। ते॥8॥**

अन्वयः- (हे) जरितः एतद् वचः मा अपि मृष्ठाः यत्ते आ घोषान् उत्तरा युगानि। हे कारो उक्थेषु नः प्रति जुषस्व। मा नः पुरुणत्र नि कः, ते नमः।

व्याख्या-हे(जरितः)स्तोता ! (तेएतत् वचः)अपनी यह स्तुति (मा अपि मृष्ठाः) कभी भूलना मत। (यत्) क्योंकि (उत्तरा युगानि)आगे आने वाले समय में (घोषान्) यह स्तुति प्रसिद्ध होगी हे (कारो) स्तुति करने वाले (उक्थेषु नःप्रति जुषस्व)यज्ञों में हमारी प्रशंसा कर, (पुरुषत्र) पुरुषों के द्वारा प्रवतित कर्मों में (नःमा नि कः)हमारा अनादर मत कर, (तेनमः) तुझे नमस्कार है।।

सरलार्थ-हे स्तुति गायक, इस वाणी का तू कदापि विस्मरण मत कर जो भावी युग के मानव हैं वे इस वचन को सुन सके। हे कवि, स्तुति से मेरा आदर कर। (उक्ति-प्रत्युक्ति से) मनुष्यकोटी में हमें नीचे (नदीः) मत ले जा॥8।

व्याकरण -

- जरितः-जृ-धातु से तृच् के सम्बोधन में।
- मृष्ठाः-मृष्-धातु से लुङ् मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- घोषान्- घुष्श्रवणे धातु से लट् लकार प्रथमपुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- कारो- कृ-धातु से उणादी से सम्बोधन में यह रूप सिद्ध होता है।
- जुषस्व- आत्मनेपदी जुष्-धातु से लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- कः -कृ-धातु से लुङ् में मध्यम पुरुष एकवचन में यह वैदिक रूप बनता है।
- पुरुषत्र- सप्तम्यर्थ देवमनुष्य पुरुमतर्येभ्यो द्वितीयसप्तम्योर्बहुलम् त्रा प्रत्यय से सिद्ध होता है।

ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः॥9॥

पदपाठः- **ओ इति। सु। स्वसारः। कारवे। शृणोत। ययौ। वः। दूरात्। अनसा। रथेन नि। सु। नमध्वम्। भवत। सुऽपाराः। अधःऽअक्षाः। सिन्धवः। स्रोत्याभिः॥9॥**

अन्वयः- ओ स्वसारः कारवे सु शृणोत, दूरात् अनसा रथेन वः ययौ। हे सिन्धवः स्रोत्याभिः निनमध्वम्, अधोअक्षाः सुपाराः भवतः।

व्याख्या-हे (स्वसारः सिन्धवः)भगिनी रूपी नदियों तुम (सु शृणोतु) मेरी बात अच्छी तरह सुनो, मैं (वः) तुम्हारे पास (दूरात् अनसा रथेन ययौ) बहुत दूर से वाहन और रथ से आया हूँ, अतः तुम (कारवे) स्तुति करने वाले मेरे लिए (स्रोत्याभिः नि सु नमध्वं) अपने प्रवाहों के साथ अच्छी तरह झुक जाओ, (सुपाराः)आसानी से पार करने योग्य हो जाओ, (अधोअक्षाः) रथ की धुरा से भी नीचे हो जाओ।।

टिप्पणी

सरलार्थ- (उसके बाद विश्वामित्र ने नदीयों को कहा) हे नदियों, (मेरी) कवि की वाणी ध्यान से सुनो (क्योंकि) वह तेरे समक्ष बहुत दूरसे रथ के द्वारा आया हुआ है। अपनी जलधारा को हे प्रवहमान नदियों रथ की धुरी से नीचे ले लो, जिससे रथ तरण योग्य हो।9।

व्याकरण-

- ओ- सम्बोधन वाचक निपात।
- शृणोत- श्रु-धातू के लोट् लकार मध्यमपुरुष बहुवचन में यह रूप बनता है।
- ययौ- या-धातु से लिट् लकार उत्तम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- नमध्वम्- नम्-धातु के लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- भवत- भू-धातू के लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।

पाठगत प्रश्न

177. इन्द्र ने किससे वृत्र को मारा?

178. शश्वधा का क्या अर्थ है ?

179. नदी से क्या प्रार्थाना की?

180. मापि मृष्ठाः का क्या अर्थ है?

181. विश्वामित्र किससे आये?

182. नदियों के प्रति विश्वामित्र ने क्या प्रार्थाना की।

15.1.2 मूलपाठ

आ तें कारा शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनंसा रथेंन।
नि तें नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्यां शश्वचै तें॥10॥

पदपाठः- **आ। ते। कारो इतिं। शृणवाम। वचांसी। ययाथं। दूरात्। अनंसा। रथेंन नि। ते। नंसै। पीप्यमाऽइंव। योषां। मर्यायऽइव। कन्यां। शश्वचै। त इतिं ते॥10॥**

अन्वयः- (हे कारो) ते वचांसि शृणवाम (यत् त्वं) दूराद् अनसा रथेन ययाथ। पीप्याना इव योषा ते नंसै, मर्याय इव कन्या ते शश्वचैः।

व्याख्या-हे (कारो)स्तोता ! (तेवचांसि शृणवाम) हम तेरी प्रार्थनाओं को सुनती हैं, कि तुम (दूरात् अनसारथेनआ ययाथ) दूर से वाहन और रथ से आए हो। इसलिए जिस प्रकार

(पीप्याना योषा इव) बच्चे को दूध पिलाने वाली माता नम्र हो जाती है, अथवा (कन्यामर्यायशश्वचै:)कोई कन्या पुरुष को आलिंगन देने के लिए नम्र हो जाती है, उसी प्रकार हम (तेनि नंसै) तेरे लिए झुक जाती है।

सरलार्थ- हे कवे, हमने आपकी अनुज्ञा सुनी (क्योंकि) आप दूर से रथ के द्वारा आये हैं। जैसे स्तनवती माता (अपने पुत्र के लिए) और जैसे कोई बालक अपने पिता का आलिङ्गन करता है (वैसे ही) तेरे लिए मैं मेरे नीचे जा रही हूं (जल स्तर स्वल्प करती हूँ)।

व्याकरण -

- श‍ृणवाम-श‍ृ-धातु के लट् लकार उत्तम पुरुष बहुवचन का वैदिक रूप है।
- ययाथ- या-धातु से लिट् लकार मध्यम पुरुष बहुवचन में यह रूप बनता है।
- नंसौ- नम्-धातु से लुङ लकार उत्तम पुरुष बहुवचन यह रूप सिद्ध होता है।
- श्नवचै: -श्वच्-धातु से क्विप् में यह रूप सिद्ध होता है।

यदङ्ग त्वा भरता संतरेयुर्गव्यन्ग्रामं इषित इन्द्रंजूत:।
अर्षादहं प्रसव: सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम्॥11॥

पदपाठ:- **यत्। अङ्ग। त्वा। भरता:। सम्ऽतरेंयु:। गव्यन्। ग्राम:। इषित:। इन्द्रंजूत: अर्षात्। अहं। प्रऽसव:। सर्गतक्त:। आ। व:। वृणे। सुऽमतिम्। यज्ञियानाम॥11।**

अन्वय:- अङ्ग यद् गव्यन् इन्द्रजूत: इषित: भरता: ग्राम: त्वा संतरेयु: सर्गतक्त: प्रसव: अर्षाद् अह। यज्ञियानाम् व सुमतिम् आ वृणे।

व्याख्या- विश्वामित्र ने नदी को उत्तर दिया। हे (अङ्ग)प्रिय नदियों !(यत्)जब (भरता:) भरण पोषण करने वाले मनुष्य (त्वा संतरेयु:)तुम्हें पार करना चाहें, तब (गव्यन् इषित:)तुम्हें पार करने की इच्छा से प्रेरित होकर अथवा (इन्द्रजूत:)इंद्र से प्रेरित होकर (ग्राम:) उन मनुष्यों का समूह (अह:) प्रतिदिन (सर्गतक्त: प्रसव:) बहने वाले प्रवाह को (अर्षात्) पार कर जाए। मैं (यज्ञियानां व: सुमलत आ वृणे)पूजा के योग्य तुम्हारी उत्तम बुद्धियों को मांगता हूँ।

सरलार्थ: -हे (नदियों), (तुम्हारी अनुमति प्राप्त हो गयी, अत:) भरत वंशीय(हम) तुम्हें (नदी) पार करेंगे। (तुझसे) अनुज्ञा प्राप्त इन्द्र से प्रेषित समूह को पार करायेंगे। तुम्हारी गति स्वाभाविक रूप से चले। पूत सलिल का मैं समर्थन चहाता हूँ।11।

व्याकरण -

- सन्तरेयु:-सम् पूर्वक तृ-धातु से विधिलिङ् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- इन्द्रजूत:-इन्द्र से जूत।

टिप्पणी

- गव्यन्- गो: से क्यच् करने पर।
- अर्षात्- ऋष्-धातु से लेट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- वृणे- वृ-धातु के लट् लकार उत्तम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम्।
प्र पिन्वमाध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम्॥12॥

पदपाठः- **अतारिषुः। भरताः। गव्यवः। सम्। अभक्त। विप्रः। सुऽमतिम्। नदीनाम् प्र। पिन्वध्वम्। इषयन्ती। सुऽराधाः। आ वक्षणाः। यात। शीभम्॥12॥**

अन्वयः- गव्यवः भरताः अतारिषुः। विप्रः नदीनाम् सुमतिम् सम् अभक्त। सुराधाः (यूयं) इषयन्तीः प्र पिन्वध्वम्, वक्षणाः आ पृणध्वम्, शीभं यात।

व्याख्या-(गव्यवःभरताःअतारिषुः) पार जाने वाले तथा भरण पोषण करने वाले मनुष्य नदियों के पार उतर गये,(विप्रःनदीनां सुमतिसमभक्त) ज्ञानी विश्वामित्र ने नदियों की उत्तम बुद्धि को भी प्राप्त कर लिया। अब, हे नदियों !(इषयन्तीःसुराधाः)उत्तम अन्नों को पैदा करके उत्तम ऐश्वर्य बढ़ाने वाली तुम (वक्षणाःप्र पिन्वध्वं)नहरों को पानी से भरपूर भर दो, (आ पृणध्वं)अच्छी तरह पूर्ण कर दो, और (शीभंयात) वेग से बहो।

सरलार्थः - पार जाने की इच्छा वाले भरत वंशीय पार उतर गये। ब्राह्मण ने नदियों का समर्थन अच्छी प्रकार से प्राप्त किया। शोभन धनवती (तुम) धन उत्पादन करती हुई अपने स्थान पर ही अच्छी प्रकार से बहो, प्लावित हों, वेग से बहो॥12॥

व्याकरण -

- आतारिषुः-तृ-धातु से लुङ् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- भक्त-भज्-धातु से लुङ् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- इषयन्तीः- इष्-धातु से णिच् में यह रूप सिद्ध होता है।
- पिन्वध्वम्- पिन्व-धातु से लोट् लकार मध्यम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- पृणध्वम् -पृञ्-धातु से लोट् लकार मध्यम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- यात- या-धातु से लोट् लकार मध्यम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत।
मादुष्कृतौ व्येनसान्यौ शूनमारताम्॥13॥

पदपाठः- **उत्। वः। ऊर्मिः। शम्याः। हन्तु। आपः। योक्त्राणि। मुञ्चत। मा। अदुःऽकृतौ। विऽएनसा। अघ्न्यौ। शूनम्। आ। अरताम्॥13॥**

अन्वयः- आपः ऊर्मिः वः शम्या उद् हन्तु, आपः योक्त्राणि मुञ्चत। अदुष्कृतौ व्येनसौ अघ्न्यौ शूनताम् मा अरताम्।

व्याख्या-विश्वामित्र नदी से पुनः कहते हैं। हे नदियों (व:ऊर्मि:शम्या:हन्तु)तुम्हारी लहर यज्ञ स्तम्भ से टकराती रहें, (आप:योक्त्राणिमुञ्चत) तुम्हारे जल बैलों के जुक्षों को मुक्त करते रहें और इस प्रकार हे (अदुष्कृतौ वि एनसा अघ्न्यौ)कभी दुष्ट कर्म न करने वाली, पाप रहित और हिंसा के अयोग्य नदियों ! तुमसे (शूनंआरताम्)समृद्धि दूर न जाए।

सरलार्थ-हे नदियों प्रग्रह को छोड़ दो। दुष्कृति रहित पापर हित तिरस्कार के अयोग्य ये नदियाँ वृद्धि को प्राप्त न हो।13।

व्याकरण -

- हन्तु- हन् धातु से लोट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- मुञ्चत- मुञ्च्-धातू से लोट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- अरताम्- ऋ-धातु से लुङ लकार प्रथम पुरुष द्विवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न

183. प्र पिन्वध्वम् का क्या अर्थ है?
184. समभक्त का क्या अर्थ है?
185. उर्मिका अर्थ क्या है?
186. शून का क्या अर्थ है?
187. विश्वामित्र किसके राज पुरोहित थे?
188. विश्वमित्र किसके पुत्र थे?
189. विश्वामित्रने पौरहित्य से क्या प्राप्त किया?
190. विश्वामित्र किस नदी तट को प्राप्त हुए।
191. विश्वामित्र ने किस नदी तीर को प्राप्त किया।
192. विश्वामित्र नदी के समीप में क्या प्रार्थना की।
193. नदी का निर्माण किसने किया।
194. वृत्रासुर को किसने मारा।

7.2 विश्वामित्र-नदीसंवाद (संक्षेप से)

ऋग्वेद में अनेक रस पूर्ण संवाद सूक्त है। वैदिक कथा सहित्य में विश्वामित्र-नदी कथा एक

टिप्पणी

महत्वपूर्ण कथा है। इसी प्रकार ऋग्वेद में अनेक सूक्तो में कथनोपकथन की प्रधानता दिखाई देता है। कथनोपकथन को ही संवादनाम से प्रसिद्ध है। संवादविषय में पाश्चात्य पण्डितों के मत में भिन्नता दिखाई देती है। ड ओल्डेन वर्ग के मतानुसार से संवाद प्राचीन उपाख्यान का शेष भाग है। उसके मत के अनुसार से ऋग्वेद के उपाख्यान गद्यात्मक है। ड ज्रोदर आदि पण्डितों के मतानुसार से संवाद वैदिक नाटक का स्वरूप है। 'ड विन्टरनित्स' के मतानुसार से लोकगीत काव्य का यह स्वरूप है। काल में काव्य की उत्पत्ति और नवीन नाटकों की उत्पत्ति हुई है। इसी प्रकार भारतीय साहित्य इतिहास में संवादों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इन संवादों में विश्वामित्र-नदी संवाद अन्यतम महत्वपूर्ण संवाद है। प्राचीनकाल में विश्वामित्र राजा सुदास के पुरोहित थे। विश्वामित्र पौरहित्य से प्राप्त धन को लेकर बैलगाड़ी से विपाशा नदी और शुतुद्री नदी के तट के समीप गए। और उसके बाद नदीपार जाने के लिए जैसे नदि का जलस्तर नीचे होता है, उसके लिए महर्षि विश्वामित्र नदि की स्तुति करते हुए कहते है - बंधन से मुक्त घोड़े जैसे दौड़ते है उसी प्रकार सागर के साथ संगम के लिए पर्वत की गोद से बहती हुई श्रेष्ठ नदी मात्र शुतुद्री विपाशा के समीप आया। तथा विशाल सुन्दर नदियो के तट को प्राप्त किया है। जैसे दो गायें एक ही बछड़े को चाटने के लिए उसकी तरफ दौड़ती हैं उसी प्रकार ये नदियाँ भी सागर संगम के लिए एक ही लक्ष्य में बहती रहती है इस प्रकार की नदियों के तट पर आये। इस प्रकार विश्वामित्र ने नदियो की स्तुति की है। तब विश्वामित्र को उदिष्ट करके नदियाँ कहती है -

नदी-

हम इन्द्रदेव के द्वारा निर्माण करने पर अपनी गति से बहते है। हमारी गति को मत रोकिये। इसका अर्थ है जब वृत्रासुर पृथ्वीनाश के लिए नदियों की प्रवाह धारा को रोक दिया है। तब इन्द्रदेव ने वृत्रासुर को मारकर पर्वत की गोद से इन नदियों का निर्माण किया है। तो फिर किसलिए ऋषि बार-बार नदी की स्तुति करता है। ऋषि पुत्र कुशिक अपनी रक्षा के लिए सोमयुक्त वाणी से नदी को कुछ क्षण के लिए रुकने के लिए प्रार्थना करते है। वज्र हाथों वाले इन्द्र ने नदियों को रोकने वाले वृत्तासुर को मारकर हमें बहने के लिए बाहर लेकर के आये है। इन्द्र ने अहि को मारा यह इन्द्र का पराक्रम युक्त कार्य अवश्य कथन योग्य है। यह ही विश्वामित्र ने नदियों के प्रति कहते है। नदी प्रत्युत्तर में कहते है - हे स्तोता इस स्तुति वचन को कभी भी मत भूलों क्योंकि भावि पुरुष आपके इस स्तुति वचन को सुन सकते है। हे ऋषि स्तुति से केवल मुझ को आदर मत दो अपितु मेरी स्तुति से अलौकिक शोभा भी दीजिये। मैं तुमको नमन करता हूँ। उस विश्वामित्र नदी को बहने के रूप में सम्बोधन करते हुए कहते है -हे सुन्दर बहनों अब मेरे वचन को सुनो, क्योंकि बहुत दूर से यान के द्वारा अथवा रथ के द्वारा अतिक्रमण करके मै तुम्हारे समीप आया हूँ। हे नदियों कुछ नीचे जाओ। अपनी जलधारा को अन्त अथवा कम करके तैरने योग्या होकर बहो -विश्वामित्र के वचन को सुनकर नदी वैसे हुई है। तब विश्वामित्र नदी को धन्यवाद देते हुए अपने परिवार सहित नदी को पार किया है, पार करने के बाद पुनः पूर्व के समान बहने के लिए नदी से प्रार्थना की।

इस प्रकार संवादसूक्त को नाटकीय ओजस्विता के साथ सम्पूर्ण परिपूर्ण तथा कलनात्मक दृष्टि से सुन्दर और सरल है।

पाठसार

प्राचीनकाल में विश्वामित्र राजा सुदास के पुरोहित थे। विश्वामित्र पौरहित्य से प्राप्त धन को लेकर बैलगाड़ी से विपाशा नदी के और शुतुद्री नदी के तट को प्राप्त किया है। अत: नदी पार जाने के लिए जिससे जाने के लिए नदी का जलस्तर नीच होता है उसके लिए महर्षि विश्वामित्र नदियों की स्तुति करते हुए कहते है – प्रबंधन से मुक्त घोड़े जिस प्रकार दौड़ते है उसी प्रकार आप भी सागर संगम के लिए पर्वत की गोद से निकलकर बहती हैं श्रेष्ठ नदी मात्र शुतुद्री विपाशा के तट पर गए। तथा विस्तृत सुन्दर नदी के तट को प्राप्त किया है। जैसे दो गाये एक ही बछड़े को चाटने के लिए उसकी और भागती हैं उसी प्रकार आप सागर संगम के लिए उसकी और दौड़ती है इस प्रकार नदि के तीर पर आये। इस प्रकार विश्वामित्र नदियों की स्तुति की गई है। तब विश्वामित्र को उदिष्ट करके नदिया कहती है –जब वृत्रा सुर पृथ्वीनाश के लिए नदियों की प्रवाह धारा को रोक दिया है। तब इन्द्र देव ने वृत्रासुर को मारकर पर्वत के अङ्क से इस नदी का निर्माण किया है। ऋषि पुत्र कुशिक अपनी रक्षा के लिए सोम युक्त वाणी नदी को क्षण के लिए रुकने के लिए प्रार्थना करता है। वज्र हाथ वाले इन्द्र नदी को रोकने वाले वृत्रासुर को मारकर नदियों को निर्विघ्न बहाता है। इन्द्र ने अहि को मारा यह इन्द्र के पराक्रमयुक्त कार्य को अवश्य कथन योग्य है। यह ही विश्वामित्र नदी के प्रति कहते हैं। नदी प्रत्युत्तर में कहती है हे स्तोता इस स्तुति वचन को कभी मत भूलना क्योकि भावि पुरुष आपकी इस स्तुति वचन को सुन सकते है। हे ऋषि आप केवल हमारी स्तुति से आदर मत करो और स्तुत्ति से अलौकिक शोभा प्रदान कीजिए। मैं तुमको नमन करता हूँ। उसके बाद विश्वामित्र नदी को बहन के रूप में सम्बोधन करते हुए कहते है –हे सुन्दर बहनों अब मेरे वचन को सुनो, क्योंकि बहुत दूर से यान अथवा रथ से अतिक्रमण करके मै तुम्हारे समीप आया हूँ। हे नदियों कुछ नीचे जाओ। अपनी जलधारा को अन्त में सङ्कुचित करके तैरने योग्य होकर बहो – विश्वामित्र के वचन को सुनकर नदी वैसे हुई। तब विश्वामित्र नदी को धन्यावाद देते हुए अपने परिजनो सहित नदी को पार करके और उसके बाद पार करने के बाद पुन पूर्ववत् बहने के लिए नदी से प्रार्थना की।

पाठान्त प्रश्न

195. अपनी भाषा से विश्वामित्र- नदी कथा को लिखो।

196. विश्वामित्र–नदी संवाद का सार संक्षेप से लिखो।

197. प्र पर्वतानामुशती....इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

198. इन्द्रषिते प्रसवं भिक्षमाणे....इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

199. अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं....इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

200. एना वयं पयसा....इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

201. रमध्वं मे वचसे....इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

202. इन्द्रो अस्माँ ....इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

203. प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं....इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

204. ओ षु स्वसार: ....इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

205. यदङ्ग त्वा भरता:....इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

206. अतारिषुर्भरता....इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

207. उद्व: ऊर्मि: शम्या....इत्यादि मन्त्र की व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर भाग-1

208. विपाशा।

209. शुतुद्रु।

210. पिवि धातु से शानच् नमागम मुकागम करने पर

211. इन्द्र के द्वारा भेजे गये।

212. विश्वामित्र।

213. सम् पूर्वक लिह्-धातु से शानच लकार को रकार आदेश करने पर और नकार को णकार होने पर ये रूप बनता है

उत्तर भाग -2

214. समुद्र की तरफ।

215. पार जाने के लिए।

216. भरत कुल में।

217. शीघ्र।

218. इन्द्र।

219. मेघ।

उत्तर भाग -3

220. वज्र से।

221. सर्वदा।

222. यह स्तुति विलुप्त न हो जिससे भावी काल में भी लोग स्मरण करेंगे।

223. मा विस्मार्षीः।

224. रथ से।

225. जैसे नदी पारंगमन के लिए अधोगामी होती है।

उत्तरकूट-4

226. प्रकर्ष से तर्पण किया।

227. अच्छी प्रकार से प्रार्थना की।

228. तरङ्ग।

229. समृद्धि।

230. सुदास का।

231. कुशिक का।

232. धन।

233. रथ से।

234. शुतुद्रु और विपाशा का।

235. जैसे नदियों का प्रवाह स्तब्ध हो गया हो।

236. इन्द्र के द्वारा।

237. इन्द्र।

पन्द्रहवां पाठ समाप्त